ISSN 0976-0849

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

आज़ादी का अमृत महोत्सव

वर्ष 17 • अंक 17 • आश्विन कृष्ण चतुर्थी, विक्रम संवत् 2080 • सितम्बर 2023

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 9वीं पुण्यतिथि

की पावन स्मृति में समर्पित

महाराणा प्रताप महाविद्यालय

जंगल धूसड़, गोरखपुर

की शोध पत्रिका

मुख्य सम्पादक

डॉ. प्रदीप कुमार राव

विमर्श

वर्ष 17 • अंक 17 • आश्विन कृष्ण चतुर्थी, विक्रम संवत् 2080 • सितम्बर 2023

ISSN 0976-0849

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Editorial Advisory Board

U.P. Singh, Ex Vice Chancellor, V.B.S. Purvanchal University, Jaunpur

Ram Achal Singh, Ex Vice Chancellor, R.M.L. Awadh University, Faizabad and Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh

Shivajee Singh, Professor, Ancient History, Archaeology & Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Makkhan Lal, Director, Delhi Institute of Heritage Research and Management, New Delhi

Mrinal Shankar Raste, Ex Vice Chancellor, Symbiosis International University, Pune

Surendra Dubey, Ex Vice Chancellor, Siddhartha University, Kapilvastu, Siddharthanagar

V.K. Singh, Ex Vice Chancellor, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shri Prakash Mani Tripathi, Vice Chancellor, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak (M.P.)

Chandrashekhar, Vice Chancellor, Raja Mahendra Pratap Singh Vishwavidyalaya, Aligarh

Murli Manohar Pathak, Vice Chancellor, Sri Lal Bahadur Shastri Central Sanskrit University, New Delhi

Rajesh Kumar Singh, Ex Vice Chancellor, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

A.K. Singh, Vice Chancellor, Mahayogi Guru Gorakhnath Ayush Vishwavidyalaya, Gorakhpur

A.K. Vajpai, Vice Chancellor, Mahayogi Gorakhnath University, Gorakhpur

Sadanand Prasad Gupta, Ex Executive Chairman, U.P. Hindi Sansthan, Lucknow

V.K. Srivastava, Professor, Geography. D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pratibha Khanna, Professor, Education. D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.S. Das, Professor, Chemistry, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

D.K. Singh, Professor, Zoology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Rajawant Rao, Professor, Ancient History, Archaeology & Culture. D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Mahesh Kumar Sharan, Professor, Maghadh University, Bodhgaya (Bihar)

Shailja Singh, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Himanshu Chaturvedi, Professor, History, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Harsh Sinha, Professor, Defence and Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shobha Gaur, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Ravi Shankar Singh, Professor, Physics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Vinod Kumar Singh, Professor, Defence & Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Sushma Pandey, Professor, Psychology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shikha Singh, Professor, English, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pragya Mishra, Professor, Ancient History, Ram Manohar Lohia Awadh University, Faizabad

Rajesh Singh, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Vivek Nigam, Professor, Economics, Ewing Christian College, Prayagraj

Divya Rani Singh, Professor, Home Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Raj Sharan Shahi, Professor, Education, Bhimrao Ambedkar Central University, Lucknow

V. Ramanathan, Professor, Chemistry Department, IIT-BHU, Varanasi

D.S. Ajitha, Principal, Guru Gorakshanath School of Nursing, Gorakhpur

Mrityunjay Kumar, Renowned Journalist

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Volume 17 • Number 17 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2080 • September 2023

Chief Editor

Dr. Pradeep Kumar Rao

Editors

Dr. Subodh Kumar Mishra

Dr. Abhay Pratap Singh

Co-editors

Dr. Ikshwaku Pratap Singh

Dr. Hanuman Prasad Upadhyaya

The Journal of

Maharana Pratap P.G. College

Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)-273014

This Journal is a *Peer Reviewed Referral* Volume.

ISSN- 0976-0849

Vol. 17 • Number 17 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2080 • September 2023

Vimarsh, an interdisciplinary ***refereed or peer reviewed*** is an annual and bilingual journal of Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP).

Copyright of the published articles, including abstracts, vests in the Editors. The objective is to ensure full Copyright protection and to disseminate the articles, and the journal, to the widest possible readership. Authors may use the article elsewhere after obtaining prior permission from the editors.

Research Papers related to Interdiscilinary subjects are invited for publication in the journal. Research papers, book reviews, Subscription and other enquiries should be sent to – Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP) - 273014, Mob. : 9794299451, 9452971570, 7376584058. You may also e-mail your contributions and correspondence at ***vimarshmpdc@gmail.com.***

Guidelines for Contributors given on the inner side of the back cover.

The Editors and the Publisher can not be held responsible for errors and any consequences arising from the use of information contained in this journal. The views and opinions expressed do not necessarily reflect those of the editors and the publisher.

Designed & Printed at :
Moti Paper Convertors, Gorakhpur Mob. : 9415282504

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 100	US $ 5	Rs. 200	US $ 10
Five Years	Rs. 400	US $ 20	Rs. 800	US $ 40
Life (15 Years)	Rs 1300	US $ 60	Rs. 2500	US $ 100

पुण्य-स्मृति

गोरक्षपीठ द्वारा संचालित
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
शिक्षा क्षेत्र की एक अग्रणी संस्था है।
पूर्वी उत्तर प्रदेश में गोरखपुर को केन्द्र बनाकर
प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक लगभग चार दर्जन
शिक्षण संस्थानों का संचालन करने वाले
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
की स्थापना 1932 ई. में
गोरक्षपीठाधीश्वर
महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज
ने की थी और इसे विशाल वटवृक्ष का रूप दिया
उनके शिष्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने।
महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़
इसी महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
जैसे वटवृक्ष की एक शाखा है।
महाविद्यालय के संस्थापक परमपूज्य
राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की
09वीं पुण्यतिथि के पावन अवसर पर
सादर समर्पित है

विमर्श-2023

वन्दे भारतमातरम् !!

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्ष तद्भारत नाम भारती यत्र सन्ततिः।। वा.पु.

पृथ्वी का वह भाग जो समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित है, भारतवर्ष है, जहाँ भारती प्रजा रहती है।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।

यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्याः भोगभूमयः।। वा.पु.

इस जम्बू-द्वीप में भी, हे महामुने! भारतवर्ष श्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है और बाकी भोग-भूमियाँ ही हैं।

अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।

कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्।। वा.पु.

भारतवर्ष में जीव हजारों जन्मों के अनन्तर पुण्य जुटाने से कदाचित् मनुष्य जन्म प्राप्त करता है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। मनु.

इस देश में जन्म पाए हुए श्रेष्ठ जन्मा पुरुषों से पृथिवी के सारे मनुष्य अपने-अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें।

रत्नाकराधौतपदां हिमालयकिरीटिनीम्।

ब्रह्मराजर्षिरत्नाढ्यां वन्दे भारतमातरम्।।

समुद्र जिसके पाँव पखार रहा है, हिमालय जिसका किरीट है और जो ब्रह्मर्षि-राजर्षिरूप रत्नों से समृद्ध हैं, ऐसी भारत-माता की मैं वन्दना करता हूँ।

राष्ट्र-सन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

जन्म तिथि : 18 मई, 1919
जन्म स्थान : ग्राम-कांडी, जिला-गढ़वाल (उत्तरांचल)
पारिवारिक स्थिति : बाल ब्रह्मचारी
गुरु का नाम : ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजनाथ जी महाराज
शिक्षा : शास्त्री संस्कृत (वाराणसी एवं हरिद्वार में अध्ययन)
कार्य क्षेत्र : हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार के लिये सतत कार्यरत अनेक धार्मिक संगठनों से सम्बद्ध

राजनीतिक उपलब्धियाँ

लोकसभा सदस्य

- 1970 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - निर्दलीय
- 1989 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - हिन्दू महासभा
- 1991 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - भारतीय जनता पार्टी
- 1996 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - भारतीय जनता पार्टी

विधाानसभा सदस्य

- 1962 - मानीराम - हिन्दू महासभा
- 1967 - मानीराम - निर्दलीय
- 1969 - मानीराम - हिन्दू महासभा
- 1974 - मानीराम - हिन्दू महासभा
- 1977 - मानीराम - जनता पार्टी

संसदीय जिम्मेदारियाँ

- 1971 - सदस्य, परामर्शदात्री समिति, गृह मंत्रालय (भारत सरकार)
- 1989 - सदस्य, परामर्शदात्री समिति, गृह मंत्रालय (भारत सरकार)
- 1993 - संसदीय प्रणाली व्यवस्था लागू होने पर गृह मंत्रालय के सदस्य

महत्वपूर्ण पद (ब्रह्मलीन होने के तिथि से पूर्व)

- पूर्व उपाध्यक्ष, आल इण्डिया हिन्दू महासभा, पूर्व एक्जीक्यूटिव
- पूर्व मेम्बर, आल इण्डिया हिन्दू महासभा
- पूर्व महासचिव, आल इण्डिया हिन्दू महासभा

धार्मिक पद (ब्रह्मलीन होने के तिथि से पूर्व)

- गोरक्षपीठाधीश्वर-श्री गोरक्षनाथ पीठ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-श्रीराम जन्म भूमि मुक्ति यज्ञ समिति
- अध्यक्ष-अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारहपंथ- योगी महासभा, हरिद्वार
- अध्यक्ष-श्रीराम जन्म भूमि उच्चाधिकार समिति
- अध्यक्ष-गुरु गोरखनाथ सेवा संस्थान, गोरखनाथ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-श्रीराम जानकी मन्दिर, झुंगिया बाजार, गोरखपुर

राष्ट्र-सन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

शिक्षा के क्षेत्र में

अध्यक्ष (ब्रह्मलीन होने के तिथि तक) -

- महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
- गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ महाविद्यालय, चौक, महजराजगंज
- दिग्विजयनाथ ्एल.टी. प्रशिक्षण महाविद्यालय, गोरखपुर
- दिग्विजयनाथ इण्टर कालेज, चौक बाजार, महराजगंज
- महाराणा प्रताप कृषक इण्टर कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर
- दिग्विजयनाथ जूनियम हाई स्कूल, चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर
- गुरु गोरक्षनाथ विद्यापीठ, पितेश्वरनाथ मन्दिर, भरोहिया, पीपीगंज, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, मंगलादेवी मन्दिर, बेतियाहाता, गोरखपुर
- महन्त दिग्विजयनाथ बालिका विद्यालय, चौक, महराजगंज
- आदिशक्ति माँ पाटेश्वरी पब्लिक स्कूल, देवीपाटन, तुलसीपुर, बलरामपुर
- योगिराज बाबा गम्भीरनाथ सेवाश्रम समिति, जंगल धूसड़, गोरखपुर
- गुरु श्रीगोरक्षनाथ स्कूल ऑफ नर्सिंग, गोरखनाथ, गोरखपुर
- गुरु श्री गोरखनाथ संस्कृत विद्यालय, मैदागिन, वाराणसी

प्रबंधक (ब्रह्मलीन होने के तिथि से पूर्व) -

- दिग्विजयनाथ स्तनातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप महिला महाविद्यालय, रामदत्तपुर, गोरखपुर
- गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरक्षनाथ, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप इण्टर कालेज, गोरखपुर
- गोरक्षनाथ उ.मा. विद्यालय, गोरखनाथ, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप पूर्व माध्यमिक विद्यालय, रामदत्तपुर, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप पूर्व माध्यमिक विद्यालय, लालडिग्गी, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप शिशु शिक्षा विहार, रामदत्तपुर, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद, गोरखपुर

चिकित्सा के क्षेत्र में (ब्रह्मलीन होने के तिथि से पूर्व)

- अध्यक्ष-गुरु श्री गोरखनाथ चिकित्सालय, गोरखनाथ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-महन्त दिग्विजयनाथ आयुर्वेद चिकित्सालय, गोरखनाथ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-श्री माँ पाटेश्वरी सेवाश्रम चिकित्सालय, देवीपाटन, तुलसीपुर, बलरामपुर
- अध्यक्ष-गुरु गोरखनाथ इन्स्टीच्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेज, सोनबरसा, मानीराम, गोरखपुर

योग के क्षेत्र में (ब्रह्मलीन होने के तिथि से पूर्व)

अध्यक्ष-महायोगी गुरु गोरखनाथ योग संस्थान, गोरखनाथ, गोरखपुर

ब्रह्मलीन	**: 12 सितम्बर 2014**
जनता दर्शन	**: 13 सितम्बर 2014**
समाधि	**: 14 सितम्बर 2014**

जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी
जो हठि राखे धर्म को, तिहिं राखै करतार।।

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

स्मृति सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला

दिनांक 17 से 23 अगस्त, 2023

उद्घाटन समारोह

गुरुवार, 17 अगस्त, 2023

अध्यक्ष : **मे. जन. (डॉ.) अतुल वाजपेई** (से.नि.)
कुलपति, महायोगी गोरखनाथ विश्वविद्यालय गोरखपुर
आरोग्य धाम, बालापार, गोरखपुर

मुख्य अतिथि : **प्रो. ईश्वर शरण विश्वकर्मा**
कार्यकारी अध्यक्ष
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली

समापन समारोह

28 अगस्त, रविवार 2022

अध्यक्ष : **प्रो. उदय प्रताप सिंह,** पूर्व कुलपति
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.
अध्यक्ष, महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद, गोरखपुर
अध्यक्ष-प्रबन्ध समिति, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

मुख्य अतिथि : **प्रो. राजशरण शाही**
आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग
डॉ. भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

व्याख्यान कार्यक्रम

शुक्रवार, 18 अगस्त, 2023 • पूर्वाह्न 11.50 बजे से

–: विषय :–

हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत

–: वक्ता :–

प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह, आचार्य, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

शनिवार, 19 अगस्त, 2023 • पूर्वाह्न 11.50 बजे से

–: विषय :

भारत की प्राचीन ज्ञान परम्परा

–: वक्ता :–

डॉ. जितेन्द्र भावसार, सहायक प्राध्यापक, रसायन शास्त्र विभाग,
अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल

रविवार, 20 अगस्त, 2023 • पूर्वाह्न 11.50 बजे से

–: विषय :–

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नाथयोग दर्शन

–: वक्ता :–

प्रो. संतोष कुमार शुक्ल, आचार्य, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान,
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सोमवार, 21 अगस्त, 2023 • पूर्वाह्न 11.50 बजे से

–: विषय :–

भारत-ईरान सम्बंध : एक सांस्कृतिक संवाद

–: वक्ता :–

प्रो. विपुला दुबे
अध्यक्ष, भारतीय इतिहास संकलन समिति, गोरक्ष प्रान्त

मंगलवार, 22 अगस्त, 2023 • पूर्वाह्न 11.50 बजे से

–: विषय :–

प्लास्टिक प्रदूषण एवं समाधान

–: वक्ता :–

प्रो. के. रामचन्द्र रेड्डी, आचार्य, रस शास्त्र एवं आयुर्वेद विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान,
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Vimarsh

An Interdisciplinary Journal

Volume 17 • Number 17 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2080 • September 2023

CONTENTS

Articles **Pages**

1. गोरखनाथ के तत्त्वमीमांसा के सन्दर्भ में योग
   डॉ. सुनील कुमार 1
2. नाथ परंपरा एवं गोरखनाथ
   हर्षवर्धन सिंह 8
3. श्रीगोरखनाथ मन्दिर का वैशिष्ट्य
   डॉ. फूलचन्द प्रसाद गुप्त 13
4. नाथसम्प्रदाय और गुरु गोरखनाथ
   डॉ. यामिनी राय 23
5. गुरुगोरखनाथ की परम्परा और उनकी विरासत
   डॉ. आरती सिंह 31
6. गुरु गोरखनाथ का योगबोध और युगबोध
   डॉ. निमिषा सिंह 37
7. नाथपन्थ, नवनाथ और गोरक्षनाथ
   डॉ. अंगदकुमार सिंह 45
8. भोजपुरी–वाङ्मय में गोरखनाथ
   प्रो. रामदरश राय 50
9. मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त की सैन्य व्यवस्था
   डॉ. महेश कुमार शरण 62
10. भारतीय ज्ञान-विज्ञान परंपरा
    डॉ. जितेन्द्र भावसार 71
11. प्राचीन भारत से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तक अध्यापक शिक्षा का उन्मेष
    शिप्रा सिंह 79
12. गुप्तयुगीन भारत में उद्योग एवं व्यापार
    डॉ. पद्मजा सिंह 85
13. बौद्ध स्थापत्य कला और बोरोबुदूर मंदिर : एक अध्ययन
    प्रो. (डॉ.) चन्द्र भूषण मिश्र 90
14. प्राचीन भारत के समाज में उत्सव का स्वरूप एवं कौमुदी महोत्सव : एक अध्ययन
    डॉ. प्रतिमा मिश्र 97
15. भारतीय संगीत के प्रचार प्रसार में संगीत शिक्षा प्रणाली
    दीप्ति गुप्ता 101
16. राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भारतीय संस्कृति
    विभा सिंह 104
17. मध्य प्रदेश के जनजातीय समुदाय और नगरीय समुदाय के वेल-बीइंग का तुलनात्मक अध्ययन
    प्रज्ञा मिश्र, डॉ. प्रज्ञेश कुमार मिश्र एवं डॉ. ललित कुमार मिश्र 109

18. भक्ति काल की सामाजिक उपादेयता
डॉ. अखण्ड प्रताप सिंह 126
20. समावेशी विकास और उसके आयाम
डॉ. हनुमान प्रसाद उपाध्याय 132
21. अध्यापक की भूमिका: राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में
डॉ. अनुभा श्रीवास्तव 141
22. क्रांति की अभंग गाथा चौरी चौरा
डॉ. संदीप कुमार श्रीवास्तव 150
23. कलात्मक प्रतीक के रूप में प्राचीन भारतीय सिक्के
डॉ. मनीषा शरण 157
24. Plastic Pollution And Solution
Dr. Saroj Adittya Rajesh, K.R.C. Reddy 167
25. A study of physically disabled students' attitudes toward their complicated lives
Prashant Prakash Somvanshi & Dr. R. R. Shinde 182
26. Buddhism in Myanmar
Sumedha Bodhi 195
27. A Study of Happiness and Hopelessness among Covid 19 Survivors and Non-Covid Persons
Dr. D. K. Kannor 204
28. Effect of Area of Residence on Emotional, Social and Educational Adjustment among College Students
Dr. Ravindra Ramdas Shinde 208
29. Intra-Regional Disparities in Infrastructure in Uttar Pradesh with Special focus on Eastern Uttar Pradesh
Dr. Raju Kumar Gupta, Raju Sahni, Drishti Jaiswal 212
30. Use of Bar Coading For Universities/College Library and Information Science
Dr. Sushil Kumar Singh and Rajesh Singh 220
31. Artistic representation of selected Vaishnavite sculptures at Prachi Valley
Dr. Chitta Ranjan Sahoo 225
32. A Study on the Psychological Hardiness of College Students and Aspiring Teachers
Dr. Abhay Pratap Singh 232
33. The health of diabetics may benefit from using millets as a dietary supplement : A Study
Dr. Deepshikha Nagvanshi 243
34. Influence of Diet on Depression and Well-being
Prachi Joglekar 253
35. Zen and its influence on Japanese Culture
Ravi Medhankar 259
36. Impact of Deprivation on Academic Achievement of Tribal school students in Dumka District of Jharkhand
Dr. Vinod Kumar Sharma 264
37. Songkran - The Rite of Spring Festival in Thailand
Dr. Subodh Kumar Mishra 269
38. पुनर्पाठ
38.1 National Policy on Education
Mahant Digvijay Nath 276
38.2 महायोगी गोरखनाथ के संस्कृत ग्रन्थ
महन्त अवेद्यनाथ 288

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 1-7

गोरखनाथ के तत्त्वमीमांसा के सन्दर्भ में योग

डॉ. सुनील कुमार*

सारांशः नाथ संप्रदाय प्राचीन महेश्वर मत (शैवमत) के अन्तर्गत विकसित एक पंथ है जिसमें परवर्ती काल में अनेक वैदिक, अवैदिक सम्प्रदाय अंगीभूत हो गए। नाथपंथ अपनी विशिष्ट साधना पद्धति एवं यौगिक क्रियाओं को महत्व देने के कारण एक सर्वव्यापी सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुआ। आदिगुरु गोरखनाथ ने जिन तत्वदर्शनों एवं आत्मब्रह्म का प्रत्यक्ष साक्षात्कार दिया था, वे दर्शन एवं सिद्धांत ही नाथपंथ के मूलाधार बनें। गोरखनाथ के अनुसार प्रलयावस्था में शिव कार्य-कारण के चक्र संचालन से विरत, कुल-अकुल-भेद से परे और अव्यक्त रहते हैं। नाथपंथ का तत्वदर्शन निश्चय ही मोक्षदायिनी है।

बीजशब्दः शिवाद्वयवाद, पिण्डब्रह्माण्डवाद, नाथपंथ, षडंगयोग, कुण्डलिनी, गोरखनाथ, तत्वमीमांसा, योग-बीज, सिद्धसिद्धान्तपद्धति, योगमार्ग।

योग की मुख्यतः दो प्रणाली प्रधान है, एक वह जो योगसूत्र द्वारा प्रतिपादित है, जिसका भाष्य व्यास ने किया है, दूसरी प्रणाली वह है जो गोरक्षनाथ के ग्रन्थों जैसे- गोरक्षशतक, सिद्धसिद्धान्तपद्धति आदि में वर्णित है, जिसका विकास नाथ संप्रदाय के अन्य आचार्यों ने किया है। योग की जो परंपरा हमें नाथों में प्राप्त होती है, वह आकस्मिक नहीं है, बल्कि आदिम काल से चली आ रही परंपरा का ही विशिष्ट रूप है। गोरखनाथ ने जिस योग साधना को वरीयता दी है, वह योग उपनिषदों तथा तंत्रों में पहले से ही किसी न किसी रूप में संचरित थी। प्राचीन सिद्ध कौल मत ही आगे चलकर नाथ-परम्परा के रूप में विकसित हुआ है। गोरक्षनाथ का उपदिष्ट योगमार्ग सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आधारित है, उसमें पूर्वोपदिष्ट तंत्रमार्ग के कुलद्रव्यों की केवल योगपरक और आध्यात्मिक व्याख्याएँ मिलती हैं। गोरक्षनाथ ने शैवागम के अधीन ही अपने नाथ सम्प्रदाय का संगठन किया। यही योग, शैव और तन्त्र की परम्परा दोनों को निकटस्थ करती है।

गोरखनाथ के योग के केंद्र में उनका शिवाद्वयवाद का सिद्धांत है। जिसके अनुसार संविद् रूप

*रिसर्च एसोसिएट, महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, Email- skrsingh.bhu@gmail.com

 ISSN 0976-0849

शिव ही परमतत्त्व है। सकल जगत् प्रपंच उसी शिव का विस्तृत रूप है। शिव और शक्ति दो तत्त्व नहीं हैं, अपितु इनमें पूर्ण अभेद है। गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित योगानुशासन मूलतः अन्य प्राचीन योगाचार्यों तथा पतंजलि के योगसूत्रों में वर्णित अष्टांगयोग जैसा ही है। किन्तु उन्होंने विभिन्न प्रकार के आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, अजपा, नादानुसंधान, कुण्डलिनी चक्र आदि का विषद वर्णन प्रस्तुत कर योग मार्ग में अद्‌भुत योगदान किया। गोरखनाथ ने इस बात पर बल दिया है कि ये सभी क्रियायें पूर्ण आत्मानुभूति, सभी प्रकार की दुर्बलताओं, दुःख और बंधनों से मुक्ति तथा शिवतत्त्व में एकत्व प्राप्ति के उच्चतम आदर्श की प्रधानता स्वीकार करके ही गृहीत हो सकती हैं।

नाथदर्शन के तत्त्वमीमांसा के सन्दर्भ में जीवन्मुक्ति की अवस्था ही आदर्श अवस्था है। देहपात के अनंतर जो मुक्ति होती है, उसे यथार्थ मुक्ति नहीं माना गया है। गोरखनाथ के अनुसार जो शरीर से अजर-अमर है अर्थात् जो योगाभ्यास से सिद्धदेह प्राप्त कर लेता है, वही जीवन्मुक्त होता है।[1] इस सिद्धदेह का लाभ होने पर ही योगी के लिए इच्छामृत्युवरण संभव हो पाता है। वेदांत का आत्मसाक्षात्कार नाथमार्ग का परमपद ही है, किन्तु नाथयोगी उस देह को स्थायी करने के लिए सचेष्ट है। योग से योगी प्रारब्ध का क्षय करता है। उसके बाद इस देह को रखे या न रखे, यह उसकी इच्छा पर निर्भर होता है। नाथ मार्ग में मोक्ष वह अवस्था है, जिसमें समाधि के क्रम में मन द्वारा मन का अवलोकन किया जाता है। इसी को जीवन्मुक्ति पद कहते हैं।[2] नाथयोगी का लक्ष्य है, ऐसी शरीर की प्राप्ति जो नष्ट न हो, जिसके बाहर प्राण न जाता हो, शरीर चिन्मय हो जाये और फिर अनन्यता की प्राप्ति हो जाये। यह पिण्डसिद्धि परमपद की प्राप्ति का अनिवार्य सोपान है। संक्षेप में नाथों का लक्ष्य है- जीवन्मुक्ति युक्त सिद्धदेह से नाथरूप में अवस्थान या पिंडपद का परमपद में समरसीकरण।[3] नाथयोगियों का लक्ष्य यह है कि पहले पिण्डसिद्धि के द्वारा जीवन्मुक्ति की प्राप्ति हो। इस समय में कालवंचन सिद्ध होता है अर्थात् काल के प्रभाव से योगी मुक्त हो जाता है। इसके अनंतर समरसीकरण के द्वारा परामुक्ति की सिद्धि होती है।[4] इस समरसीकरण के लिए, गुरुकृपा से पिण्डसंवित्ति के लिए शुद्ध या दिव्यदेह की आवश्यकता है। बिना गुरु-कृपा और शुद्ध देह के इस लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए गोरक्ष के साधनमार्ग में यह कायसिद्धि आवश्यक मानी गयी है, जिसका लक्ष्य समरसीकरण है।[5] इस प्रकार इस जीवन्मुक्ति के लिए कायसिद्धि और कायसिद्धि के लिए पिण्डज्ञान आवश्यक है। गोरखनाथ के अनुसार जो शरीरस्थ छः चक्र, षोडश आधार, तीन लक्ष्य और पाँच व्योम को नहीं जानता, वह योगसिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। जो एक खम्भे वाले, नौ दरवाजे वाले और पाँच मालिकों के द्वारा अधिकृत इस शरीररूपी घर को नहीं जनता, उससे योगसिद्धि की आशा कैसे की जा सकती है?[6] अतः शरीर से अपरिचित मनुष्य मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण से ब्रह्माण्ड का जो समतुल्य और विकासात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है, उसका यही प्रयोजन है।

इस समरसीकरण के लिए 'योगबीज' योगरहित ज्ञान और ज्ञानरहित योग की निरर्थकता बताते हुए योगयुक्त ज्ञान को ही मोक्ष के उपाय के रूप में स्वीकार करता है।[7] सिद्धदेह की प्राप्ति के लिए योग ही उपाय है। नाथयोगी हठयोग को ही प्रधान मानते हैं। हठ में 'ह' सूर्य या इड़ा को कहते हैं। 'ठ' चन्द्र या पिंगला को कहते हैं। कभी-कभी 'ह' से प्राण तथा 'ठ' से अपान का भी अर्थ लिया जाता है। हठयोग से राजयोग की सिद्धि होती है। हठयोग प्राणायाम प्रधान है। प्राण अधिभूत तत्त्व है। इसलिए इस दृष्टि से प्राणायाम या हठयोग आधिभौतिक साधन है। हठयोग की क्रियायों से सिद्धदेह की प्राप्ति होती है। साधना के लिए ऐसा शरीर सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम हो सकता है। योगियों ने हठयोग या उससे प्राप्त सिद्धियों को लक्ष्य के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया है। हठयोग प्रदीपिका में स्पष्ट कहा है कि राजयोग में आरुढ़ होने के लिए हठयोग का अभ्यास करना चाहिए।[8]

गोरखनाथ का योग षडंग है। षडंग योग-साधना के छः अंग है- आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। परन्तु नाथयोग में यम और नियम पर भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। गोरखनाथ के अनुसार अपने स्वरूप में चेतना की संस्थिति अथवा स्थापन (समासन्नता) ही आसन है। आसन स्थैर्य के बाद प्राणायाम के अभ्यास का विधान किया गया है। प्राणायाम का नाड़ी-शोधन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार प्राणायाम प्राण की स्थिरता है। रेचक, पूरक, कुम्भक और संघट्टीकरण, इसके चार लक्षण हैं।[9] गोरक्षसंहिता, योगबीज आदि में प्राणायाम के साथ मुद्रा, बंध, वेध का भी वर्णन है। प्राणायाम से ओंकारसाधन भी सम्बद्ध है। ओंकारसाधन और अजपाजप दोनों ही प्राणायाम में अंतर्भूत हैं। सिद्धाचार्य इस प्रणव को वेद का सार नहीं मानते, बल्कि वेद ही मानते हैं। इसी को शिवशक्तिसाधन भी कहा गया है। ओंकार को आदिनाथ कहा गया है। यह अनाहत और अखंड है। इसका अनुसन्धान ही नादानुसंधान है। अंतस् में इसकी सत्ता ही ब्रह्म की अंतस् में सत्ता है। उसे नादब्रह्म कहते हैं। इसका अनुसन्धान ब्रह्मानुसंधान है।[10]

गोरखनाथ के अनुसार चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि पाँच विषय है। इसमें इन्द्रियों द्वारा उनके विषय का अनुभव करके उन-उन इन्द्रियों को अपने-अपने विषय प्रत्याहारित कर लेना ही प्रत्याहार है।[11] गोरक्ष संहिता में चक्षु आदि के अपने विषयों में विचरण से आहरण को प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार से योगी अपने मानस विकारों का मोचन करता है।[12] नाथयोग के अनुसार शरीर के बाह्य व आभ्यंतर सर्वत्र व्याप्त निज तत्त्वस्वरूप की भावना ही धारणा है। अतः जो भौतिक प्रपंच उत्पन्न होता है, उसकी निराकार आत्मा के रूप में निश्चल दीपक के सदृश्य आत्मचैतन्य का ही चिंतन करना चाहिए।[13] पंचभूतों के आधार पर धारणा के पाँच प्रकार बताये गये हैं- पृथ्वी, वारुणी, वैश्वानरी, वायवी, तथा नभो धारणा। ऐसा लगता है की कुण्डलिनीयोग की साधना धारणा के अंतर्गत है। इस कुण्डलिनीयोग से ही लय योग, भूतजय, भूतलय, भूतशुद्धि, षट्चक्रभेद आदि सम्बद्ध है। शब्दब्रह्म कुण्डलिनी के शरीर में पाँच भूतों का लय होने के कारण तथा

 ISSN 0976-0849

अंततः सहस्रार में परम शिव से लय प्राप्त होने के कारण ही इसे लययोग कहा जाता है। कुण्डलिनी का मूलाधार से सहस्रार तक की यात्र को पृथ्वी से आकाश तक की यात्रा कहा गया है। यह आध्यात्मिक यात्रा है। इस कुण्डलिनी को षोडशी तथा उसकी साधना को षोडशीसाधना कहते हैं। पिण्ड-ब्रह्माण्ड-एकत्व का सिद्धांत इस साधन का ही सिद्धांत पक्ष है। इसी प्रकरण में षट्चक्र का भी विचार किया जाता है। गोरखनाथ ने सिद्धसिद्धान्तपद्धति में नौ चक्रों का उल्लेख किया है- ब्रह्मचक्र, स्वाधिष्ठान, नाभिचक्र, हृदयचक्र, कंठचक्र, तालुचक्र, भ्रूचक्र, ब्रह्मरंध्र, निर्वाणचक्र और आकाशचक्र। गोरखनाथ ने यद्यपि गोरक्षसंहिता और योगमार्तंड में भी चक्रों का वर्णन किया है। गोरखसंहिता के अनुसार सात चक्र है- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, नाभिचक्र, हृदयचक्र, कंठस्थचक्र, भ्रूमध्यचक्र तथा सहस्रार।[14]

सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार ध्यान परम अद्वैत भाव है। अद्वैतस्वरूप परमात्मा ही आत्मा है। जो-जो वस्तु जिस-जिस रूप में भी प्रतीत हो उसमें सर्वथा आत्मस्वरूप की भावना रखनी चाहिए। समस्त प्राणियों में समदृष्टि की भावना रखना ही ध्यान है।[15] इस प्रकार ध्यान में सभी भूतों में समदृष्टि हो जाती है। इस ध्यान साधना में चित्त पूर्ण रूप से निश्चल रहता है। सगुण और निर्गुण दो प्रकार के ध्यान बताये गये हैं। सगुण ध्यान विभिन्न वर्णों (रंगों) वाला होता है तथा निर्गुण ध्यान केवल ज्ञानात्मक, अनुभूत्यात्मक। स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से भी ध्यान दो प्रकार का कहा गया है। स्थूल ध्यान के बाद तेजोध्यान या ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्म ध्यान का वर्णन किया गया है।[16] गोरक्ष पद्धति में सकल और निष्कल ध्यान का वर्णन मिलता है।[17]

गोरखनाथ का समाधि के बारे में कहना है कि आत्मस्वरूप में समस्त तत्त्वों का अभेदरूपता के साथ अनायास एवं सहज स्थिति रूप में प्रतिष्ठित होना ही समाधि है।[18] विवेकमार्तंड में कहा है कि आत्मा और परमात्मा में समत्व होने पर समस्त संकल्प नष्ट हो जाते है। वह अवस्था ही समाधि है।[19] साधक नादानुसंधान एवं कुण्डलिनी-जागरण के द्वारा समाधि सिद्ध करते हैं। जब प्राण सम्यक् रूप से क्षीण हो जाते है तथा मानस भी लय को प्राप्त हो जाता है, जब समरसत्व की प्राप्ति हो जाती है, तब कहा जाता है की समाधि की अवस्था प्राप्त हो गयी।

स्पष्ट है गोरखनाथ के षडंगयोग के दो उद्देश्य बताये गये हैं। पहला उद्देश्य है सिद्धदेह या जीवन्मुक्ति। दूसरा मुख्य उद्देश्य है द्वैताद्वैतविवर्जित नाथरूप में अवस्थान या पिण्डपद का परमपद में समरसीकरण। गोरक्ष योग में दो प्रधान साधन है- हठयोग तथा लययोग। इस प्रकार दो कार्य हैं- बिन्दुरक्षा तथा नादानुसंधान। गोरक्षनाथ के योगसाधना का मुख्य तत्त्व है प्राणायाम। दोनों कार्य इसी से साधित होते हैं। गोरखनाथ ने जिस हठयोग या प्राणायामसंपन्न योग साधना का उपदेश दिया है, उसके अनेक आयाम हैं। अपान प्राण को तथा प्राण अपान को आकृष्ट करता है। प्राण ''हंकार' के साथ बाहर जाता है तथा 'सकार' के उच्चारण के साथ पुनः वह प्रवेश करता है। 'हंस' 'हंस' -

इस मंत्र का जप जीव सदैव करता रहता है।[20] रात और दिन मिलाकर कुल वह 21600 बार जप करता है। इसी को अजपा नाम की गायत्री कहते हैं, जो मोक्षयायिनी होती है।[21] प्राण और नाड़ी सम्बन्धी विभिन्न क्रियाओं के अभ्यास से नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। वायु के यथेष्ट धारण से अनल का प्रदीपन, नाद की अभिव्यक्ति तथा नाड़ी-शोधन के कार्य संपन्न होते हैं।[22] इस प्राणायाम से मूलबंध, उड्डीयानबंध और जालंधरबंध नाम के तीन बंधों का भी सम्बन्ध है, जिनमें प्राणाकर्षण की आवश्यकता बतायी गयी है।[23] इसके साथ अनेक नभोमुद्रा जैसी मुद्राओं के भी साधन का विधान है। इस प्रकार मुद्रा, बंध और वेध जैसी क्रियाओं से प्राणायाम का सघन सम्बन्ध है। प्राणायाम में ओंकार-साधन और अजपाजप दोनों ही अंतर्भूत हैं।

कुण्डलिनी तीन प्रकार की बतलायी गयी है– ऊर्ध्व, मध्य और अधः। योगियों के अनुसार मध्यशक्ति के प्रबोधन से, अधःशक्ति के निकुंचन से तथा ऊर्ध्वशक्ति के निपात से परमपद की प्राप्ति होती है।[24] वस्तुतः शक्ति एक ही है, किन्तु प्रभेदमात्र से वह तीन रूपों में दिखायी पड़ती है। इसके स्वरूप के सम्बन्ध में कहा गया है की कंद के ऊपर आठ कुण्डलों को धारण करनेवाली यह कुण्डलिनी शक्ति निरामय ब्रह्मद्वार को जानेवाले मार्ग के रंध्र को सुखपूर्वक आच्छादित किये हुए प्रसुप्त रहती है। उसको वह्नियोग से तथा मानस और महत् के सहकार से प्रबुद्ध किया जाता है। इस प्रकार प्रबुद्ध होकर, सुई के आकार को प्राप्त कर पद्मतन्तुनिभा कुण्डलिनी सुषुम्ना के मार्ग से उत्थित होती है।[25]

गोरखनाथ के साधनमार्ग में गुरु का स्थान महत्त्वपूर्ण है। परमपद में समरसीकरण गुरु की कृपा से ही संभव होता है। गुरुचरणों में रत रहने से स्वसंवेद्य परमपद की सिद्धि संभव होती है। केवल इसी साधन से योगियों को पिण्ड के निरुत्थान का अनुभव होता है तथा इसके पश्चात् समरसीकरण की सिद्धि होती है।[26] सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार सिद्धपुरुष अदैहिक साधनों का आश्रयण कर परमपद को प्राप्त करते हैं और इन साधनों में स्थिति गुरु के दृक्पात से होती है। प्रकृति के सभी विकारों का अवधूनन करनेवाला सिद्ध ही, अवधूत योगी ही, सद्गुरु का पद प्राप्त कर सकता है।[27]

गोरखनाथ के साधनामार्ग का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत पिण्डब्रह्माण्डवाद है। सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार जो व्यक्ति या योगी पिण्ड में संपूर्ण चराचर का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसे 'पिण्डसंवित्ति' कहते हैं।[28] पिण्ड के अंतर्गत जो भी कुछ है, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त रूप है। इसमें परमतत्त्व, देवता, पाताल, ब्रह्माण्ड, समुद्र, तारामंडल आदि सभी निवास करते हैं। इन सब वर्णनों का समाहार गोरखनाथ ने इस प्रकार किया है– 'सभी शरीरों में विश्वस्वरूप परमेश्वर चित्स्वरुपी परमात्मा अखंड स्वभाव से घट-घट में स्थित रहता है। इस प्रकार पिण्डसंवित्ति होता है'।[29] पिण्डब्रह्माण्डवाद योगसाधना के यावत् प्रकारों का मूलाधार तो है ही, साथ ही दूसरी ओर यह गोरखनाथ के अन्य

 ISSN 0976-0849

विचारों का भी मुख्य आधार है।

इस प्रकार गोरखनाथ के योग की केन्द्रीयता पिण्डब्रह्माण्डवाद सिद्धांत तथा शिवाद्वयवाद है। गोरखनाथ की साधना में ब्रह्मचर्य, षडंग योग, शिवाद्वयवाद, समरसता का सिद्धांत, हठयोग, राजयोग, पिण्डब्रह्माण्डवाद और अवधूत गुरुवाद की महत्ता है। लक्ष्य की दृष्टिकोण से पिण्डसिद्धि और नाथस्वरूपेणावस्थानम् को स्वीकार किया गया है। उनके साधन को योगयुक्त ज्ञान कहा जा सकता है।

संदर्भः

1. ब्रिग्स, जी.डब्लू, गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज, मोतीलाल बनारसीदास, पुर्नमुद्रित संस्करण-2016, नई दिल्ली, पृष्ठ-103
2. अमरौघशासनम्, सं. मुकुन्दराम शास्त्री, काश्मीर सीरीज ऑफ टेक्स्ट एंड स्टडीज, बॉम्बे, 1918, पृष्ठ 9
3. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, नाथ और संत साहित्यः तुलनात्मक अध्ययन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1965, पृष्ठ, 273
4. तत्रैव, प्राक्कथन, पृष्ठ 5-6
5. तत्रैव, पृष्ठ 270-271
6. गोरख शतक, 13-14
7. योगबीज, 18-19
8. हठयोग प्रदीपिका, 1/1
9. सिद्धसिद्धांतपद्धति, 2/35
10. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, नाथ और संत साहित्यः तुलनात्मक अध्ययन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1965, पृष्ठ, 283-288
11. गोरक्ष पद्धति, 2/22
12. गोरक्ष संहिता, 2/23-31
13. सिद्धसिद्धांतपद्धति, 2/37
14. गोरक्ष संहिता, 1/15-16
15. सिद्धसिद्धांतपद्धति, 2/38
16. तत्रैव, 2/38
17. गोरक्ष पद्धति, 39
18. सिद्धसिद्धांतपद्धति, 2/42
19. विवकमार्तंड, 196
20. गोरक्षसंहिता, 1/38-42
21. योगमार्तंड, 32/33
22. गोरक्षसंहिता, 1/96-100

23. योगबीज, 115,118,119,121
24. अमरौघशासनम्, सम्पादक- शास्त्री, मुकुन्दराम, तत्रैव, पृष्ठ 1
25. गोरखसंहिता, 1/42-51
26. सिद्धसिद्धांतपद्धति, 5/1-12
27. सिद्धसिद्धांतपद्धति, षष्ठ उपदेश
28. सिद्धसिद्धांतपद्धति, 3/1
29. तत्रैव, 3/3

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 8-12

नाथ परंपरा एवं गोरखनाथ

हर्षवर्धन सिंह*

सारांशः गोरखनाथ साक्षात आदि शिव के अवतार हैं। गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथपंथ वस्तुत:शैव एवं योग परम्परा का ही समन्वित स्वरुप है। यद्यपि कि गोरखनाथ हर काल, हर युग में विद्यमान माने जाते हैं, तथापि इतिहासकारों ने मोटे तौर पर इन्हें 6वीं से 12वीं शताब्दी के बीच रखा है। यह कालखण्ड मुख्य रूप से ज्ञान और योग का अथवा इनसे संपर्कित विभिन्न आदर्शों अथवा साधना पद्धतियों का युग है, जिसमें उन्होंने वैदिक कर्मकाण्डों एवं जटिल तथा व्यय साध्य उपासना पद्धतियों का पुरजोर विरोध एवं खण्डन करते हुए एक समरस समाज की बात कही। प्रस्तुत शोधपत्र में नाथ परंपरा की विशेषताओं के साथ-साथ भारतीय समाज में आदिगुरु गोरखनाथ के अवदानों को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

बीशब्दः नाथ, सिद्ध, सिद्धपरंपरा, महर्षिपतंजलि, धर्म-दर्शन, ज्ञान-परम्परा, समरसता, आध्यात्मिकता।

नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी, आदिनाथ या शिव को अपना पहला भगवान या गुरु मानते हैं। शिव के अलावा कई अन्य व्यक्तियों को नाथ सम्प्रदाय में गुरु माना जाता है जिनमें मच्छेन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) प्रमुख हैं। 'नाथ' शब्द का अर्थ होता है 'स्वामी'। कुछ लोग मानते हैं कि नाग शब्द ही बिगड़कर नाथ हो गया। भारत में नाथ योगियों की परंपरा बहुत ही प्राचीन रही है। नाथ समाज हिन्दू धर्म का एक अभिन्न अंग है। भगवान शंकर को आदिनाथ और आदिगुरु माना जाता है। इन्हीं से आगे चलकर नौ नाथ और 84 नाथ सिद्धों की परंपरा शुरू हुई। तिब्बत के सिद्ध भी नाथ परंपरा से ही थे।

संस्कृत के शब्द "नाथ" का शाब्दिक अर्थ 'प्रभु' या 'रक्षक' है, जबकि इससे संबंधित संस्कृत शब्द "आदिनाथ" का अर्थ "प्रथम" या "मूल" भगवान है और यह नाथ सम्प्रदाय के

*सीनियर रिसर्च फेलो, महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

संस्थापक शिव के लिए प्रयुक्त होता है। वामन शिवराम आप्टे ने नाथ को प्रक्षक, प्रभु, स्वामी अर्थों का बोधक कहा है।[1] शब्द "नाथ" उस नाम से जाना जाने वाला शैववाद परंपरा के लिए एक नवाचार है। नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने नाथ को नाथपंथ का परमतत्त्व स्वीकार किया है।[2] नौ नाथों की परंपरा से 84 सिद्ध हुए। नौ नाथों के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। सभी नाथ साधुओं का मुख्य स्थान हिमालय की गुफाओं में है। नागा बाबा, नाथ बाबा और सभी कमंडल, चिमटा धारण किए हुए जटाधारी बाबा शैव और शाक्त संप्रदाय के अनुयायी हैं। नाथ संप्रदाय की एक शाखा जैन धर्म में है तो दूसरी शाखा बौद्ध धर्म में भी मिल जाएगी। यदि गौर से देखा जाए तो इन्हीं के कारण इस्लाम में सूफीवाद की शुरूआत हुई।

रामचंद्र शुक्ल ने 84 सिद्धों की सूची प्रस्तुत की है।[3] भारत के 84 सिद्धों की परंपरा में से एक थे गुरु गोरखनाथ जिनका नेपाल से घनिष्ठ संबंध रहा है। नेपाल नरेश महेन्द्रदेव उनके शिष्य हो गए थे। उस काल में नेपाल के एक समूचे क्षेत्र को 'गोरखा राज्य' इसलिए कहा जाता था कि गोरखनाथ वहां डेरा डाले हुए थे। वहीं की जनता आगे चलकर गोरखा जाति की कहलाई। यहीं से गोरखनाथ के हजारों शिष्यों ने विश्वभर में घूम-घूमकर धूना स्थान निर्मित किए। इन्हीं शिष्यों से नाथों की अनेक शाखाएं हो गई।

विभिन्न पुराणों में नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक गोरक्षनाथ जी से संबंधित कथाएँ मिलती हैं। इसके साथ ही साथ बहुत-सी पारंपरिक कथाएँ और किंवदंतियाँ भी समाज में प्रसारित हैं। उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, बंगाल, पश्चिमी भारत, सिन्ध तथा पंजाब में और भारत के बाहर नेपाल में भी ये कथाएँ प्रचलित हैं। काबुल, गांधार, सिन्ध, बलोचिस्तान, कच्छ और अन्य देशों तथा प्रांतों तक नाथ परंपरा को विस्तार दिया गया था।

18वीं सदी से पहले नाथ सम्प्रदाय के लोगों को "जोगी या योगी" कहा जाता था। हालांकि औपनिवेशिक शासन के दौरान "योगी/जोगी" शब्द का उपयोग ब्रिटिश भारत की जनगणना के दौरान "निम्न स्थिति वाली जाति" के लिए किया जाता था। 20वीं शताब्दी में इस समुदाय के लोगों ने अपने नाम के अंत में वैकल्पिक शब्द "नाथ" का इस्तेमाल करना शुरू किया जबकि अपने ऐतिहासिक शब्द "योगी या जोगी" का प्रयोग अपने समुदाय के भीतर एक-दूसरे को संदर्भित करने के लिए करते हैं। नाथ शब्द का प्रयोग वैष्णववाद (जैसे गोपीनाथ, जगन्नाथ) और जैन धर्म (आदिनाथ, पार्श्वनाथ) में भी किया जाता है।

भारत में नाथ परंपरा की शुरूआत कोई नया आंदोलन नहीं था बल्कि यह "सिद्ध परंपरा" का एक विकासवादी चरण था। "सिद्ध परंपरा" ने योग का पता लगाया, जिसमें मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक तकनीकों के सही संयोजन से सिद्धि की प्राप्ति होती है। नाथ सम्प्रदाय के योगी की सबसे पुरानी प्रतिमा कोंकण क्षेत्र में पायी गयी है। विजयनगर साम्राज्य के कलाकृतियों में उन्हें शामिल किया

 ISSN 0976-0849

गया था। मा-हुन नामक चीनी यात्री, जिसने भारत के पश्चिमी तट का दौरा किया था अपने संस्मरण में नाथ योगियों का उल्लेख किया है। नाथ परंपरा के सबसे पुराने ग्रंथों में इस बात का उल्लेख किया गया है कि नाथ सम्प्रदाय के अधिकांश तीर्थस्थल दक्कन क्षेत्र और भारत के पूर्वी राज्य में स्थित हैं। इन ग्रंथों में उत्तर, उत्तर-पश्चिम या दक्षिण भारत का कोई भी उल्लेख नहीं है।

नाथ गुरुओं की संख्या के बारे में विभिन्न ग्रंथों में मतभेद है और विभिन्न धर्मग्रंथों के अनुसार नाथ सम्प्रदाय में क्रमशः 4, 9, 18, 25 और इससे भी अधिक धर्मगुरू थे। सबसे पहला ग्रन्थ जिसमें नौ नाथ गुरुओं का उल्लेख किया गया है, वह 15वीं शताब्दी का तेलुगू ग्रन्थ "नवनाथ चरित्र" है। प्राचीनकाल के अलग-अलग धर्म ग्रंथों में नाथ गुरुओं को अलग-अलग नाम से उल्लिखित किया गया है।

तिब्बत और हिमालय के क्षेत्रों में पाये गये बौद्ध ग्रंथों में नाथ गुरुओं को 'सिद्ध' गुरु के रूप में उल्लेख किया गया था। जो प्रकृति के सब प्रकार के विकारों को जलाकर नष्ट कर देते हैं, वे अवधूत हैं। शुरूआती विद्वानों का मानना था कि नाथ गुरु मूल रूप से बौद्ध हो सकते हैं, लेकिन नाथ सिद्धांत और धर्मशास्त्र बौद्ध धर्म की विचारधारा से बिलकुल अलग हैं। तिब्बती परंपरा में मच्छेन्द्रनाथ को "लुई-पे" के नाम से पहचाना जाता है, जिन्हें पहला "बौद्ध सिद्धाचार्य" के रूप में जाना जाता है। नेपाल में उन्हें बौद्ध "अवलोकीतेश्वर" के रूप में जाना जाता है। भक्ति आंदोलन से जुड़े संत कबीर ने भी नाथ योगियों की प्रशंसा की है।

भारतीय सभ्यता व संस्कृति के अभ्युदय से ही भारतीय आध्यात्मिक साधना में योग एवं उसका महत्व स्वीकार्य है। भारतीय मूल की सभी आगम-निगम, वैदिक-अवैदिक, साधना-परंपराओं में न्यूनाधिक रूप में अथवा किसी न किसी रूप में योग की स्वीकृति और देशना निरंतर मिलती है। यद्यपि एक संपूर्ण विद्या के रूप में योग साधना की दो समानांतर धाराएँ पतंजलि द्वारा प्रवर्तित पतंजलि योग दर्शन एवं महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ द्वारा प्रतिस्थापित नाथ योग क्रियात्मक योग है। दोनों योग पद्धतियां एक दूसरे के पूरक हैं।

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रवर्तित योग दर्शन जहाँ इसका सिद्धांत एक पक्ष प्रस्तुत करता है, वहीं महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ द्वारा अपनी साधना पद्धति द्वारा इसका व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। वह कहीं भी एक दूसरे का खंडन नहीं करती। वस्तुतः जब पतंजलि योग ऋषि-मुनियों, तपस्वियों के आश्रम तक सीमित हो गया था, सामान्य जन के लिए आसानी से सुलभ हो सके, इसके लिए महायोगी गुरु गोरक्षनाथ ने योगियों सहित जन सामान्य के द्वार तक पहुँचाया।

महायोगी श्रीगोरक्षनाथ जी भारत सहित दुनिया में सर्वस्वीकार्य प्रचलित योग साधना के प्रमुख आचार्य हैं, योग भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। यह शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं

आध्यात्मिक अनुशासन की ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा मन एवं शरीर पर नियंत्रण स्थापित कर मानव अपने भविष्य को पराकाष्ठा की ऊंचाइयों पर परिलक्षित करा सकता है।[4] योग साधना के बल पर व्यक्ति न केवल अपनी मानसिक एवं शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है बल्कि इंद्रियेतर ज्ञान की उपलब्धि तथा प्रकृति के क्रिया-कलापों पर आध्यात्मिक अंकुश भी लगा सकता है।

योग भारतीय सनातन धर्म-दर्शन एवं ज्ञान परंपरा की अमूल्य निधि है, इसका मूल रूप वैदिक संहिताओं में सूचीबद्ध मिलता है। वेदों में योग का प्रतिपादन करने वाले अनेक मंत्र भी उपलब्ध है, वैदिक ग्रंथों की ही भांति उपनिषद, दर्शन, पुराण व स्मृतियां आदि ग्रंथों में भी योग के जहाँ-तहाँ उल्लेख अक्सर प्राप्त होते हैं। केवल योग से ही विशेष संबंध रखने वाले लगभग 20 उपनिषदों का संग्रह योग-उपनिषद संग्रह नाम से प्रकाशित है।

महायोगी गुरु श्री गोरक्षनाथ जी द्वारा प्रवर्तित क्रियात्मक योग को जन-जन तक पहुँचाने के अभियान का प्रमुख उद्देश्य समाज एवं राष्ट्र को निरोगी काया देना है। भारतीय धर्म साधना में योग मार्ग के उन्नायक नाथपंथ के महायोगी गुरु श्री गोरक्षनाथ जी का व्यक्तित्व अप्रतिम है। वे युग प्रवाह को मोड़ने वाले परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने वाले परंपरागत विचार प्रवाह को मथ कर उसके भीतर से सर्वयुगीन तत्त्व को प्रकट करने वाले साधक और विचारक रहें है। गोरक्षनाथ ने योग-विद्या को अपनी साधना से न केवल समृद्ध किया बल्कि भारतीय प्रायदीप के आध्यात्मिक-सामाजिक पुनर्जागरण का सिद्धमार्ग योगमार्ग योग-सम्प्रदाय का प्रचार किया। नाथपंथियों ने योग को अनुभवजन्य धरातल दिया। श्रीगोरक्षनाथ जी द्वारा जलायी गयी अखंड धूनी आज भी प्रज्वलित है और इस अखंड दीप के प्रकाश ने क्रियायोग के महत्व को वैश्विक आयाम दिया।

महायोगी गोरखनाथ जी महाराज ने सामान्य मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य सत्य की खोज और आध्यात्म को मानते थे। महाराज जी योग के प्रबल हिमायती थे, वे आत्म निश्चयी नैतिक जीवन एवं आत्मानुशासन को समाधि की अवस्था में पहुँचने का माध्यम मानते थे। वस्तुतः कुंडलिनी ही ऊर्ध्वमुख होती है। मानव जीवन में योग की आवश्यकता और महत्व को समझने की प्रेरणा देने के उद्देश्य से वे चतुर्दिक भ्रमण करते रहे, अपने चमत्कारी शाक्तियों से ईश्वरीय शक्ति और उसके अस्तित्व का बोध जनमानस को कराते रहे।

गुरु श्रीगोरक्षनाथ में अद्‌भुत एवं अपूर्व संगठनात्मक प्रज्ञा थी। साधु रहे या गृहस्थ महायोगी के निर्मम हथौड़े की चोट ने दोनों की कुरीतियों को चूर्ण कर डाला। ऊँच-नीच, छुआ-छूत, जात-पात जैसी प्रत्येक रूढ़ि पर चोट की। श्रीगोरक्षनाथ ने अपने समय में ऐसे वैचारिकी का लोक भाषा में संदेश दिया जो मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन जैसे प्रभावशाली धार्मिक-सामाजिक क्रान्ति की नींव साबित हुई।[5] हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रबलधारा के रूप में सूफी मत के नए संस्करण का उदय

 ISSN 0976-0849

भी हुआ।

नाथपंथ में अद्‌भुत परंपरा है कि यहाँ शिष्य भी गुरु को राह दिखाते हुए देखे जाते हैं। 'जाग मछन्दर गोरख आया' का निहितार्थ आज भी जन-मन में गुंजायमान है। श्रीगोरक्षपीठ की महंत-परम्परा गुरु-शिष्य की ऐसी परम्परा है, जिसमें पिता-पुत्र का संबंध है। भारतीयता की सुगंध है। हम यह कह सकते है कि साधकों के कब्जे वाले योग को आम जन तक पहुँचा कर महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ ने नर-नारी, अमीर-गरीब, सभी वर्गों, सभी जातियों, महलों एवं झोपड़ियों तक योग को सर्वसमावेशी, सार्वभौमिक एवं सर्वोपयोगी रूप प्राप्त करा लिया। 'योग' अब सामाजिक आन्दोलन सदृश्य प्रतिष्ठित है। नाथपंथ योगियों का राजनीति में प्रवेश भी राजनीति के शुद्धिकरण के लिए हुआ।[6]

आज जीवन की आपाधापी के बीच सुख और शांति की खोज में बेचैन मानव को योग मार्ग पर ही लक्ष्य प्राप्ति संभव है। योग हमें यह बताता है कि स्वस्थ एवं सुखी जीवन के लिए अधिकांश समाज योग मार्ग का अनुसरण करें, ऐसे में जब दुनिया भारतीय-योग मार्ग पर चलने को तैयार हो रही है, तो भारतीय योग साधना के केंद्रों की जिम्मेदारी एवं जवाबदेही अत्यंत बढ़ जाती है।

सन्दर्भ-

1. वामन, शिवराम आप्टे, संस्कृत हिंदी कोष, प्राच्य हिन्दी संस्थान, दिल्ली, 1998 ई., पृष्ठ 113
2. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, नाथ और संत साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1965 ई., पृष्ठ 2 से 5
3. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, सस्करण 16, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1997 ई., पृष्ठ 12
4. सिद्धसिद्धांतपद्धति, पृष्ठ 32
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ संप्रदाय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996 ई., पृष्ठ 125
6. राव, प्रदीप कुमार, नाथ पंथ, महायोगी गुरु श्री गोरक्षनाथ शोधपीठ, गोरखपुर, 2019 ई., पृष्ठ 11

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 13-22

श्रीगोरखनाथ मन्दिर का वैशिष्ट्य

डॉ. फूलचन्द प्रसाद गुप्त*

शोध-सारांशः शिवावतार महायोगी गोरखनाथ की तपोस्थली श्रीगोरखनाथ मन्दिर महायोगी गोरखनाथ से लेकर अब तक धर्म, योग और अध्यात्म का अजस्र स्रोत है। यह सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का केन्द्र है। यहां की यशस्वी महन्त परम्परा ने लोककल्याण के मार्ग को प्रशस्त किया है। सामाजिक समरसता के माध्यम से सामाजिक जागरण का प्रयास अनुकरणीय है। राष्ट्रधर्म को सर्वोपरि स्थान देने के कारण राष्ट्र को समय समय पर जगाने का कार्य यहां की महन्त परम्परा ने किया है। राजनीतिक शुचिता, नारी सम्मान, दीनवत्सलता, गोसेवा, सनातन धर्मावलम्बियों के प्रति समादर इस मन्दिर की महन्त परम्परा की विशिष्टता है। इस सिद्ध पीठ ने शिक्षा और चिकित्सा द्वारा लोककल्याण के पथ पर चलते हुए सामाजिक जड़ता पर प्रहार किया है। अपने सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों के प्रति समर्पित श्रीगोरक्षपीठ भारत में ही नहीं, विश्व में समादृत है।

बीजशब्दः गोरक्षपीठ, गोरखनाथ मंदिर, महायोगी गोरखनाथ, खिचड़ी मेला, हठयोग, समरसता, भीम-सरोवर।

भारतवर्ष का कोना-कोना महायोगी गोरखनाथ के चरण-रज से पावन है। उनकी दिव्य आभा की अनुभूति भारत में ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में की जाती है। जहाँ-जहाँ उनके पूज्य चरण पड़े, वह स्थली तीर्थ बन गयी, उनकी साधना स्थली पूजनीया बन गयी और आज भी पूरे विश्व में श्रुत-परम्परा में वे आदरणीय हैं। भारतवर्ष के अनेक प्रदेशों की श्रुत-परम्परा में महायोगी गोरखनाथ के अवतरण की कथा कही-सुनी जाती है। पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, असम जैसे प्रदेशों की लोककथाओं में उनके अवतार की कथाएँ वर्णित हैं और उत्तर प्रदेश के अयोध्या के पास जयश्री नगर में उनके अवतरण की कथा मान्यता के धरातल पर स्वीकृत है।

गोरखपुर की धरती को महायोगी गोरखनाथ की साधना-स्थली होने का गौरव प्राप्त है। महायोगी की चरणधूलि और अहैतुकी कृपा से गोरखपुर ही नहीं तो पूरा पूर्वांचल अपने को धन्य

*सम्पादक-योगवाणी, प्रकाशक-श्रीगोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

मानता है। गोरखपुर की धरती पर महायोगी ने दीर्घकाल तक तपस्या की और आज भी उनकी आध्यात्मिक, यौगिक और लोक-कल्याणकारी आभा की अनुभूति पूरा पूर्वांचल करता है। श्रीनाथ तीर्थस्थलों में श्रीगोरखनाथ मन्दिर का विशिष्ट स्थान है। यह मन्दिर उसी स्थान पर बना है, जहाँ महायोगी त्रेतायुग में साधनारत हुए थे और द्वापर में भी उनकी दिव्य उपस्थिति रही और आज भी है।

एक समय भ्रमण करते हुए महायोगी गोरखनाथ हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिला स्थित ज्वालादेवी शक्तिपीठ पर पहुँचे। महायोगी की आभा देखकर स्वयं देवी प्रकट हुईं और उनका स्वागत करते हुए उन्होंने उनसे धाम में ही प्रसाद (भोजन) ग्रहण करने का अनुरोध किया। देवी के स्थान पर वामाचार विधि से पूजा-अर्चना होने के कारण तामसी भोजन बनता था, जिसे महायोगी ने ग्रहण नहीं किया। उन्होंने देवी से प्रार्थना की, "मैं खिचड़ी खाता हूँ और वह भी भिक्षाटन द्वारा प्राप्त करके।" यह ध्यातव्य है कि महायोगी ने मद्य-मांस को अस्वीकार कर लोक को सन्देश दिया कि यह अभक्ष्य है, इसके सेवन से मानवीय गुण, दोष में परिवर्तित होने लगते हैं और इससे दया जैसे गुण का नाश हो जाता है। अतः तामसी भोजन मनुष्य के लिए त्याज्य है। उन्होंने कहा भी है– **"जीव सीव संगे बासा"** अर्थात् जीव में शिव का वास है, अतः हमें जीव को न मारना चाहिए और न ही मांस खाना चाहिए। दूसरी बात उन्होंने देवी से कहा कि वे खिचड़ी खाते हैं, वह भी भिक्षाटन करके। इस कथन में लोक को उन्होंने सन्देश दिया कि योगी और गृहस्थ दोनों को अपरिग्रही होना चाहिए। परिग्रह योगी की साधना में तथा गृहस्थ की मुक्ति में बाधक है। ऐसा सन्देश देकर उन्होंने आर्षकथन **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा'** की पुष्टि की तथा त्याग के महत्त्व का प्रतिपादन किया। उन्होंने गृहस्थों को भी सन्देश दिया कि द्वार पर आये योगी का तिरस्कार न करते हुए 'साधु न भूखा जाय' का परिपालन करना चाहिए।

ज्वालादेवी ने महायोगी से कहा, "ठीक है, मैं खिचड़ी पकाने के लिए अदहन गरम करा रही हूँ, आप खिचड़ी माँगकर ले आएँ।" कहते हैं वहाँ से महायोगी भिक्षा में खिचड़ी माँगते हुए अयोध्या की इस प्रान्तभूमि में, जो अब महायोगी गोरखनाथ के नाम पर गोरखपुर कहलाता है, गये। शान्त, एकान्त और रमणीय स्थान देखकर हिमालय की तलहटी की इस पुण्यभूमि में महायोगी समाधिस्थ हो गये। खिचड़ी के लिए रखा गया उनका खप्पर श्रद्धालुओं द्वारा खिचड़ी चढ़ाते रहने से न तो भरा और न ही वे लौटकर ज्वालादेवी के धाम गये। महायोगी गोरखनाथ जी के उसी अक्षय पात्र में तब से आज तक लोग खिचड़ी चढ़ाते आ रहे हैं। जिस समय महायोगी समाधिस्थ हुए, वह मकर संक्रान्ति का पुण्यकाल था, तभी से गोरखनाथ जी को खिचड़ी चढ़ाने की परम्परा है। जहाँ महायोगी समाधिस्थ हुए, उसी स्थान पर उनका भव्य मन्दिर स्थापित है, जिसमें महायोगी की चरणपादुकाएँ और उनकी संगमरमर की भव्य प्रतिमा स्थापित हैं। मन्दिर के गर्भगृह में ही अखण्ड ज्योति सुदीर्घ काल से

प्रज्वलित है, जो महायोगी के योग और ज्ञान की प्रतीक है। मकर संक्रान्ति के अवसर पर यहाँ एक महीने का मेला लगता है।

"वास्तुकला नागर शैली के आधार पर निर्मित यह मन्दिर भारतीय वास्तुशिल्प में अत्यन्त भव्य रूप में अवस्थित है। प्राचीन मन्दिर के गर्भगृह को वर्तमान मन्दिर के गर्भगृह के आकार में समाविष्ट करते हुए इसका निर्माण महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज ने प्रारम्भ किया, उनके ब्रह्मलीन होने पर उनके शिष्य महन्त अवेद्यनाथ जी ने इसे पूर्ण कराकर लोकार्पित किया।"

श्रीगोरखनाथ मन्दिर सामाजिक समरसता के सम्पूर्ण चेतना के केन्द्र के रूप में विश्वविख्यात है। श्रीगोरखनाथ जी को चढ़ायी जाने वाली खिचड़ी भी समरसता की प्रतीक है। यह कई अन्नों का मिश्रण होती है। कई अन्न मिलकर मनुष्य को भयंकर शीत में, जब पाचन मन्द पड़ने लगता है, उस समय खिचड़ी के रूप में पौष्टिकता प्रदान करते हैं और स्वस्थ-शरीर को ऊर्जस्वित करते हैं। उसी प्रकार समरस समाज एक-दूसरे के साथ मिलकर समाज और राष्ट्र को समृद्ध और स्वस्थ बनाता है और विकारों से मुक्ति देता है। खिचड़ी श्रमनिष्ठा की प्रतीक है। अपने आराध्य को खिचड़ी चढ़ाकर लोक इस बात से आश्वस्त करता है कि उनकी कर्मनिष्ठा कहीं से भी प्रभावित नहीं है। कर्मफल के रूप में आपका दिया हुआ ही आपको अर्पित करने आया हूँ। इस अर्पण से लोक की दानवृत्ति का भी पता चलता है।

लोक उत्सवधर्मी होता है। उत्सव आनन्द के प्रतीक हैं। मकर-संक्रान्ति का उत्सव भिन्न रूपों में पूरे भारतवर्ष में मनाया जाता है पर, एक महीने तक चलने वाला मकर-संक्रान्ति उत्सव श्रीगोरखनाथ मन्दिर परिसर में ही देखा जा सकता है। लोक आस्था, विश्वास, श्रद्धा और भक्ति का दृश्य अन्यत्र दुर्लभ है। श्रीगोरखनाथ मन्दिर परिसर में लगने वाला मेला भारतीय समाज का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार नदियाँ अपने उद्गम-स्थल से चलकर समुद्र से मिलकर एकरूप हो जाती हैं, उसी प्रकार भारतीय समाज भिन्न स्थानों से आकर श्रीगोरखनाथ मन्दिर में एकरस, एकरूप हो जाता है। यह श्रीगोरखनाथ मन्दिर का वैशिष्ट्य ही है, जहाँ प्रकृति की सतरंगी छटा मानव-पुष्पों के रूप में भिन्न-भिन्न रंगों में अपनी सामूहिक सद्गन्ध से वातावरण को सुरभित करती है। पूरा मानव-समाज एक रंग में नजर आता है। लोक-आस्था का ऐसा सुन्दर दृश्य कि मकर-संक्रान्ति से पूर्व ही देश के कोने-कोने से ही नहीं तो विदेशों से श्रद्धालुओं का समूह भयंकर शीतलहर की परवाह न करते हुए श्रीगोरखनाथ मन्दिर परिसर में उमड़ पड़ता है, सद्गृहस्थ अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों की परवाह न करते हुए अपने आराध्य के श्रीचरणों में अपनी श्रद्धा और भक्ति के साथ आ पहुँचते हैं। उनका यह विश्वास है कि श्रीगोरखनाथ जी की कृपा से सब ठीक होगा, यह विश्वास उन्हें सम्बल प्रदान करता है।

 ISSN 0976-0849

महायोगी गोरखनाथ जी ने और श्रीगोरखनाथ मन्दिर की महन्त परम्परा ने जन्म-आधारित जाति-व्यवस्था का विरोध किया। श्रीगोरखनाथ मन्दिर के महन्त मानव-मानव में अभेद के प्रबल पक्षधर रहे। श्रीगोरखनाथ मन्दिर की सुदीर्घ महन्त परम्परा ने छुआछूत (अस्पृश्यता) और जाति-पाँति के भेदभाव को अस्वीकार करते हुए इसे मानव समाज के लिए घातक बताया। श्रीगोरखनाथ मन्दिर में बिना भेदभाव के भण्डारे में भोजन और उपेक्षित लोगों के बीच निरन्तर सहभोज का आयोजन इसका प्रमाण है कि समरस समाज की रचना में इस मन्दिर और महन्त परम्परा का विशेष योगदान है। इसी महन्त परम्परा के महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज का काशी के डोम राजा के घर भोजन करना, इस मन्दिर के द्वारा समरस समाज की रचना की महत्त्वपूर्ण कड़ी रही है। इस मन्दिर के महन्तों ने गीता के इस कथन को जीवन में उतारा है–

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-५/१८)

महायोगी गोरखनाथ और उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी की विशेष कृपा नेपाल देश पर रही है। नेपाल के कई स्थलों को श्रीनाथ जी ने अपने चरण-रज से पावन किया है। नेपाल के निवासियों के श्रीगोरखनाथ आराध्य हैं। प्राचीनकाल से ही नेपाल को इनका संरक्षण प्राप्त होता रहा है। मृगस्थली क्षेत्र में मत्स्येन्द्रनाथ जी एवं गुरु गोरखनाथ जी के प्रति विशेष श्रद्धाभाव दर्शनीय है। नेपाल के राजवंश पर इनकी असीम कृपा रही है। आज भी नेपाल के सिक्कों पर श्रीगोरखनाथ जी का नाम अंकित है। नेपाल के निवासियों को गोरखा कहा जाता है। अकालग्रस्त नेपाल को मत्स्येन्द्रनाथ जी एवं गुरु गोरखनाथ जी ने मेघमालाओं के द्वारा जलवृष्टि कराकर धन-धान्य से परिपूर्ण किया था। मकर-संक्रान्ति के अवसर पर गुरु गोरखनाथ जी के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त करने के लिए नेपाल राज परिवार की खिचड़ी चढ़ायी जाती है। श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर सबसे पहले मन्दिर की ओर से श्रीनाथ जी को खिचड़ी चढ़ाते हैं। तत्पश्चात् वे नेपाल राज परिवार की खिचड़ी श्रीनाथ जी को अर्पित करते हैं। श्रीगोरखनाथ मन्दिर के प्रति नेपाल निवासियों की असीम श्रद्धा है, जो मकर संक्रान्ति के अवसर पर दिखायी पड़ती है। लाखों की संख्या में नेपाल के लोग श्रीगोरखनाथ के श्रीचरणों में खिचड़ी चढ़ाते हुए नतमस्तक होते हैं।

द्वापर युग में महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आमन्त्रित करने के लिए भीम गोरखपुर आये थे। उस समय महायोगी गोरखनाथ जी योगसाधना में लीन थे। इसी परिसर में प्रतीक्षा करते हुए भीम ने कुछ समय विश्राम किया था। जिस स्थान पर उन्होंने विश्राम किया था, उनके भार से पृथ्वी का कुछ भाग नीचे धँस गया, उस स्थान ने कालान्तर में सरोवर का रूप ले लिया, जिसे आज हम भीम सरोवर के नाम से जानते हैं। इस सरोवर के किनारे विशालकाय भीम की लेटी हुई प्रस्तर प्रतिमा

स्थापित है, जो श्रद्धालुओं के लिए दर्शनीय है। मकर-संक्रान्ति को प्रातःकाल श्रद्धालु भीम सरोवर के पवित्र जल में स्नान कर श्रीनाथ जी का दर्शन करते हैं और खिचड़ी चढ़ाते हैं।

श्रीगोरखनाथ मन्दिर में सर्वजन-समादर का भाव परिलक्षित होता है। श्रीगोरखनाथ मन्दिर-परिसर में सनातन हिन्दू धर्मावलम्बियों के देवी-देवताओं के विग्रह स्थापित हैं, जिनकी नियमित पूजा-अर्चना मन्दिर के पुजारियों द्वारा की जाती है। मुख्य मन्दिर में ही भगवान् शिव, विघ्नविनाशक गणेशजी, भगवती महाकाली, श्रीभैरवनाथ जी की भव्य मूर्तियाँ स्थापित हैं। मुख्य मन्दिर से उत्तर की ओर अनेक त्रिशूलों से समलंकृत भैरव जी का स्थान, शीतला माता का मन्दिर, शिवजी के मन्दिर में प्रस्थापित शिवलिंग और भगवान् शिव की प्रतिमा तथा दुर्गामाता का मंन्दिर दर्शनार्थियों में भक्ति भाव जगाते हैं। मन्दिर परिसर में प्रतिष्ठित हनुमान जी की मूर्ति, श्रीराम दरबार, श्रीराधाकृष्ण, श्रीदशावतार विष्णु जी, नवग्रह एवं सूर्य भगवान्, श्रीछट्ठीमाता, श्रीहट्ठीमाता, श्रीसन्तोषीमाता और श्रीबालदेवी की प्रतिमा का दर्शन कर भक्तगण भक्ति में सराबोर होते हैं। अखण्ड धूना एक दर्शनीय स्थल है। इस धूने में महायोगी गोरखनाथ जी द्वारा त्रेतायुग से प्रज्वलित अग्नि सुरक्षित है।

मुख्य मन्दिर के दक्षिण ओर श्रीगोरखनाथ मन्दिर के ब्रह्मलीन महन्त ब्रह्मनाथ जी, योगिराज बाबा गम्भीरनाथ जी, महन्त दिग्विजयनाथ जी एवं महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के समाधि मन्दिर हैं, जिनमें इन महान् योगियों की प्रस्तर प्रतिमाएँ स्थापित हैं। ये प्रतिमाएँ उन महान आचार्यों के व्यक्तित्व और कृतित्व का स्मरण कराती हैं। श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर के आवासीय परिसर की बाह्य भित्तियों पर नवनाथ एवं नाथसिद्धों के चित्र उत्कीर्ण हैं, जिनका दर्शन कर श्रद्धालु अपने को कृतार्थ करते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा को समृद्ध करने वाले महर्षियों, मनीषियों, विदुषियों, योगियों की प्रतिमाएँ मुख्य मन्दिर के पश्चभाग में एवं महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति-सभागार में स्थापित हैं, जो भारतीय धर्मसाधना की सुदीर्घ परम्परा का स्मरण कराती हैं। भित्तियों पर उत्कीर्ण महायोगी गोरखनाथ एवं नाथसिद्धों की बानियाँ श्रद्धालुओं को सहज जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं।

श्रीगोरखनाथ मन्दिर में सनातन धर्मावलम्बियों के प्रति समादर का भाव धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजनों में भी दिखायी पड़ता है। गुरुपूजन, श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव, शारदीय एवं वासन्तिक नवरात्र, विजयादशमी पर्व, दीपावली एवं होलिकोत्सव परम्परागत रूप से विधि-विधान से आयोजित होते हैं, जिसमें बड़ी संख्या में जन भागीदारी होती है। श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर के आवास में स्थापित शक्तिपीठ में दोनों नवरात्रों में नौ दिन तक अनवरत माता के नौ रूपों की पूजा श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर या मन्दिर के प्रधान पुजारी द्वारा की जाती है।

श्रीगोरखनाथ जी ने नारी में माता का दर्शन किया। भिक्षाटन के समय वे स्त्रियों को 'माई' कहकर सम्बोधित करते थे। इस परम्परा का पालन श्रीगोरखनाथ मन्दिर में अनवरत जारी है। नारी

 ISSN 0976-0849

शक्ति का आदर मन्दिर के चरित्र में है। वासन्तिक और शारदीय नवरात्र की नवमी तिथि को पूज्य गोरक्षपीठाधीश्वर कन्याओं एवं एक बटुक भैरव के चरणों को अपने हाथों पखारते हैं एवं पूजन-अर्चन कर भोजन कराते हैं। कन्याओं को चुनरी एवं दक्षिणा देकर विदा करते हैं। श्रीगोरखनाथ जी से चली नारी-सम्मान की परम्परा का निर्वहन आज भी श्रीगोरखनाथ मन्दिर के पूज्य महन्त करते हैं।

श्रीगोरखनाथ मन्दिर परिसर में कोई भूखा नहीं रह सकता। मन्दिर की रसोई में दोनों समय कोई भी भोजन कर सकता है। श्रीगोरखनाथ का भण्डारा सभी के लिए खुला रहता है। 'साधु न भूखा जाय' की परम्परा आज भी यहाँ निरन्तरता को प्राप्त है।

श्रीगोरखनाथ मन्दिर भारतीय अस्मिता की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीर जवानों को नहीं भूलता। दीपावली की पूर्व सन्ध्या पर भीम-सरोवर पर प्रतिवर्ष 'एक दीया शहीदों के नाम' कार्यक्रम आयोजित कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। इस कार्यक्रम में ग्यारह हजार दीपक प्रज्वलित किये जाते हैं और शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किया जाता है।

'गावो विश्वस्य मातरः' गाय विश्व की माता है, यह सृष्टि की प्रथम सृष्टि है। गाय विश्व-वन्द्या है। भारत की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है और कृषि का आधार गौ और गोवंश है। गोवंश का संरक्षण और संवर्द्धन श्रीगोरखनाथ मन्दिर का एक प्रमुख उद्देश्य है। मन्दिर परिसर में एक समृद्ध गौशाला है, जिसमें लगभग दो सौ गायें हैं। पूज्य गोरक्षपीठाधीश्वर की नियमित दिनचर्या में गोवंश की सेवा के लिए समय निर्धारित है। मन्दिर में आगन्तुक अतिथि भक्तों को गोदुग्ध से बना पेड़ा और मट्ठा प्रसाद रूप में दिया जाता है।

मन्दिर परिसर के पश्चिमी ओर महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति सभागार है, जिसमें मन्दिर द्वारा वर्षभर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, योग के कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं। इसी सभागार में मन्दिर का पुस्तकालय है, जहाँ श्रीगोरखनाथ द्वारा विरचित, नाथपन्थ एवं अन्य धार्मिक पुस्तकें उपलब्ध हैं। धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, योगप्रधान मासिक पत्रिका **'योगवाणी'** जो मन्दिर द्वारा प्रकाशित होती है, यहाँ से प्राप्त की जा सकती है। इस पत्रिका के प्रधान सम्पादक सम्प्रति गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज हैं। अब तक योगवाणी के अनेक विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। इसके संस्थापक सम्पादक ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज रहे हैं।

भीम-सरोवर के जल-परदे पर महायोगी गोरखनाथ एवं मन्दिर के यशस्वी महन्त परम्परा की जीवन धारा की श्रव्य-दृश्य लाइट एण्ड साउण्ड शो (लेजर शो) के माध्यम से हर सायंकाल देखा

जा सकता है। श्रद्धालुओं की श्रद्धा के केन्द्र महायोगी गोरखनाथ जी के जीवन वृत्त का चालीस मिनट का यह शो दर्शकों में श्रद्धा और भक्तिभाव भरता है।

महायोगी गोरखनाथ हठयोग के प्रवर्तक हैं। महायोगी ने विश्व को योग का प्रसाद दिया है। आज पूरा विश्व इस प्रसाद को प्राप्त कर अपना जीवन सुखी बना रहा है। इसी नाते गोरखपुर को योग की राजधानी कहा जा रहा है। श्रीगोरखनाथ मन्दिर परिसर में ही **'महायोगी गुरु गोरक्षनाथ योग संस्थान'** है जहाँ नियमित रूप से योग प्रशिक्षकों द्वारा योग की शिक्षा दी जाती है और योगाभ्यास भी कराया जाता है। श्रीगोरखनाथ मन्दिर की ओर से **'योग शिविर'** का आयोजन होता है जिसमें देश के अनेक भागों के प्रशिक्षु भाग लेकर योग की शिक्षा देने के लिए अपने स्थान को जाते हैं।

विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाने वाली, धर्म, संस्कृति, अध्यात्म, ज्ञान-विज्ञान की प्राण सम्पोषिका, भारतीयता की प्राण संस्कृत भाषा के संरक्षण और संवर्द्धन में श्रीगोरखनाथ मन्दिर का संकल्प के साथ प्रयास स्तुत्य है। मन्दिर परिसर में ही श्रीगोरक्षनाथ संस्कृत उच्चतर माध्यमिक विद्यालय और श्रीगोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ में अध्ययनरत छात्रों को निःशुल्क आवास एवं भोजन की व्यवस्था मन्दिर की ओर से की जाती है। अबतक हजारों छात्र यहाँ से संस्कृत में उच्च शिक्षा प्राप्त कर इस भाषा की सेवा में अहर्निश संलग्न हैं।

किसी भी समाज को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य शिक्षा और स्वास्थ्य का है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है। पूर्वांचल हमेशा से अपने स्वास्थ्य कारणों से चर्चा में रहा है। मलेरिया और इन्सेफेलाइटिस जैसी बीमारियों ने पूर्वांचल को काफी प्रभावित किया है। पूर्वांचल की आर्थिक दशा भी कमजोर रही है। ऐसे में श्रीगोरखनाथ मन्दिर पूर्वांचल के स्वास्थ्य के लिए सदैव चिन्तित रहा है। यहाँ के लोगों को सस्ती और समुचित चिकित्सा व्यवस्था के लिए कृत संकल्पित मन्दिर ने अपने परिसर में ही **'गुरु गोरक्षनाथ चिकित्सालय'** की स्थापना की जहाँ लोग गम्भीर बीमारियों की चिकित्सा प्राप्त कर रहे हैं। मन्दिर परिसर स्थित **महन्त दिग्विजयनाथ धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय** अपनी सेवाओं से लोगों को आरोग्य प्रदान कर रहा है।

परतन्त्रता काल में पूर्वांचल अशिक्षा के अन्यकार में डूबा हुआ था, अशिक्षा के कारण अनेक प्रकार की सामाजिक विसंगतियों ने अपनी जड़ें जमा ली थीं, ऐसे समय में श्रीगोरखनाथ मन्दिर के तत्कालीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज ने सन् १९३२ में महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् की स्थापना की। उन्होंने भूमि-भवन दान देकर गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना में अपना अमूल्य योगदान किया। महन्त दिग्विजयनाथ जी ने शिक्षा परिषद् के अन्तर्गत चार संस्थाएँ स्थापित कीं। उनके ब्रह्मलीन होने के उपरान्त उनके शिष्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने शिक्षा परिषद् को पल्लवित

 ISSN 0976-0849

पुष्पित करते हुए शिक्षण, प्रशिक्षण, तकनीकी, चिकित्सा की लगभग ३६ संस्थाएँ स्थापित कर पूर्वांचल के युवाओं को प्रतिभा सम्पन्न बनाने का सफल और सार्थक प्रयास किया। इसके बाद उनके ब्रह्मलीन होने पर सम्प्रति गोरक्षपीठाधीश्वर ने शिक्षा परिषद् का विस्तार करते हुए चार संस्थाएँ और स्थापित कीं। श्रीगोरखनाथ मन्दिर ने शिक्षा के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान देकर पूर्वांचल को मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक और आध्यात्मिक रूप से मजबूत किया है।

श्रीगोरखनाथ मन्दिर द्वारा स्थापित **महायोगी गोरखनाथ विश्वविद्यालय, सोनबरसा-बालापार रोड, गोरखपुर** सभी मानकों पर खरा उतरा है। लगभग दो सौ एकड़ के परिसर और अत्याधुनिक सुविधा से युक्त यह विश्वविद्यालय अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, कृषि, वाणिज्य, कला सहित ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में उत्कृष्ट शिक्षा अध्ययन और शोध का केन्द्र बना। निजी विश्वविद्यालय के मानक पर सारी व्यवस्था पूर्ण हो चुकी है।

श्रीगोरखनाथ मन्दिर परिसर स्थित धर्मशालाएँ दर्शनार्थियों के लिए सुलभ हैं। देश एवं विदेश से आने वाले दर्शनार्थी इन धर्मशालाओं में ठहरते हैं। आधुनिक सुविधा से युक्त कमरे दर्शनार्थियों को सहजता से प्राप्त हो जाते हैं। ये धर्मशालाएँ पूर्वांचल के निर्धन आय वर्ग के श्रद्धालुओं के लिए वरदान हैं। बहुत कम शुल्क में ही इनके मांगलिक कार्य यहाँ सम्पन्न हो जाते हैं। यहाँ मांगलिक कार्यक्रमों के लिए आवश्यक वस्तुएँ भी सुलभ हैं।

भारतीय लोकतन्त्र में श्रीगोरखनाथ मन्दिर राजनीतिक शुचिता के लिए विश्व विख्यात है। यहाँ के लिए राजनीति शुद्ध रूप से सेवा का माध्यम है। इस मन्दिर की तीन पीढ़ियाँ राजनीतिक क्षेत्र में पचास से अधिक वर्षों से गोरखपुर का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। जन-सरोकारों से सम्बद्ध श्रीगोरखनाथ मन्दिर के महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज ने गोरखपुर का प्रतिनिधित्व किया। उनके शिष्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज चार बार गोरखपुर संसदीय क्षेत्र से सांसद चुने गये और पाँच बार मानीराम विधानसभा क्षेत्र से विधायक निर्वाचित हुए थे। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के शिष्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज सन् १९९८ से लगातार पाँच बार गोरखपुर संसदीय क्षेत्र से सांसद रहे। अब मार्च २०१७ से आप उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री हैं। श्रीगोरखनाथ मन्दिर के यशस्वी महन्त जन-सरोकारों के प्रति कितने संवेदनशील हैं, इस बात का प्रमाण है उनका लगातार यहाँ की जनता का प्रतिनिधित्व।

श्रीगोरक्षपीठ में नियमित रूप से जनता की समस्याएँ गोरक्षपीठाधीश्वर द्वारा सुनी जाती हैं और उनका निस्तारण भी किया जाता है। जनता के बीच श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर स्वयं पहुँचकर जन-पीड़ा से अवगत होते हैं और समस्याओं के निराकरण हेतु सम्बन्धित व्यक्ति को निर्देशित भी करते हैं। इसी कारण गोरक्षपीठाधीश्वर जनता में श्रद्धेय और समादृत हैं।

अयोध्या में श्रीरामजन्मभूमि पर श्रीराम के भव्य मन्दिर निर्माण का भूमि पूजन एवं शिलापूजन भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने ५ अगस्त २०२० को किया। जन्मभूमि पर श्रीराम मन्दिर निर्माण को लेकर लगभग ५०० वर्ष तक आन्दोलन चला। श्रीगोरखनाथ मन्दिर की तीन पीढ़ियों ने जिसके लिए अनवरत संघर्ष किया, उस श्रीराम मन्दिर का सपना गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज के मुख्यमन्त्री रहते साकार हो रहा है। श्रीराम मन्दिर और श्रीगोरक्षपीठ का नाता कई दशकों का है। श्रीराम मन्दिर निर्माण से जुड़े हर आन्दोलन का नेतृत्व श्रीगोरक्षपीठ के महन्तों ने की। सन् १९४९ में जब विवादित ढाँचे में श्रीरामलला का प्रकटीकरण हुआ, उस समय श्रीगोरक्षपीठ के महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज साधु-सन्तों के साथ वहाँ संकीर्तन कर रहे थे। सन् १९८४ में देश के सभी शैव-वैष्णव धर्माचार्यों को एक मंच पर लाकर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने श्रीरामजन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति का गठन किया, जिसके वे आजीवन अध्यक्ष रहे। महन्त जी की अध्यक्षता में हुए आन्दोलनों में श्रीराम मंन्दिर निर्माण का मार्ग सरल होता रहा पर, संघर्ष कठिन था। महन्त जी ने इस आन्दोलन से पूर्वांचल सहित पूरे देश के लोगों को जोड़ा। सन् १९८६ में जब श्रीराम मंन्दिर का ताला खोलने का आदेश हुआ, उस समय महन्त जी वहाँ उपस्थित थे। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के ब्रह्मलीन होने के बाद उनके शिष्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने अपने गुरु के संकल्प को पूरा करने का बीड़ा उठाया। योगी जी ने श्रीरामलला के दर्शन से लेकर तीन भव्य दीपोत्सव अयोध्या में आयोजित कराया और अयोध्या के गौरव को पुनर्स्थापित करने का सफल प्रयास किया।

नाथपन्थ में आदिनाथ शिव हैं। शिवरूप ही गोरखनाथ जी हैं। शिव को दीन प्रिय हैं। उसी नाथ परम्परा में पूज्य योगी जी शिव अर्थात् कल्याणमय रूप में अपनी दिव्य उपस्थिति से दीनहित सतत संलग्न हैं। वनटाँगियों के जीवन में पूज्य योगी जी शिवरूप से ही प्रकट हैं। स्वतन्त्रता के बाद बनटाँगिया गाँवों में विकास बिल्कुल नहीं था। शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, बिजली सब कुछ का अभाव था। ये गाँव बुनियादी सुविधाओं से वंचित थे। इन गाँवों में बुनियादी सुविधाओं के लिए पूज्य योगी जी ने पहल की। सांसद रहते हुए ही वे अपनी दीपावली बनटाँगिया गाँवों में मनाते रहे। मुख्यमन्त्री बनने के बाद जो सुविधाएँ उन्होंने वनटाँगियों को दिलायी कि आज वे नगरवासियों के साथ कदम मिलाकर चल रहे हैं। आज इन गाँवों में पानी, बिजली, सड़क, विद्यालय, स्वास्थ्य केन्द्र, मकान सब कुछ हैं। वनटाँगिये पूज्य योगी जी को भगवान् मानते हैं।

नाथपन्थ की सर्वोच्च पीठ श्रीगोरक्षपीठ के महन्तों की गौरवशाली और यशस्वी परम्परा है। इस परम्परा के महन्त अद्‌भुत शक्ति-सम्पन्न हुए हैं। यहाँ के महन्त योग-ज्ञान-आभा-सम्पन्न और धर्म-अध्यात्म के मर्मज्ञ रहे हैं। डॉ. प्रदीप कुमार राव की पुस्तक **'नाथपन्थ'** के अनुसार इस मन्दिर के प्रारम्भिक श्रीमहन्तों की जानकारी उपलब्ध नहीं है पर, सन् १७५८ से अब तक के श्रीमहन्तों की

 ISSN 0976-0849

जानकारी उपलब्ध है। सन् १७५८ से सन् १७८६ तक इस मन्दिर के महन्त बाबा बालकनाथ जी रहे। इसके बाद महन्त मनसानाथ (१७८६ से १८११ ई.), महन्त सन्तोषनाथ (१८११-१८३१ ई.), महन्त मेहरनाथ (१८३१-१८५५ ई.), महन्त गोपालनाथ (१८५५-१८८० ई.), महन्त बलभद्रनाथ (१८८०-१८८९ ई.), महन्त दिलवरनाथ जी (१८८९-१८९६ ई.), महन्त सुन्दरनाथ (१८९६-१९२४ ई.), महन्त ब्रह्मनाथ (१९२४-१९३५ ई.), महन्त दिग्विजयनाथ (१९३५-१९६९ ई.), महन्त अवेद्यनाथ (१९६९-२०१४ ई.) श्री गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर हुए। सन् २०१४ से महन्त योगी आदित्यनाथ जी इस पीठ के पीठाधीश्वर हैं। श्रीगोरक्षपीठ की महन्त परम्परा में योगिराज बाबा गम्भीरनाथ का नाम स्मरणीय एवं आदरणीय है, जो महन्त पद पर अभिषिक्त न होते हुए भी इस परम्परा में पूजनीय हैं। सन् १८९६ में महन्त दिलवरनाथ जी के बह्मलीन होने पर योगिराज बाबा गम्भीरनाथ जी ने महन्त पद पर स्वयं अभिषिक्त न होकर सुन्दरनाथ जी को महन्त पद पर आसीन किया और ब्रह्मलीन होने तक स्वयं श्रीगोरक्षपीठ का संरक्षण करते रहे।

शिव कल्याणमय हैं। लोक-कल्याण के कारण ही शिव आदरणीय एवं पूजनीय हैं। शिव ही गोरक्ष के रूप में योग के प्रचार और लोक-कल्याण के लिए चारों युग में इस धरती पर अवतरित हुए। गोरखपुर को उनकी तप:स्थली होने का गौरव प्राप्त हुआ। उनकी तप:स्थली पर बना उनका भव्य मन्दिर जन-श्रद्धा का केन्द्र है। यह मन्दिर योग और आध्यात्मिक आभा से सम्पन है। योग और अध्यात्म के साथ ही धर्म, दर्शन, संस्कृति, समाज, राजनीति के क्षेत्र में भी इसका प्रदेय उल्लेखनीय है। यह मन्दिर जन-सरोकारों से सम्बद्ध है। इस मन्दिर के नेतृत्व की जन-स्वीकार्यता असाधारण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

- राय, रामदरश, सम्भवामि युगे-युगे, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2020 ई.
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ-पन्थ का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1969 ई.
- राव, प्रदीप कुमार, नाथ-पन्थ, गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोध-पीठ, गोरखपुर 2019 ई.
- उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, गोरखनाथ: नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2005 ई.
- मुखर्जी, विश्वनाथ, भारत के महान योगी, खण्ड-7, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1987 ई.
- राव, प्रदीप कुमार, उपाध्याय, ओमजी, नाथ-पन्थ और भक्ति आन्दोलन, चतुर्व्यूह प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011 ई.

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 23-30

नाथसम्प्रदाय और गुरु गोरखनाथ

डॉ. यामिनी राय*

सार-संक्षेपः 'नाथपन्थ' के प्रस्थानिक बीज-बिन्दु हैं 'शिव'। शिव अर्थात् शिवनाथ। शिवनाथ अर्थात् आदिनाथ शिव। शिव के डमरू-निनाद से बाह्यनाद अर्थात् नादब्रह्म की उत्पत्ति हुई। यही नादब्रह्म का शब्दकायिक रूपान्तरण है–'नाथपन्थ'। 'नाथ' एक ब्रह्मवाची उपाधि है, एक पुरापुरुषवाची विशेषण है। दीक्षित योगियों अथवा अवधूतों के नाम के अन्त में जुड़कर एक पूर्ण नाथपन्थी-अभिधान अर्जित करता है, जैसे आदिनाथ, शिवनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, अवेद्यनाथ, आदित्यनाथ आदि। नाथसम्प्रदाय भारत का एक धार्मिक हिन्दू पन्थ है। मध्ययुग में प्रादुर्भूत इस सम्प्रदाय में बौद्ध, शैव तथा योग की परम्पराओं का समन्वय दिखायी देता है। यह हठयोग की साधना-पद्धति पर आधारित पन्थ है। शिव इस सम्प्रदाय के प्रथम गुरु एवं आराध्य हैं। इसके अतिरिक्त इस सम्प्रदाय में अनेक गुरु एवं शिष्य हुए। नाथों की संख्या नौ मानी गयी है लेकिन अलग-अलग ग्रन्थों में इनके क्रम अलग-अलग दिये गये हैं। जनश्रुति है कि आदिनाथ साक्षात् शिव हैं। मत्स्येन्द्रनाथ और जालन्धरनाथ उनके शिष्य थे। लौकिक रूप में मत्स्येन्द्रनाथ इस पन्थ के आदि प्रवर्तक हैं। कहा जाता है कि सिंघलद्वीप की रूपसियों में आसक्त हो जाने से मत्स्येन्द्रनाथ साधनाच्युक्त होकर कुएं में पड़े थे, तब 'जाग मछन्दर गोरख आया' कहकर गोरखनाथ ने उन्हें उद्बोधन दिया था। अतः इस पन्थ के वास्तविक प्रवर्तक गोरखनाथ ही माने जाते हैं।

महत्त्वपूर्ण शब्दावलीः नाथपन्थ, शिवत्व, नवनाथ, कदलीदेश, शैवसम्प्रदाय, अर्द्धनारीश्वर, हठयोग, देहुरा, मसीत, बीज-बिन्दु, समरसता, आर्षवाणी, अगमपन्थ, आत्मदम्भ, उपदेशना, अलष, अक्षय ब्रह्म, पिण्डोत्पत्ति, कौपीन, अवधूत।

नाथपन्थ या नाथसम्प्रदाय के उदय की एक प्रदीर्घ पृष्ठभूमि है। भारतीय दर्शनग्रन्थों, इतिहासग्रन्थों, साहित्यग्रन्थों के अनुशीलन-अन्वेषण से अब पूर्णतः प्रकाशित हो चुका है कि शिव (मंगल) की कामना से जुड़ा नाथसम्प्रदाय शिवत्व की प्रतिष्ठा का उद्वाहक है। आदिनाथ अर्थात् योगीश्वर शिव इस पन्थ के प्रस्थानिक प्रेरणास्रोत हैं। नवनाथों और नाथयोगियों में गुरु गोरखनाथ को

*एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी, श्यामेश्वर महाविद्यालय, सिकरीगंज, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

नाथपन्थ के प्रवर्तन का श्रेय प्राप्त है।

नाथपन्थ के अध्येता और विश्लेषक अनुसन्धायक आज की तारीख में किसी सार्थक निष्कर्ष तक यात्रा कर चुके हैं। उनकी खोज केवल बौद्धिक विलास नहीं है, प्रामाणिक तथ्य से परिपुष्ट एक सबल साक्षात्कार है। इस प्रसंग में नाथपन्थ के एक अन्वेषक आचार्य के विश्लेषी दृष्टिकोण से साक्षात्कार लिया जा सकता है– "'नाथपन्थ' को 'नाथसम्प्रदाय' के नाम से भी जानते हैं। सम्प्रदाय अथवा पन्थ ज्ञानसाधना, अध्यात्मसाधना और परमतत्त्वबोध के धर्मपीठ होते हैं। मोक्षप्राप्ति के ईश्वरीय साक्षात्कार के आनुष्ठानिक केन्द्र होते हैं। महाशक्ति-शिवशक्ति के आराधना-तीर्थ भी। विष्णुशक्ति को जोड़कर कालान्तर में नाथपन्थ ने अपनी अखण्ड व्याप्ति बना ली। शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप को अंगीकार कर अपने पन्थ में स्त्री यानी योगिनियों को गौरव प्रदान की। पर्वतांचल में कदलीदेश (स्त्रीदेश) की परिकल्पना और मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोपीनाथ आदि और भी योगियों का पहुँचना-लौटना नाथपन्थ के इस रहस्य-दर्शन का एक उपखण्ड है। नाथपन्थ, औघड़पन्थ, अमरपन्थ, स्वामीपन्थ, कबीरपन्थ, अगमपन्थ, गोरखपन्थ आदि पान्थिक नाम हैं। इसी तरह रुद्रसम्प्रदाय, शैवसम्प्रदाय, शाक्तसम्प्रदाय, श्रीसम्प्रदाय, राधावल्लभी सम्प्रदाय, रामावतसम्प्रदाय और नाथसम्प्रदाय जैसे नाम मत या पंथ के संवाहक बने। प्रत्येक पन्थ व सम्प्रदाय का कोई-न-कोई संस्थापक प्रतिनिधि अथवा संवाहक द्रष्टा रहा है। सभी के अपने-अपने तत्त्वसिद्धान्त बने जिसने पन्थ अथवा सम्प्रदाय अथवा मत का अभिनव शुभारम्भ किया।

'नाथपन्थ' के प्रस्थानिक बीज-बिन्दु हैं 'शिव'। शिव अर्थात् शिवनाथ। शिवनाथ अर्थात् आदिनाथ शिव। शिव के डमरू-निनाद से बाह्यनाद अर्थात् नादब्रह्म की उत्पत्ति हुई। यही नादब्रह्म का शब्दकायिक रूपान्तरण है–'नाथपन्थ'। 'नाथ' एक ब्रह्मवाची उपाधि है, एक पुरापुरुषवाची विशेषण है। दीक्षित योगियों अथवा अवधूतों के नाम के अन्त में जुड़कर एक पूर्ण नाथपन्थी-अभिधान अर्जित करता है, जैसे आदिनाथ, शिवनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, अवेद्यनाथ, आदित्यनाथ आदि।"[1]

मुगल आक्रान्ताओं से त्रस्त होकर वज्रयानी सिद्धों ने अपने आश्रमस्थल नालन्दा एवं विक्रमशिला के ध्वस्त होने पर नेपाल की तराइयों में जाकर अपनी प्राण-रक्षा की। यहाँ उनका सम्पर्क शैव साधकों से हुआ। दोनों साधनाओं के मेल ने नाथपन्थ को जन्म दिया। वज्रयान की सहज-साधना नाथसम्प्रदाय के रूप में पल्लवित हुई। इस तरह नाथसम्प्रदाय सिद्धों का एक विकसित रूप है। नाथपन्थ को सिद्धों व सन्तों के बीच की कड़ी कहना चाहिए। 'नाथ' शब्द का अर्थ है 'स्वामी'। कुछ लोग मानते है कि 'नाग' शब्द ही अपभ्रंश में उतर कर 'नाथ' हो गया। भारत में नाथयोगियों की परम्परा बहुत प्राचीन रही है। नाथपन्थ हिन्दू समाज का एक अभिन्न अंग है। नौ नाथों से ही 84 सिद्ध हुए। नौ नाथों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है।

नाथसम्प्रदाय भारत का एक धार्मिक हिन्दू-पन्थ है। मध्ययुग में प्रादुर्भूत इस सम्प्रदाय में बौद्ध,

शैव तथा योग की परम्पराओं का समन्वय दिखायी देता है। यह हठयोग की साधना पद्धति पर आधारित पन्थ है। शिव इस सम्प्रदाय के प्रथम गुरु एवं आराध्य हैं। इसके अतिरिक्त इस सम्प्रदाय में अनेक गुरु एवं शिष्य हुए। नाथों की संख्या नौ मानी गयी है। लेकिन अलग-अलग ग्रन्थों में इनके क्रम अलग-अलग दिये गये हैं। जनश्रुति है कि आदिनाथ साक्षात् शिव हैं। मत्स्येन्द्रनाथ और जालन्धरनाथ उनके शिष्य थे। लौकिक रूप में मत्स्येन्द्रनाथ इस पन्थ के आदि प्रवर्तक हैं। कहा जाता है कि सिंघलद्वीप की रूपसियों में आसक्त हो जाने से मत्स्येन्द्रनाथ साधनाच्युत होकर कुएँ में पड़े थे, तब 'जाग मछन्दर गोरख आया' कहकर गोरखनाथ ने उन्हें उद्‌बोधन दिया था। अत: इस पन्थ के वास्तविक प्रवर्तक गोरखनाथ ही माने जाते हैं। कहते हैं कि आदिनाथ के दो शिष्य थे– 1. मत्स्येन्द्रनाथ 2 जालन्धरनाथ। दोनों नाथों की अलग-अलग शिष्य परम्पराएँ है। मत्स्येन्द्रनाथ-गोरखनाथ की पृथक् तथा जालन्धरनाथ-कृष्णपाद की पृथक् शिष्य-परम्परा है। नाथ-सम्प्रदाय के अनुयायी मुख्यत: बारह शाखाओं में विभक्त हैं। ये बारह पन्थ हैं- 1. सन्तनाथ 2. धर्मनाथी 3. रामपन्थ 4. नटेश्वरी 5. कपिलानी 6 वैराग 7 माननाथी 8. आईपन्थ 9. पागलपन्थ 10. धजपन्थ 11. कल्हण 12 गंगानाथी।

नाथपन्थ के चौरासी सिद्धों की सबसे प्राचीन सूची शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर के मैथिल ग्रन्थ 'वर्णरत्नाकर' में है जो ऐशियाटिक लाइब्रेरी में सुरक्षित है। इसमें अनेक सिद्ध वज्रयानी सिद्धों से अभिन्न हैं। नाथपन्थियों की भाषा जनभाषा है जिसे पुरानी हिन्दी कहते हैं। इस प्रकार इस पर थोड़ा-बहुत अपभ्रंश का भी प्रभाव है। नाथों के काव्य का स्वरूप मूलत: सबदियों और पदों में है जिसमें नीति, आचार, संयम और योग सम्बन्धी विचार वर्णित हैं। सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान योग-साधना की प्रतिक्रिया के रूप में आदिकाल में ही हठयोग साधना आरम्भ हुई। नाथपन्थ को सिद्धों की परम्परा का ही विकसित रूप मानना चाहिए। प्रसिद्ध हिन्दी-इतिहासकार डॉ. रामकुमार वर्मा ने नाथों के सम्बन्ध में कहा है कि– "नाथपन्थ के चरमोत्कर्ष का समय 12वीं सदी से 14वीं सदी के अन्त तक माना गया। नाथपन्थ से ही भक्तिकाल के सन्तमत का विकास हुआ था, जिसके प्रधान व प्रथम कवि कबीरदास थे।"

प्रसिद्ध निबन्धकार, इतिहासकार एवं आलोचक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि "शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित व्यक्तित्व भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति-आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का भक्तिमार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।"

गुरु-शिष्य-परम्परा भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है। प्राचीनकाल में ज्ञान-परम्परा मौखिक होने के कारण गुरु-शिष्य परम्परा का अधिक महत्त्व था। भारत की सभी ज्ञान-परम्पराओं में

 ISSN 0976-0849

गुरु-शिष्य-परम्परा प्रतिष्ठित हुई। नाथपन्थ में भी गुरु-शिष्य-परम्परा का अभ्युदय इसी स्वाभाविक प्रक्रिया का हिस्सा था, किन्तु योग प्रधान इस आध्यात्मिक पान्थिक-परम्परा में गुरु का महत्त्व बढ़ता गया। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ एवं गुरु श्रीगोरखनाथ क्रियात्मक योग के प्रणेता हैं। नाथपन्थ के योगियों ने योग को व्यावहारिक धरातल प्रदान किया। योग को सीखने में सिद्धान्त से अधिक व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रभावी है। अनुभवयुक्त सिद्धान्त पढ़कर अभ्यास में उतारना अत्यन्त कठिन है। नाथपन्थ सिद्ध-मत है, योग-मत है। नाथपन्थ में योगी शिष्य योगाभ्यास गुरु से सीखते हैं। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ एवं गुरु श्रीगोरखनाथ से गुरु-शिष्य की अद्वितीय परम्परा अनवरत बनी हुई है। नाथपन्थ में महायोगी गोरखनाथ ने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को कदलीवन के मायाजाल से मुक्त कराया था। गोरखनाथ का 'जाग मछन्दर गोरख आया' सन्देश आज भी पन्थ के गुरु एवं शिष्य-परम्परा का अद्वितीय उदाहरण है। नाथपन्थ की गुरु-शिष्य-परम्परा में आज भी यह देखा जाता है कि गुरु अपनी शिष्य-परम्परा को ध्यान से सुनता है, गुनता है और उसका सच सहर्ष स्वीकार करता है।[2]

महायोगी गोरखनाथ द्वारा संरक्षित साधना का विस्तार बहुत था। इस हिन्दू योगी के नाथपन्थ का द्वार (हिन्दू और मुसलमान) सभी के लिए खुला था। नाथपन्थ के योगी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अपना योग और सामाजिक समरसता का मन्त्र लेकर हर द्वार पर गए, चाहे यह द्वार किसी भी मजहब को मानने वाले का हो, किसी विचार-दर्शन को स्वीकार करने वाले का हो। गोरखनाथ ने हिन्दुओं के साथ-साथ इस्लामी समाज को भी रूढ़ियों-कुरीतियों के विरुद्ध तनकर खड़ा होने का उपदेश दिया। योग की जीवनधारा पर चलकर मुहम्मद साहब के उपदेशों को सही सन्दर्भों में समझने का सन्देश दिया। महायोगी गोरखनाथ के यही उपदेश एवं सन्देश आगे चलकर कबीर, जायसी और रहीम देते हुए दिखायी देते हैं।

गोरखनाथ ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का एकाकार रूप योग एवं योगी में प्रस्तुत करते हुए कहा कि हिन्दू अपने भगवान को मन्दिर में खोजता है, जबकि मुसलमान मस्जिद में। परन्तु योगी के लिए यह परमपद सर्वत्र है। मन्दिर-मस्जिद सब जगह उसे परमात्मा का सहज बोध सुलभ होता है। राम और खुदा घर-घर में व्याप्त है–

"हिन्दू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद जहां देहुरा न मसीत॥
हिन्दू आषैं अलष कौं तहाँ राम अछै न षुदाई॥"

हिन्दू-मुस्लिम एकता या यों कहें सभी को एक समान मार्ग पर चलने का उपदेश नाथपन्थ की पूरी योग-साधना में प्राप्त होता है। नाथपन्थ की योग-परम्परा में सगुण-निर्गुण सभी प्रकार की उपासना पद्धतियों का समवेत-स्वर है। यही समवेत-स्वर सूफी-परम्परा में प्रतिबिम्बित हुआ। भारत में सूफी मत नाथपन्थ की इसी हिन्दू-मुस्लिम एकता के विचार-दर्शन का प्रतिफलन है।

कुल मिलाकर देखा जाय तो सभी नौ नाथों में गोरखनाथ सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में सामने आते हैं। गोरखनाथ जैसे सिद्ध महापुरुष के समय के विषय में सोचना और निर्णय करना कठिन कार्य है। गोरखनाथ नाथ-साहित्य के प्रथम कवि माने जाते हैं। ये सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे, किन्तु उन्होंने सिद्धों का विरोध किया। इनके कार्यकाल के सन्दर्भ मे विद्वानों के विभिन्न मत हैं। राहुल सांकृत्यायन ने गोरखनाथ का समय विक्रम की दसवीं शताब्दी (800 से 900 ई. के बीच) माना है। प्रसिद्ध हिन्दी-इतिहासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें नवीं शती का माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी तेरहवीं शती निर्धारित करते हैं। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डॉ. रामकुमार वर्मा के मत से सहमति प्रकट करते हुए ग्यारहवीं सती को मानते हैं। नये अनुमानों में यह माना जाने लगा कि गोरखनाथ ने लगभग 13वीं शती के प्रारम्भ में अपना साहित्य रचा था।

गोरखनाथ के जन्मस्थान के विषय में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कोई गोरखनाथ को गोदावरी नदी के किनारे चन्द्रगिरि में उत्पन्न मानता है तो कोई उनका जन्म नेपाल में मानता है। कुछ लोगों का मानना है कि वे झेलम नदी से गोरखपुर आये थे। दूसरा मत है कि गोरक्ष सहस्रस्तोत्र के आधार पर वे 'बड़व' में उत्पन्न हुए थे। इस सम्बन्ध में डॉ. रांगेयराघव उन्हें पेशावर के निकट वाले गोरखपुर में उत्पन्न मानते हैं। इन सभी मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गोरखनाथ जी का जन्म पश्चिमोत्तर भारत में ही किसी स्थान पर हुआ था।

गोरखनाथ की जाति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, किन्तु डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी[3], डॉ. रांगेयराघव आदि विद्वानों ने उन्हें ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ माना है। कई विद्वानों के अनुसार ब्राह्मण-दम्पती को मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से पुत्र की प्राप्ति हुई थी। बाद में गुरु मत्स्येन्द्रनाथ से शिक्षा ग्रहण कर उच्चकोटि के विद्वान व योगी बन गये। गोरखनाथ ने अकाल संन्यास लिया था अर्थात् वे बाल्यावस्था में ही संन्यस्त हो गये थे। अकाल संन्यास लेने वाले बहुत से आचार्यों और संन्यासियों की चर्चा बहुत पुरानी है। गोरखनाथ का संन्यास नामादि का परिवर्तन मात्र नहीं है, जन्मान्तर है। गोरखनाथ का सम्बन्ध साधना-पद्धति और दर्शन से भी है। कुछ रोचक उदाहरण दिये जा सकते हैं। 'गोरक्षनाथस्तोत्र' में कहा गया है– 'ग'कार गुण-संयुक्त, 'र'कार रूप-लक्षण, 'क्ष'कारेण अक्षय ब्रह्म श्रीगोरक्षनमोऽस्तुते।

'गोरख-उपनिषद्' में दो स्थलों पर भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ मिलती हैं। प्रथम के अनुसार गोरखनाथ अन्तर्यामी होकर संसार के जीवों की इन्द्रियों की रक्षा करते हैं। दूसरी व्याख्या के अनुसार 'गो' शब्द का अर्थ वाक्-ब्रह्म है। 'र' का अर्थ है– 'रक्षा करते है।' 'क्ष' का अर्थ है– 'क्षयरहित'। अर्थात् गोरक्षनाथ अक्षय वाक्-ब्रह्म की रक्षा करते हैं। एक आधुनिक साम्प्रदायिक रचना 'गोरक्ष-शब्दनिरुक्ति में कहा गया है–

"गां रक्षतीति गोरक्ष रक्षतीति रक्षः, गवां रक्षः गोरक्षः"

 ISSN 0976-0849

यावत् गोपदवाच्य की जो रक्षा करता हो, उसे गोरक्ष कहते हैं, अर्थात् जितने भी 'गो' शब्द के अर्थ हैं, उन अर्थों की रक्षा करने वाले का नाम गोरक्ष है।"[4]

गोरखनाथ के चरित्र पर पौराणिक प्रभाव इतना पृथुल है कि उसके भीतर से तथ्य को निकालना असम्भव-सा हो गया है। शिवपुराण के अनुसार, गोरखनाथ शिवावतार थे। 'गोरक्षगीता' में बताया गया है कि इन्द्राणी के पातिव्रत की रक्षा में गोरखनाथ ने सुराचार्य बृहस्पति की सहायता की थी। मार्कण्डेयपुराण में मार्कण्डेय और मत्स्येन्द्रादि के द्विविध हठयोगी मता की ओर संकेत है। स्कन्दपुराण के केदारखण्ड में नवनाथों में गोरखनाथ की गणना की गयी है।

गोरखनाथ के जीवनवृत्त से सम्बन्धित प्रामाणिक सामग्री के अभाव में उनके चरित्र और व्यक्तित्व पर भी प्रामाणिक रूप में कुछ कहना कठिन है। उनके नाम से प्राप्त केवल रचनाओं और किंवदन्तियों के आधार पर प्रामाणिक सामग्री का अभाव होने के कारण ही विद्वान् गोरखनाथ के चरित और व्यक्तित्व पर कुछ लिखने में संकोच करते हैं। फिर भी प्रयास कर एक रूपरेखा तैयार की जा सकती है। जब डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी गोरखनाथ को शंकराचार्य के बाद दूसरा महिमाशाली व्यक्तित्व महापुरुष घोषित करते हैं, तो वे एक साथ गोरखनाथ के व्यक्तित्व के अनेक महत्त्वपूर्ण आयामों की ओर भी अनायास संकेत कर देते हैं। गोरखनाथ के व्यक्तित्व के महत्त्व को तत्कालीन धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आँकना चाहिए।

गोरखनाथ के व्यक्तित्व-गुरुत्व और उनकी महानता को प्रकाशित करने में विभिन्न कालखण्ड और इतिहास भी कम योगदान नहीं करते। उनके जिस धार्मिक, साम्प्रदायिक और सामाजिक कर्तृत्व का पहले स्मरण किया गया है, उन सबके मूल में उनके दर्शन और साधन को ही समझना चाहिए जिनका निर्वाचन उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। उनके नाम से अमनस्कयोग, अमरौघशासनम्, अवधूतगीता, गोरखकल्प, गोरक्षाकौमुदी, गोरक्षगीता, गोरक्षशतक, योगचिन्तामणि, योगबीज, योगशास्त्र आदि रचनाएँ संस्कृत में लिखी हुई बतायी जाती हैं। उक्त ग्रन्थों में से अनेक ग्रन्थ ऐसे हैं जो एक ही के नामान्तर हैं।

ब्रिग्स ने गोरखनाथ के 'गोरक्षशतक' को उनकी सबसे प्रामाणिक रचना माना है। गोरखनाथ की सबसे प्रामाणिक रचना 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' को बताया जाता है। उपर्युक्त सारे ग्रन्थों की विषयसामग्री अपने सम्पादित रूप में तथा अपनी प्राचीनता में निर्विवाद है। गोरक्षशतक, सिद्धसिद्धान्तपद्धति, महार्थमंजरी नामक रचनाएँ अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती हैं। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' का महत्त्व दो दृष्टियों से है। इसमें एक ओर नाथमत की तत्त्ववैज्ञानिक दृष्टि का प्रकाश है तो दूसरी ओर इसके प्रतिपादन के प्रमाण में पिण्डब्रह्माण्डवाद की सिद्धि की गयी है, जिसके ज्ञान के बिना योगी होना असम्भव है। इस प्रकार यह ग्रन्थ मुख्य रूप से दार्शनिक ग्रन्थ होते हुए भी साधना की भूमिका के ज्ञान के लिए अनिवार्य है। इसके छह उपदेशों में क्रमशः पिण्डोत्पत्ति, पिण्डविचार, पिण्डसंवित्ति,

पिण्डाधार, पिण्डपदसमरसीकरण और अवधूतयोगिलक्षण का निरूपण है। योगांगों का भी निरूपण कर दिया गया है। बाह्याचार और कुत्साचार का विरोध करते हुए अन्तरसाधना का समर्थन किया गया है। योगियों ने भण्डत्व का उद्घाटन कर 'आदेश', 'कुण्डल', 'कौपीन', 'खर्पर', 'भजन' आदि के सिद्धान्त की व्याख्या भी की है। 'अधिकार' पर गोरखनाथ ने विशेष बल दिया है।

गोरखनाथ की हिन्दी रचनाएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। 13वीं-14वीं शती की देशी भाषा के रूप में प्राप्त रचनाएँ विधिरूपात्मक हैं और उस काल में प्रचलित विविध रचना शैलियों में लिखी हुई हैं। इनमें गोरखनाथ के विचार अवश्य हैं क्योंकि इनका स्वर विचार-भाव-साधना की दृष्टि से कहीं भी संस्कृत-रचनाओं से भिन्न नहीं है। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने 'गोरखबानी' में इन रचनाओं का सम्पादन किया है। गोरखनाथ की संस्कृत और हिन्दी दोनों प्रकार की रचनाओं का यदि मूल्यांकन करें और गोरखनाथ के व्यक्तित्व से उनका समन्वय करें तो यह स्पष्ट भासित होता है कि ये उपदेश केवल योगियों के लिए ही नहीं, सामान्य जनसमाज के लिए भी समान रूप से उपयोगी, प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण थे। साधना, धर्म, सामाजिक जीवन, उदारता, दया आदि गुणों की महिमा उनमें चरमोत्कर्ष को प्राप्त थी। इसीलिए वे आज भी भारतवर्ष के सर्वाधिक पठित और अनपढ़ दोनों के लिए स्मरणीय बने हुए हैं।

सारांशत: यह कहने में आज किसी भी इतिहासकार, साहित्यकार और खोजकर्ता को किसी तरह का संशय नहीं है कि नाथपन्थ और उसके प्रधान प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ का चिन्तन और अवदान विश्वमुखी बन चुका है। नाथसम्प्रदाय और उसके योग-दर्शन पर अनेक शोधकार्य हो रहे हैं। नाथ-साहित्य और योग-दर्शन के विद्वान् अनुसन्धायक बेबाक निष्कर्ष दे रहे हैं कि– "गोरख की उपदेश-वाणी का विश्व-प्रसार अब हो रहा है। नाथपन्थ और उसके योग-दर्शन पर विस्तृत और गम्भीर शोधकार्य अब हो रहे हैं। गोरक्ष-दर्शन पर भी हुए चिन्तन-मनन साहित्य के आकार में कम प्रसारित हुए। लेखक-दार्शनिक और इतिहासकार अन्तर्द्रष्टा होकर भी बहिर्वक्ता नहीं बन सके। नाथपन्थ का शब्दकोश पूर्णाकार में सामने नहीं आया। आज विश्वकोश-निर्माण की आकाँक्षा जगी है तो निश्चयत: योगी आदित्यनाथ के भाषा-साहित्य-प्रेम के कारण, योग-दर्शन को समझने और उसे विश्व-चिन्तन का विषय बनाने के कारण। वर्तमान बतला रहा है कि नाथ-चिन्तन और योग-दर्शन के नये महानायक योगी आदित्यनाथ गुरु गोरखनाथ की आर्षवाणी का लोकव्यापी सम्प्रसार करेंगे। गोरख का विचार-सिन्धु असंख्य ज्ञान-तरंगों में परिव्याप्त है। जरूरत है कि आज की भटकी-दर्पमरी मानवता को गोरख-पथ पर खड़ा किया जाय। गोरख की एक-एक वाणी अनमोल है। प्रसंगवश, उनकी काव्यवाणी का एक उपदेशक पद-बन्ध अमल में लाने-योग्य है–

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरै धरिबा पावं।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा, भणत गोरष रावं॥

 ISSN 0976-0849

अर्थ आसान है, मगर मीमांसा बड़ी गूढ़ है। प्रत्येक उपदेश-खण्ड बहुत दूर तक अर्थ की बौछार करता है। साधारण काव्यभाषा में गुरु गोरखनाथ असाधारण बात रखते हुए कह जाते हैं कि तौलकर बोलना चाहिए, बिना सोचे-विचारे नहीं। पैर को पटक कर नहीं, धीरे से धरती पर रखकर चलना चाहिए। पैर पटकने से धरती माँ चोटिल हो उठेगी, अभीप्सित अभिशप्त हो उठेगा। गर्व (आत्मदम्भ) कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि अहंकार आत्म-नाश को निमन्त्रण देता है। गोरख की साधु-साधना निष्कर्ष देती है कि तनावरहित हो सहज स्वभाव रखना चाहिए। सहजता लोक को आकृष्ट करती है। लोक आकृष्ट होगा तभी तुम्हारी उपदेशना विश्वमुखी होगी।"[5]

प्रकृति और छायावादी काव्य-दर्शन के निगूढ़ मीमांसक कवि सुमित्रानन्दन पन्त के एक जिज्ञासा-प्रश्न का प्रत्युत्तर देते हुए दर्शन-मनीषी ओशो ने भारत के धर्माधारित आध्यात्मिक आकाश की बारह विभूतियों (कृष्ण-पतंजलि-बुद्ध-महावीर-नागार्जुन-शंकर-गोरख-कबीर-नानक-मीरा-रामकृष्ण -कृष्णमूर्ति) में गुरु गोरखनाथ को पांक्तेय अध्यात्म-योगी और महादार्शनिक अवधूत के रूप में अभिलक्षित किया है। महर्षि ओशो की निष्कर्ष-विधायिका टिप्पणी नाथपन्थी महायोगी गुरु गोरखनाथ के शिखरस्पर्शी साधनासिद्धि का साक्षात्कार पाने के लिए पर्याप्त है।

सन्दर्भः

1. राय, रामदरश, सम्भवामि युगे-युगे, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2020 ई., पृष्ठ 75
2. राय, कुसुम, हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2009 ई., पृष्ठ 40
3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1969 ई., पृष्ठ 210
4. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2002 ई., पृष्ठ 29
5. राय, रामदरश, तत्रैव, पृष्ठ 118-119

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 31-36

गुरुगोरखनाथ की परम्परा और उनकी विरासत

डॉ. आरती सिंह*

सारांशः नाथपंथ में ईसा की छठवीं से दसवीं शताब्दी के मध्य महायोगी गुरु गोरखनाथ का प्रादुर्भाव हुआ। योगिराज गोरखनाथ को नाथपंथ के प्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया गया है। गोरखनाथ जी ने निर्मम हथौड़े की चोट से साधु और गृहस्थ दोनों की कुरीतियों को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। लोक जीवन के किसी भी रूढ़ि पर चोट करते समय उन्होंने दुर्बलता नहीं दिखायी। नाथपंथ भारतीय इतिहास की वह प्रबल धारा है, जो शताब्दियों तक भारत देश के अधिकांश भाग में प्रवाहित होती रही। इसने विविध साधना पद्धतियों और साहित्य की धाराओं को प्रभावित किया है। गोरखनाथ ने एक नयी योग प्रणाली को जन्म दिया, जिसे हठयोग कहते हैं। शरीर और उसकी नाड़ियों की शुद्धि और स्वास्थ्य की रक्षा करना हठयोग का मूल उद्देश्य है। योगिराज गोरखनाथ को साधना, चिन्तन और लोक-कल्याण की भावना ने जन-जन को प्रभावित किया। गुरु गोरखनाथ में अद्‌भुत सांगठनिक क्षमता थी। उन्होंने अपनी इस क्षमता का भरपूर उपयोग अपने सम्प्रदाय को संगठित करने में किया। नाथ सम्प्रदाय का जो वर्तमान रूप है, वह गोरखनाथ के विराट व्यक्तित्व के कारण ही देश-देशान्तर में व्याप्त है।

बीजशब्दः साधना पद्धति, संगठनात्मक क्षमता, योगमार्ग, भक्ति आन्दोलन, योगशास्त्र, नाथपंथ।

नाथपंथ के प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ माने जाते हैं। गोरखनाथ योगविद्या के आचार्य थे। गुरु गोरखनाथ के व्यक्तित्व एवं चरित्र पर प्रमाणिक या पूर्ण सामग्री के अभाव में स्पष्ट रूप से कुछ भी कहना कठिन है, तथापि जनश्रुतियों और धारणाओं पर उनकी सच्चरित्रता, उदारता तथा उच्च व्यक्तित्व-शीलता पर अनेक विद्वानों ने प्रकाश डाला है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि- "उनके चरित्र में कहीं भी भाविह्वलता नहीं है। जिन दिनों उन्होंने जन्म ग्रहण किया था, उन दिनों भारतीय धर्म-साथना की अवस्था विचित्र थी। शुद्ध जीवन, सात्त्विक-वृत्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य की

*सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

भावना उन दिनों अपनी निम्नतम सीमा तक पहुँच चुकी थी। गोरखनाथ जी ने निर्मम हथौड़े की चोट से साधु और गृहस्थ, दोनों की कुरीतियों को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। लोक जीवन में जो धार्मिक चेतना पूर्ववर्ती सिद्धों से आकर उसके पारमार्थिक उद्देश्य से विमुख हो रही थी, उसे गोरखनाथ ने नयी प्राणशक्ति से अनुप्राणित किया। किसी रूढ़ि पर चोट करते समय उन्होंने दुर्बलता नहीं दिखायी। वे स्वयं पण्डित व्यक्ति थे, पर यह अच्छी तरह जानते थे कि पुस्तक लक्ष्य साधन है। उन्होंने किसी से भी समझौता नहीं किया, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं; परन्तु फिर भी उन्होंने समस्त प्रचलित साधना मार्ग से उचित भाव ग्रहण किया।"[1]

नाथपंथ भारतीय इतिहास की वह प्रबलधारा है, जो शताब्दियों तक भारत देश के अधिकांश भाग में प्रवाहित होती रही। जिसने विविध साधना पद्धतियों और साहित्य की धाराओं को प्रभावित किया है। इसी नाथपंथ में ईसा की नवीं-दसवीं शताब्दी के मध्य में महान्योगी गुरु गोरखनाथ का प्रादुर्भाव हुआ। योगिराज गोरखनाथ को नाथपंथ के प्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया ही गया है। नाथ सम्प्रदाय में इन्हें शिव के अवतार के रूप में मान्यता मिली हुई है। आचार्य द्विवेदी के अनुसार– "शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और महिमा मण्डित व्यक्तित्व भारतवर्ष में दूसरा नहीं है। भारत वर्ष के कोने-कोने में इनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आंदोलन से पूर्व सबसे शक्तिशाली आन्दोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था। गुरुगोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े धार्मिक नेता थे।"[2]

गोरखनाथ कौन थे, कहाँ जन्मे, किस जाति में जन्मे, यह कोई महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय नहीं है। वे एक ऐसे महान् युगद्रष्टा, युग प्रवर्तक महापुरुष थे जिनकी सिद्धियों की चर्चा सम्पूर्ण भारत वर्ष में तो है ही, भारत के बाहर के अन्यान्य देशों जैसे– नेपाल, तिब्बत, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान तथा सुदूर दक्षिण पूर्व एशिया के कम्बोडिया आदि कई देशों तक फैली हुई है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में शंकराचार्य के बाद दूसरा कोई अन्य लोक प्रसिद्ध महापुरुष नहीं हुआ, लेकिन मुझे लगता है कि भगवान् बुद्ध के पश्चात् गोरखनाथ ही लोक नायक की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। गोरखनाथ भी भगवान् बुद्ध की भाँति समाज के अपेक्षित-दलित वर्ग के साथ शासक और शासित, सम्पन्न और विपन्न या यों कहा जाय कि सर्व-समाज के नेता और पथप्रदर्शक थे। किसी समय नेपाल, राजस्थान, गुजरात के राजवंशों से लेकर अछूत और अन्त्यज कहे जाने वाले वर्ग की झोपड़ियों तक गोरखनाथ के प्रभाव का डंका बजता था। गोरखनाथ के प्रभाव और सिद्धियों की चर्चा संपूर्ण भारतवर्ष और कुछ अंश तक भारत देश की सीमा के बाहर भी किस्से-कहानियों के रूप में प्रचलित है और लगता है कि गोरखनाथ कोई हांड़-माँस के व्यक्ति नहीं एक अलौकिक शक्ति सम्पन्न पौराणिक या मिथकीय पुरुष थे।

जार्ज वेस्टन क्रिस ने अपनी पुस्तक 'गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगी' में बहुत विस्तारपूर्वक

उनके संबंध में प्रचलित हर दंतकथा और लोकोक्तियों का उल्लेख करते हुए उनके व्यापक प्रभाव का उल्लेख किया है। इन्हीं लोकोक्तियों एवं कहावतों में एक कहावत लोक में बहुत प्रचलित है– "गोरखधंधा में पड़ना"।[3] गोरखपंथी साधु लोहे की लकड़ी की सलाइयों को हेर-फेर करके एक चक्र बनाते हुए उनके बीच में एक छेद बनाते हैं। इसी छेद में कौड़ी या माला का धागा डालकर मंत्र पढ़ कर उसे निकाला करते हैं। यही क्रिया गोरखधंधा या धंधारी कहा जाता है। योगियों के वेष में इसका उल्लेख पद्मावत और उसमान कृत चित्रावली में कई बार हुआ है। गोरखधंधा या धंधारी की क्रिया जाने बिना छेद में से भागा या कौड़ी को निकलना बहुत ही उलझन भरा काम है। इसलिए लोक में गोरखधंधा उलझन भरे कार्य का एक वाचक बन गया है।

गोरखनाथ के नाम पर लगभग तीस संस्कृत की पुस्तकें प्राप्त होती हैं। पुरानी हिन्दी में गोरखनाथ की छोटी-बड़ी मिलाकर चालीस रचनाओं की चर्चा की जाती है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्यवाल ने 'गोरखबानी' नाम देकर इन रचनाओं को संपादित किया है। इन रचनाओं में सहज जीवन, ब्रह्मचर्य, संयत आचरण और सहजशील का उपदेश है। हिंदी के अतिरिक्त बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में भी गोरखनाथ की उक्तियाँ प्राप्त होती हैं। लोक भाषाओं में जैसे– भोजपुरी, अवधी, मगही में रचित इनकी उक्तियाँ का तात्पर्य लगभग एक जैसा ही है। इन सभी रचनाओं में नाथ योग के सिद्धान्त एवं साधनापक्ष का विवेचन किया गया है। "देशभाषा में लिखे गोरखनाथ की पुस्तकें गद्य और पद्य दोनों में है और विक्रम संवत् 1400 के आसपास की रचनाएँ हैं। इनमें सांप्रदायिक शिक्षा है। जो पुस्तकें पायी गयी हैं उनके नाम ये हैं– गोरख, गणेश-गुष्टि, महादेव-गोरख संवाद, गोरखनाथ जी की सत्रह कला, गोरख बोध, दत्त गोरख-संवाद, योगेश्वरी साखी, नरवै बोध, विराट पुराण, गोरखसार, गोरखनाथ की बानी।[4]

साधना पद्धति-

गोरखनाथ ने एक नयी योगप्रणाली को जन्म दिया, जिसे हठयोग कहते हैं। शरीर और उसकी नाड़ियों की शुद्धि और स्वास्थ्य की रक्षा करना हठयोग का मूल उद्देश्य है। गोरखनाथ ने अपने नैतिक वचनामृतों को लोकभाषाओं में दिया है। उन्होंने योगियों के लिए मन की शुद्धता तथा दृढ़ता को जरूरी बताया। उन्होंने केवल योगियों के लिए ही नहीं वरन् सामान्य मनुष्यों के लिए भी चित्त की दृढ़ता को जरूरी बताया। गोरखनाथ की साधना, चिन्तन और भावना ने जन-जन को प्रभावित किया। इसी प्रभाव का ही परिणाम था कि भारत वर्ष के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक उनके कृत्यों की अनेक जनश्रुतियाँ फैलीं, लोककथाओं के मिथक पुरुष बने, अनेक अद्भुत चमत्कारों की चर्चा लोगों की प्रेरणा का कारण बनी। "नाथ योग साधना, अष्टांगयोग-साधना ही है। कुछ सिद्धान्त ग्रंथों में अष्टांगयोग के स्थान पर षडंगयोग की ही चर्चा मिलती है। इसमें प्रारम्भ के दो अंग यम-नियम उल्लिखित नहीं होते, किन्तु इनकी अनिवार्यता साधना के अष्टांगयोग जैसी ही है। वस्तुतः यम और

 ISSN 0976-0849

नियम योगसाधना के आधारभूत सोपान हैं, जिनके अभ्यास के बिना आगे के सोपानों पर आरोहण सामान्य साधकों के लिए संभव नहीं है।[5]

गुरुगोरखनाथ में सांगठनिक क्षमता भी अद्‌भुत थी। उन्होंने अपनी इस क्षमता का भरपूर उपयोग अपने सम्प्रदाय को संगठित करने में किया। भारतीय इतिहास के इस मध्य युग को अंधकारकाल कहा गया है। इस अज्ञानकाल में भारतीय धर्मसाधना को पुनः एक बार विशुद्ध रूप से सर्वव्यापक और प्रभावशाली बनाने का श्रेय किसी को देना हो तो वह महान् सुधारक और प्रचारक गुरुगोरखनाथ को ही दिया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि– "नाथपंथ के उपदेशों, सामाजिक समरसता का प्रभाव हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमानों पर भी प्रारम्भकाल में ही पड़ा। बहुत से मुसलमान, निम्नवर्ग के ही सही, नाथपंथ में आये। अब भी इस प्रदेश में बहुत से मुसलमान जोगी गेरुआ वस्त्र पहने, गुदड़ी की लम्बी झोली लटकाये, सारंगी बाजा बजाकर 'कलि में अमर राजा भरथरी' के गीत गाते फिरते हैं और पूछने पर गोरखनाथ को अपना आदि गुरु बताते हैं।"[6]

नाथ सम्प्रदाय का जो वर्तमान रूप है उसके प्रवर्तक युग निर्माता गोरखनाथ ही हैं। महायोगी गोरखनाथ के विराट् व्यक्तित्व के कारण ही अनेक भारतीय तथा अभारतीय सम्प्रदाय नाथपंथ की ओर उन्मुख हो गये। महायोगी गोरखनाथ ने योगशास्त्र के सैद्धान्तिक पक्ष को व्यावहारिक रूप प्रदान कर जनसामान्य तक पहुँचाया। समग्र भारत ही नहीं अपितु सीमावर्ती देशों को अपनी योग विभूति से तथा चरित्र-चिन्तन एवं व्यवहार से बड़ी गहराई तक प्रभावित करने वाले अग्रगण्य गुरु गोरखनाथ ही हैं। 'धन जोवन की करे न आस, चित्त न राखे कामिनी पास' जैसे कथनों से स्पष्ट होता है कि कंचन और कामिनी के प्रति निर्लोभ उनके व्यक्तित्व का प्रमुख अंग है।

भक्ति आन्दोलन से पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन महायोगी गोरखनाथ का योगमार्ग ही था। भारत वर्ष की अधिकांश भाषाओं में गोरखनाथ से सम्बन्धित साहित्य मिल जाता है। इसीलिए तुलसीदास जी को कहना पड़ा– 'गोरख जगायो योग, भगति भगायो लोग' एक प्रकार से कहा जा सकता है कि गुरु गोरखनाथ और नाथपंथ की योगसाधना एवं क्रियाकलापों की प्रतिक्रिया ही सभी निर्गुण एवं सगुण मार्गी संतों के साहित्य में लक्षित होती है। गोरखनाथ जी ने झोपड़ी से लेकर महल, रंक से राजा सभी को अपनी योगसाधना और तपस्या से प्रभावित किया। जायसी का पद्‌मावत, कुतुबन की मृगावती, उसमान की चित्रावली आदि ग्रन्थों में गोरखनाथ का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ता है। कबीर दास जी ने अपने पदों तथा अन्य साखी-सबद आदि में अनेक बार गोरखनाथ जी और उनके योग का बखान किया है। कबीर साहब के अलावा नानक, दादू, मलूक, दरिया साहब, असम के माधव कन्दली, उड़िया के बलरामदास, बंगाल के कृतिवास की रचनाओं में गोरखपंथ का प्रभाव लक्षित होता है। गुरु गोरखनाथ का उल्लेख सर्वप्रथम सन्त ज्ञानेश्वर ने अपने ग्रंथ

'अमृतानुभव' में किया है, जिनका समय बारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि समस्त उत्तर और पश्चिमोत्तर भारत वर्ष में गोरखनाथ और उनकी योगसाधना ने तेरहवीं सदी से लेकर आज तक समूचे भक्ति आन्दोलन के आध्यात्मिक चिन्तन को प्रभावित किया है।

गोरखनाथ ने अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों में प्रचलित असद्प्रवृत्तियों, विसंगतियों, विचलित व्यवहारों, संगठनात्मक असन्तुलन, अव्यवस्था, असामंजस्य की विभिन्न दशाओं में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन किया, वह इस प्रकार है। गोरखनाथ ने सामाजिक कलंक अस्पृश्यता के समाप्त करने के लिए समाज के सभी वर्गों, जातियों के लिए अपना द्वार खोल दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि– "चौरासी सिद्धों में बहुत से मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार, लकड़हारे, दरजी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे।"[7]

समाज में पंडों, पुरोहितों तथा पुजारियों द्वारा स्वर्ग और नरक का जो चित्र प्रस्तुत कर शोषण किया जा रहा था, उसका खंडन करते हुए अपने सिद्ध-सिद्धान्त में कहा है कि– शुद्ध आहार विहार युवा संयमित जीवन ही शरीर का सुख है– यही स्वर्ग है। असंयमित तथा आहार-विहार व्यतिक्रम जन्य रोगाक्रान्त अवस्था ही दुख है। यही नरक है।

गोरखनाथ जी तत्कालीन समाज में फैले हुए वाममार्गी-पंचमकारों से संघर्ष करते हुए अपने हठयोग प्रधान पंथ नाथ सम्प्रदाय का संगठन मजबूत किया। उन्होंने अनेक शैव और योग सम्प्रदायों को तोड़कर बारहपंथी शाखा की स्थापना की जिनके नाम– सत्यनाथी, धर्मनाथी, वैराग्यपंथ, गंगानाथी आदि है। गोरखनाथ के शिष्यों तथा प्रशिष्यों द्वारा स्थापित किये गये भारत-नेपाल तथा सीमावर्ती अन्य देशों में स्थापित मन्दिर-मठ आज भी अपनी कीर्ति फैलाये हुए हैं।

गोरखनाथ जी सामाजिक समरसता के प्रचंड पुरोधा थे। उनके समय का भारतीय समाज बौद्ध-जैन, अद्वैत, पुराण-कर्मकाण्ड, स्मृति तंत्र, शैव, वैष्णव, निर्गुण सगुण आदि प्रपंचों से ऊब गया था। इनसे ऊबे हुए लोगों ने गुरु गोरखनाथ की शरण ली।

गोरखनाथ जी का लक्ष्य था कि समाज निडर, समरस और सुखी बने। आत्मतल का बोध एवं नाथपंथी योगी साधना द्वारा सात्त्विक जीवन का आदर्श बने। भारतीय अध्यात्म चिन्तन का यही गोरखनाथ जी की बहुत बड़ी देन है। गोरखनाथ ने गुमराह जनता को एक दिशा दी। जगत को नाद और बिन्दु से उत्पन्न बताया। कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा, शास्त्र यज्ञ, उपासना व्रत सबको व्यर्थ बताया। सहज जीवन को श्रेयस्कर बताया। गोरखनाथ जी ने मनुष्य के सर्वांगीण विकास का मार्ग खोज दिया। उनके जीवन को देखने से प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने समकालीन सामाजिक जीवन में व्याप्त दूषित मान्यताओं को खंडित करके अपने सुधारात्मक प्रतिक्रियाओं द्वारा जिस सम्प्रदाय को स्थापित किया, वह भगवान बुद्ध के पश्चात् भारतीय इतिहास में एक अद्भुत कदम है। महायोगी गुरु

 ISSN 0976-0849

गोरखनाथ तथा उनके द्वारा स्थापित किये गये अन्य नाथपंथी संतों की यह साधना आज भी मनुष्यों को सांस्कृतिक, मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से समुन्नत, संस्कारित और स्वस्थ बनाने में निरन्तर क्रियाशील है। गुरु गोरखनाथ की परम्परा अपने समय में भी महत्त्वपूर्ण थी आज भी है और कल भी प्रासंगिक बनी रहेगी।

संदर्भ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 ई., पृष्ठ 207
2. तत्रैव, पृष्ठ 202
3. ब्रिंग्स, जे.बी., गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1982 ई., पृष्ठ 73
4. शुक्ल, रामचन्द, हिन्दी साहित्य का इतिहास, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, 2005 ई., पृष्ठ 27
5. राव, प्रदीप कुमार/उपाध्याय, ओमजी, नाथपन्थ और भक्ति आन्दोलन, चतुर्व्यह प्रकाशन, वाराणसी, 2011 ई., पृष्ठ 126
6. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, 2005 ई., पृष्ठ 27
7. तत्रैव, पृष्ठ 26

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 37-44

गुरु गोरखनाथ का योगबोध और युगबोध

डॉ. निमिषा सिंह*

सारांशः गुरु गोरखनाथ नाथ-साहित्य के प्रथम कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। महायोगी गुरु गोरखनाथ को साक्षात् शिव स्वरूप माना जाता है। महायोगी गुरु गोरखनाथ जी मत्स्येन्द्रनाथ जी के शिष्य के रुप में प्रसिद्ध हैं। नाथ सम्प्रदाय में बिना किसी को आहत किये धार्मिक समन्वय को बढ़ाने का कार्य किया गया है। गोरखनाथ ने अपनी सरल और सहजवाणी से समाज में साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। गुरु गोरखनाथ ने अपने समय में धर्म, संस्कृति और सामाजिक क्षेत्र में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन किये तथा स्वस्थ मानवीय मूल्यों की स्थापना की। शिव का रूप माने जाने वाले गोरखनाथ ने शिव की शक्ति और भक्ति को लोकप्रिय बनाकर मनुष्य के समक्ष योग के चरम लक्ष्य को स्पष्ट किया। नाथपन्थ में स्वस्थ सामाजिकता, धार्मिक समन्वय और उच्च मानवता के निर्माण में गुरु गोरखनाथ, उनका नाथपन्थ और उनके द्वारा रचित रचनाओं का विशेष महत्व है। नाथपन्थ की साधना, आज भी मनुष्य को सांस्कृतिक, मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक रूप से उन्नत और स्वस्थ बनाने में निरन्तर क्रियाशील है।

बीजशब्दः कान्ति सरोवर, योग संस्कृति, सत्यान्वेषण, गोरख सिद्धान्त संग्रह, साम्प्रदायिक, कर्मकाण्ड, मनोवृत्ति, आध्यात्मिकता, विषय-विकार, पूर्ण सामरस्य, योगनिश्रित।

नाथपन्थ का दार्शनिक प्रस्थान ही 'योग' और 'योगी' पदयुग्म के विमर्श और तर्काश्रित प्रत्याख्यान से हुआ है। महायोगी गुरु गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित और संरक्षित योग के प्रभाव का ही परिणाम है कि योग की दार्शनिक और आध्यात्मिक छाया आज विश्वव्याप्ति में विद्यमान है। योगबोध और समाजबोध के मध्य से युगबोध का उदय होता है। विस्तृत अध्ययन और अन्वेषण आज यह साबित कर चुके हैं कि आदिनाथ शिव के प्रशिष्य और मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ ने योगविद्या का परिपूर्ण प्रबोध प्राप्त किया था। अपने समय के समाज और दार्शनिक प्रत्ययों को विधिवत् पढ़ा था, अनुभूत किया था। उनकी साधना और दृष्टि ने उन्हें युगबोध से अभिमण्डित किया। इसीलिए

*एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी, जे.बी. महाजन महाविद्यालय, चौरीचौरा, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

समय, समाज, दर्शन, अध्यात्म और योग की समेकित परख लेकर गोरख के व्यक्तित्व का जैसा निर्माण हुआ, वैसा उनके कालखण्ड में और किसी का नहीं। यदि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी गोरखनाथ में शंकराचार्य के बाद सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्तित्व की स्थापना देते हैं तो इस तथ्य को न तो अन्योक्ति में लेना चाहिए और न ही अत्युक्ति में।

नाथपन्थ विषयक समकालीन विमर्शकार और अनुसन्धायक भी कुछ ऐसी ही मान्यता देकर गुरु गोरखनाथ की योगशक्ति और उनकी आध्यात्मिक जगत्शक्ति की मीमांसा प्रस्तुत करते हैं। इस आशय का एक विमर्श और विश्लेषण विचार करने योग्य है– "इतिहास परम्परा से बड़ा नहीं होता। दार्शनिक रेखा में पढ़ा जा सकता है कि परम्परा ही इतिहास है और इतिहास ही परम्परा। विमर्शकार और तर्कशास्त्र इतिहास और परम्परा में विभेद निकाल सकते है। किसी के स्वाधीन मनन पर प्रतिप्रश्न खड़ा करना चिन्तन की विकासयात्रा पर विराम लगाना है। अतएव सन्दर्भित प्रसंग को 'इदमित्थम्' न मानते हुए परम्परा का एक मिथक यहाँ उपस्थित करना पुराणेतिहास का प्रमाण भी है। श्रुति-परम्परा मानती है कि योगविद्या के प्रथम गुरु (आदिगुरु) शिवशंकर हैं। योग-परम्परा, ऋषि-मुनि और योगी-वृन्द सभी मानते हैं कि भगवान शिव आदियोगी हैं। पुराणिक प्रमाण है कि हिमालय की उपत्यका में विद्यमान 'कान्ति सरोवर' (झील) के तट पर आदियोगी (शिव) ने सप्तऋषियों को योगविद्या का निगूढ़ अभिज्ञान सौंपा था। अपने ही समय में सप्तऋषियों ने विश्व के विभिन्न भू-भागों में पहुँचकर योगविद्या का कायिक और वैचारिक सम्प्रसार किया। एशिया, दक्षिण अमेरिका, उत्तरी अफ्रीका तथा मध्यपूर्व के तमाम देशों और भारतीय उपमहाद्वीपों में सप्तर्षि समेत अगस्त आदि मुनियों ने आर्यावर्त की उपसृष्टि- 'योग-संस्कृति' को विश्वपटल पर उतारते हुए उसे लोकप्रतिष्ठा दी थी।

आदिनाथ शिव योगऋषि पतंजलि, योगेश्वर श्रीकृष्ण, महायोगी गुरु गोरखनाथ, योगगुरु बाबा रामदेव और योगपुरुष योगी आदित्यनाथ ने योगतरु का बीजवपन-अंकुरण-सिंचन-संवर्द्धन करके विश्वभूमि में उसके आच्छादन की नयी लोककीर्ति निर्मित की है। योग-प्रहरी इन्हीं विरक्तों की अतुल-अप्रमेय इच्छाशक्ति का सम्बल पाकर भारत गणराष्ट्र के नये शिल्पकार प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने विश्वमानस से 'अन्तरराष्ट्रीय योगदिवस' की तर्काश्रित और भावाश्रित अपील की जो विज्ञानसंगत और युगसंगत बनकर खड़ा हो गया है।"[1]

गुरु गोरखनाथ नाथ-साहित्य के प्रथम कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। महायोगी गुरु गोरखनाथ को साक्षात् शिव का स्वरूप माना जाता है। भारतीय संस्कृति में योगमार्ग के प्रणेता महायोगी गोरखनाथ का व्यक्तित्व अप्रतिम है। वे योग-साधना के द्वारा प्रत्येक तत्त्व का साक्षात् अनुभव करने की क्षमता रखते थे। महायोगी गोरखनाथ तर्क-वितर्क में विश्वास नहीं रखते थे, शास्त्राभ्यास के द्वारा परम् सत्य की अनुभूति करना उनका ध्येय न था। न ही वे किसी विचारधारा

को उचित समझते थे। उन्होंने सदैव दार्शनिक चिन्तन द्वारा सत्य की निष्पक्ष खोज को महत्त्व दिया। योग-साधना द्वारा शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, हृदय के पूर्ण नियमन को ही सत्य माना। उनका दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य योग साधना के मार्ग को अपनाकर अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत निर्मल तथा समर्थ बना सकता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर योगी गुरु गोरखनाथ ने विचारशील सत्यान्वेषकों के लिए जो योग-दीक्षा दी, वही उनके द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक मत के रूप में परिणत हुआ। गोरखनाथ ने पारलौकिक जीवन के साथ-साथ भौतिक जीवन में तालमेल बिठाते हुए भारतीय समाज में सदाचार, नैतिकता, समानता एवं स्वतंत्रता की उस चिंगारी को जलाने का प्रयत्न किया जिसकी लपटें ऊँची होकर हर जाति-पाँति, ऊँच-नीच, छुआछूत, अमीरी-गरीबी जैसी विषमताओं तथा क्षेत्रीयतावाद जैसी संकीर्ण प्रवृत्तियों को निरन्तर जलाती रहीं। निश्चित ही गोरखनाथ ने बौद्धिक आत्मानुशासन के पथ पर आगे बढ़कर सत्यन्वेषण करने वालों के लिए जो शिक्षा दी, वह समूचे नाथ-सम्प्रदाय का आधारभूत सिद्धान्त बना।

महायोगी गुरु गोरखनाथ जी मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य तथा भगवान् आदिनाथ के प्रशिष्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह' के अनुसार गोरक्ष ईश्वर की सन्तान थे। उनकी रचनाओं में मानवतावाद की प्रतिष्ठा है। गोरखनाथ के उपदेश सार्वभौमिक हैं, देश और काल से परे हैं। गुरु गोरखनाथ की अद्‌भुत वाणी उनके समय में जितनी प्रासंगिक थी, उतनी ही आज भी उपयोगी और प्रासंगिक है। गोरखनाथ ने अपना सम्पूर्ण जीवन लोक-कल्याण के लिए समर्पित कर दिया। "गुरु गोरखनाथ का व्यक्तित्व अप्रतिम था। वे एक व्यक्ति नहीं, वरन् संस्था थे, जिन्होंने कितने ही योगियों को दीक्षित कर नाथपन्थी प्रभाव को प्रशस्त किया। आप धर्मजगत् के उन्नायक, अलौकिक ज्योति-स्वरूप थे। वे दिव्यद्रष्टा तथा युगद्रष्टा थे। वे समय के अनुरूप युग-प्रवाह को मोड़ने वाले तथा समाज-सुधारक थे। आपने समाज को सत्य, ईमानदारी और सच्चाई का उपदेश दिया। गुरु गोरखनाथ जिस पन्थ की स्थापना कर गये, वह आज भी उनकी लोकप्रियता और सर्वव्यापकता का पताका भारत तथा अन्य सीमावर्ती देशों में फहरा रहा है।"[2]

भारतीय-संस्कृति की परम्परा में प्रचलित विभिन्न मतों और सम्प्रदायों में नाथ-सम्प्रदाय की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नाथ-सम्प्रदाय में बिना किसी को आहत किये धार्मिक समन्वय को बढ़ाने का कार्य किया गया है। नाथपन्थ मात्र मनुष्य और मनुष्यता की बात करता है। गुरु गोरखनाथ का विश्वास है कि अपनी मनुष्यता के द्वारा ही व्यक्ति ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है, क्योंकि वेद, पुराण, उपदेश आदि ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या नहीं कर सकते–

"वेद कतेब न षांणी बांणी, सब ढंकी तलि आंणी।
गगनि सिषर महि सबद प्रकास्या, तहं बूझै अलष बिनांणी।।"[3]

 ISSN 0976-0849

कबीर की तरह गोरखनाथ की वाणी भी सीधे हृदय पर प्रहार करती है। कबीर कहते हैं कि मनुष्य को प्रसन्न मन से ईश्वर का स्मरण करना चाहिए– यह बात गोरखनाथ ने उनसे पहले ही कह दी थी कि ईश्वर द्वारा दिये गये इस शरीर को अपनी इच्छाओं को नियन्त्रण में करके ईश्वर का भजन-कीर्तन करना चाहिए–

"हसिबा षेलिबा रहिबा रंग, कांम क्रोध न करिबा संग।
हसिबा षेलिबा गाइबा गीत, दिढ़ करि राषि आपना चीत।।"[4]

गोरखनाथ जाति-पाँति और भेदभाव का खण्डन करते हुए मनुष्य को मीठा बोलने, शान्त रहने और पानी की तरह शीतल होने का सन्देश देते हैं–

"मन में रहिबां भेद न कहिबां, बोलिबा अमृत बाणी।
अगिला अगनी होइबा हे अवधू तौ आपण होइबा पाणी।।"[5]

निश्चित ही मानवीय चेतना का चरम उत्कर्ष गोरखबानी में मौजूद है। तत्कालीन समाज में जब हिन्दू और मुसलमान जाति-पाँति के भेदभाव और मन्दिर-मस्जिद के झगड़े में उलझे हुए थे, तब गोरखनाथ ने अपनी सरल और सहज वाणी से उनमें साम्प्रदायिक एकता लाने का प्रयास किया। गोरखनाथ के समाज-सुधारक व्यक्तित्व पर टिप्पणी करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–

"गोरखनाथ के समय में समाज में बड़ी उथल-पुथल थी। मुसलमान का आगमन हो रहा था। बौद्ध-साधना, मन्त्र-तन्त्र, टोने-टोटके की ओर अग्रसर हो रही थी। ब्राह्मण-धर्म की प्रधानता स्थापित हो गयी थी। फिर भी बौद्धों, शाक्तों और शैवों का एक भारी सम्प्रदाय था, जो वेद की प्रधानता को नहीं मानता था। गोरखनाथ के योगमार्ग में ऐसे अनेक मार्गों का संगठन हुआ, जो सामाजिक समरसता का सन्देश दे रहे थे।

गुरु गोरखनाथ ने अपनी समकालीन सामाजिक जीवन की विद्रूपताओं को सुधारने का प्रयास किया। उन्होंने चित्त की दृढ़ता, मन की शुद्धता और उच्च नैतिक मूल्यों को जीवन के आदर्श के रूप में स्वीकार किया। "नाथपन्थ के योगी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अपना योग और सामाजिक समरसता का मन्त्र लेकर हर द्वार पर गए, चाहे वह द्वार किसी भी मजहब को मानने वाले का हो, किसी विचार-दर्शन को स्वीकार करने वाले का हो, किसी भी उपासना पद्धति को जीने वालों का हो। गोरखनाथ ने हिन्दुओं के साथ-साथ इस्लामी समाज को भी रूढ़ियों, कुरीतियों के विरुद्ध तनकर खड़ा होने का उपदेश दिया।" गोरखनाथ जी के जीवन का प्रमुख उदेश्य समाज के प्रत्येक वर्ग को निडर, आत्मनिर्भर और सुखी बनाना था। कबीर की तरह उन्होंने भी कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा, शास्त्र, यज्ञ, व्रत, तिलक, जप आदि का विरोध किया। गोरखनाथ का मानना है कि ईश्वर को प्राप्त करने

के लिए हमारा मन पवित्र होना चाहिए–

"अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा।
बांध्या मेल्हा तो जगत्र चेला
बदंत गोरष सति सरूप।
तत बिचारे ते रेष न रूप।"[8]

गुरु गोरखनाथ ने अपने समय में धर्म, संस्कृति और सामाजिक क्षेत्र में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। उन्होंने समाज में व्याप्त जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं और बाह्याडम्बरों का विरोध किया तथा स्वस्थ मानवीय मूल्यों की स्थापना की। उन्होंने मनुष्य जीवन को सर्वथा संयमित और अनुशासित रखने का उपदेश दिया। नाथ-परम्परा में जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित अवधारणा प्रस्तुत की गयी है तो दूसरी ओर समाज को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर कड़ा प्रहार किया गया है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है– "गोरखनाथ के नाथ-सम्प्रदाय को जिस आन्दोलन का रूप दिया गया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल साबित हुआ। उन्होंने जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग भी किया।"

शिव का रूप माने जाने वाले गोरखनाथ ने शिव की शक्ति और भक्ति को लोकप्रिय बनाकर मनुष्य के समक्ष योग के चरम लक्ष्य को स्पष्ट किया। नाथ-सम्प्रदाय में मन्दिर-मस्जिद से ऊपर उठकर विश्वशान्ति की बात की जाती है। गोरखनाथ ने अपने नाथ-सम्प्रदाय को मानवीय और साधनात्मक रूप प्रदान किया। नाथों की रचनाओं में मानवतावाद स्पष्ट दिखायी देता है। मानवतावादी दृष्टि का ही परिणाम है कि वे वर्ग और जातिगत भेदों से ऊपर उठकर मनुष्य मात्र की एकता की स्थापना करते हैं। आत्मतत्त्व के बोध से सात्त्विक, आध्यात्मिक जीवन को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। "यह ध्यान रखने की बात है कि गोरखनाथ का योग सर्वाधिक व्यापक तथा पूर्णरूपेण आध्यात्मिक है और उनका शिव-शक्ति-दर्शन पूर्ण रूप से दुराग्रह अथवा अन्धविश्वास से रहित, ठोस और तार्किक है। योग-विद्या तथा शिव-शक्ति-मत सम्पूर्ण मानवता के हृदय और भारतवर्ष के आध्यात्मिक सन्देश का प्रतिनिधित्व करते हैं।"[9]

भारतवर्ष के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को सर्वाधिक प्रभावित नाथपन्थियों ने किया। देखा जाए तो नाथपन्थियों की ज्ञान और योग-साधना से ही भक्ति का स्वर अंकुरित हुआ। गोरखनाथ का योग-दर्शन समूचे मध्यकालीन काव्य पर प्रभावी होता दिखाई देता है। नाथ-सम्प्रदाय की योग-साधना और इन्द्रिय-संयम तथा मन की शुद्धता सम्पूर्ण भक्ति-आन्दोलन का आधार बनी। "गोरखनाथ ने भारतीय धर्म-अध्यात्म-साधना में पाखण्ड एवं कुरीतियों के विरुद्ध जिस सामाजिक

 ISSN 0976-0849

क्रान्ति का सूत्रपात एवं सदाचरण, सच्चरित्रता, सहजता, सरलता के साथ योगमार्ग का प्रतिपादन किया, उसे नाथपन्थी योगियों ने अनवरत आगे बढ़ाया। प्रचलित नवनाथ एवं चौरासी सिद्धों से लेकर अद्यतन नाथपन्थ के योगी अपने कठोर जीवन, अखण्ड ब्रह्मचर्य के साथ सहज-सरल उपासना पद्धति के वाहक हैं। पाखण्ड एवं रूढ़ियों के विरुद्ध सदैव तनकर खड़ा होने का साहस करते हैं।"[10]

यद्यपि जाति-पाँति, ऊँच-नीच की भावना प्रत्येक युग और समय में रही, परन्तु इन सबके बाद भी गोरखनाथ और उनके नाथपन्थ के द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक समन्वय को बढ़ाने का सर्वाधिक प्रयास किया गया। कबीर की तरह गोरखनाथ भी मीठी वाणी बोलने का उपदेश देते हैं–

"मन में रहिणां, भेद न कहिणां, बोलिबा अमृत बाणी।
अगिला अगनी होइबा, हे अवधू तौ आपण होइबा पाणी।।"

अर्थात किसी से भी भेद न करो। सदैव मीठी वाणी बोलो। यदि आपके सामने वाला अग्नि के समान जल रहा है तो है योगी! तुम पानी की तरह शीतल बनकर उसे शीतलता प्रदान करो। सरलता और सहजता का ऐसा उत्कर्ष 'गोरखबानी' में ही सम्भव है। मनुष्य-जीवन को कर्मकाण्डों और बाह्याडम्बरों के जाल से मुक्त करने का श्रेय नाथयोगियों को ही जाता है। गोरखनाथ ने धार्मिक ग्रन्थों पर दृष्टिपात करते हुए कहा कि हिन्दू मन्दिर और तीर्थों को स्वीकार करते हैं, जबकि काजी और मुल्ला कुरान और मस्जिद को मानते हैं। परन्तु योगियों के लिए मन्दिर-मस्जिद प्रत्येक स्थान पर परमात्मा सर्वसुलभ है।

"हिन्दू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद, जहाँ देहुरा न मसीत।।"

x x x x x x

"हिन्दू आषैं राम को, मुसलमान खुदाई।
जोगी आप अलष कौ, तहाँ राम अछै न षुदाई।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्वस्थ सामाजिकता, धार्मिक समन्वय और उच्च मानवता के निर्माण में गुरु गोरखनाथ, उनका नाथपन्थ और उनके द्वारा रचित रचनाओं का विशेष महत्त्व है। "विचारधारा की दृष्टि से गोरख के साहित्य और शिष्यों द्वारा उसके प्रचार ने ही आचार-प्रधान, व्यावहारिक, धार्मिक वातावरण का निर्माण किया था, जिससे न केवल पूर्ववर्ती विकृत साधनाओं का बहिष्कार हुआ अपितु परवर्ती स्वस्थ साहित्य के विकसित होने के लिए उर्वर भूमि भी मिली। सभी ने गोरख के महत्त्व को स्वीकार किया।"[11]

महायोगी गुरु गोरखनाथ मूलतः धर्म, अध्यात्म, योग-दर्शन और चिन्तन के कवि थे। वे

सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान शान्ति और सौहार्द से करना चाहते थे। हठयोग के रूप में गोरखनाथ ने भारतीय अध्यात्म-चिन्तन को बहुत बड़ी उपलब्धि प्रदान की।

गुरु गोरखनाथ तथा उनके द्वारा स्थापित किये गये नाथपन्थ की यह साधना आज भी मनुष्य को सांस्कृतिक, मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से उन्नत और स्वस्थ बनाने में निरन्तर क्रियाशील है। गोरखनाथ एक ऐसे महापुरुष थे, जिनकी कीर्ति भारतवर्ष के साथ-साथ अन्य देशों नेपाल, तिब्बत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, कम्बोडिया आदि तक फैली हुई है। नाथपन्थ की परम्परा ने आजाद भारत में सामाजिक परिवर्तन का अलख जगाया। मत्स्येन्द्रनाथ से योग की विद्या प्राप्त कर गोरखनाथ ने अपनी साधना के द्वारा योग-विद्या को इतना समृद्ध कर दिया कि यह भारत के आध्यात्मिक और सामाजिक पुनर्जागरण का आधार बना। गोरखनाथ ने मांस-मदिरा के परित्याग, संयमित आहार और अनुशासित दिनचर्या पर विशेष बल दिया है। काम, क्रोध, अहंकार, मन, माया, विषय-विकार, तृष्णा, लोभ और जीव-हिंसा के परित्याग को जीवन के मूल मन्त्र के रूप में स्वीकार किया। गोरखनाथ कहते हैं–

यहु मन सकती यहु मन सीव,
यहु मन पांच तत्त का जीव।
यहु मन ले जै उनमन रहे,
तौ तीनि लोक की बातां कहै।

अर्थात् मन ही शक्ति है और मन ही शिव है। यह मन पाँच तत्त्वों से निर्मित जीव है। जो इस मन पर नियन्त्रण कर उन्मनावस्था में लीन हो जाता है, वही तीनों लोकों के रहस्य को समझ पाता है। गोरखनाथ ने समस्त तार्किक विश्लेषण से ऊपर उठकर 'समतत्त्व' की प्रतिष्ठा की। सभी धर्मों और सम्प्रदायों के सर्वोत्तम विचार-सार को आत्मसात किया।

कुल मिलाकर कहना चाहिए कि गोरखनाथ के 'पूर्णसामरस्य' के मार्ग को प्राप्त करने के लिए आत्मानुशासन ही सर्वाधिक वैज्ञानिक और व्यापक मार्ग है। "गोरखनाथ और उनके सम्प्रदाय द्वारा प्रचारित योग-साधना सार्वभौम भौतिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक आत्मानुशासन का एक रूप है, जिसका समस्त कालों और स्थानों के धर्मावलम्बी सम्यक् अभ्यास कर आन्तरिक और बाह्य जीवन में पूर्ण शान्ति, स्थिरता और आनन्द की प्राप्ति कर सकते हैं। इसका उद्देश्य प्रत्येक मानव को स्वयं मानवता व सम्पूर्ण जगत् के साथ तादात्म्य स्थापित करने का मार्ग दिखाना है।"[12] एक बात और भी कि "नाथपन्थ के योगियों ने अपनी वाणियों द्वारा उच्च आध्यात्मिक विचार तथा गृहस्थ की सात्विक जीवनशैली तथा योगमार्ग का प्रचार करने में अपनी अहम भूमिका निभायी है।"[13]

दरअसल गोरखनाथ की योगनिश्रित आध्यात्मिक क्रान्ति ने और समतामूलक सामाजिक

 ISSN 0976-0849

उत्क्रान्ति ने उन्हें अपने समय में प्रतिष्ठा दी थी और आज तो उनकी वैश्विक विख्याति में यही भूमिका आधारशिला बनी हुई है।

सन्दर्भः

1. राय, रामदरश, सम्भवामि युगे-युगे, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2005 ई., पृष्ठ 64-65
2. मिश्र, अनन्त, आदिकालीन कवि और काव्य, नीलकमल प्रकाशन, गोरखपुर, 2014 ई., पृष्ठ 46
3. 'गोरखबानी' - सम्पादक पीताम्बरदत बड़थ्वाल, 'सबदी' पद संख्या-4
4. तत्रैव, पद संख्या-7
5. तत्रैव
6. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1983 ई., पृष्ठ 83
7. राव, प्रदीप कुमार, नाथपंथ : योग, अध्यात्म एवं साधना, महायोगी गुरु गोरखनाथ शोधपीठ, गोरखपुर, 2019 ई., पृष्ठ 5
8. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1987 ई., पृष्ठ 18-19
9. बनर्जी, अक्षय कुमार, गोरखदर्शन, महन्त दिग्विजयनाथ न्यास, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, 1972 ई., पृष्ठ 312
10. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, नाथ और सन्त-साहित्य (तुलनात्मक अध्ययन), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1968 ई., संस्करण 1, पृष्ठ 108
11. मैनी, धर्मपाल, मध्ययुगीन निर्गुण चेतना, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972 ई., पृष्ठ 67
12. बनर्जी, अक्षय कुमार, गोरखदर्शन, तत्रैव, पृष्ठ 319
13. शरण, महेश कुमार, सम्पादक, चेतनता, कौण्डिन्य साहित्य सेवा संस्थान, सुलतानपुर, 2020 ई., पृष्ठ 37

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 45-49

नाथपन्थ, नवनाथ और गोरक्षनाथ

डॉ. अंगदकुमार सिंह*

सारांशः 'नाथपन्थ' में बौद्ध, शैव और योग सम्प्रदाय का समन्वय है। **'नाथपन्थ'** में **'शिव'** को **'आदिनाथ'** कहा जाता है, तो **दत्तात्रेय** को **आदिगुरु**। भगवान दत्तात्रेय के पश्चात् सन्त **मत्स्येन्द्रनाथ** ने **'नाथ'** परम्परा को पुनः संगठित किया। नाथपन्थ को अधिक प्रसिद्धि और नयी ऊँचाई पर पहुँचाने का कार्य **मत्स्येन्द्रनाथ** के शिष्य **गोरखनाथ** ने किया। **नवनाथ** ही **'नाथपन्थ'** के मूल प्रवर्तक हैं। **गोरखनाथ** योगविद्या के आचार्य थे, परन्तु उनका मन **हठयोग** में अधिक रमा तथा उन्होंने उसी को प्रचारित-प्रसारित करने का बीड़ा उठाया। **गहनीनाथ** के गुरु गोरखनाथ थे। मुसलमान लोग इन्हें **'गैबीपीर'** कहते हैं। **जालन्धरनाथ** के गुरु का नाम **दत्तात्रेय** था। **कृष्णपाद** के गुरु **जालन्धरनाथ** थे तो मत्स्येन्द्रनाथ गुरुभाई। **भर्तृहरिनाथ** विक्रमादित्य के बड़े भाई और गोरक्षनाथ के शिष्य थे। भर्तृहरिनाथ ने तीन शतक (श्रृंगार शतक, नीति शतक, वैराग्य शतक) की रचना की। **चर्पटनाथ** ने हिमालय की गुफाओं में अवधूतमत का प्रतिपादन किया। तिब्बती परम्परा में इनको **'मीनपा'** का गुरु माना जाता है, तो नाथ-परम्परा में गोरखनाथ का शिष्य । नवनाथों ने नाथपन्थ को आगे बढ़ाने का कार्य किया जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्धि **'मत्स्येन्द्रनाथ'** और उन्हीं के शिष्य **'गोरखनाथ'** को मिली। दोनों ने 'हठयोग' के द्वारा समाज को सही दिशा देने का कार्य किया।

बीजशब्दः सिद्ध, नवनाथ, गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, आदिनाथ, नाथपन्थ, नाथ साहित्य, हठयोग।

'नाथपन्थ' भारतीय धर्म का ही एक रूप है। **'नाथ'** शब्द का शाब्दिक अर्थ होता **'स्वामी'**। **'वैष्णव धर्म'** में यह **'स्वामी के अर्थ में'** होता है तो **'शैव धर्म'** में **'नाथ के अर्थ में'**। **'नाथपन्थ'** में **'शिव'** को **'आदिनाथ'** भी कहा जा है। **'आदिनाथ'** होने के कारण इनका एक नाम **'आदिश'** भी है। यह **'आदिश'** शब्द से ही **'आदेश'** बना है।[1] **'नाथ'** साधु जब एक-दूसरे से मिलते हैं तो **'आदेश'** कहते हैं। भगवान शंकर की इस परम्परा को आगे ले जाने का कार्य उनके शिष्यों वृहस्पति, विशालाक्ष, शुक्र, सहस्राक्ष, महेन्द्र, प्राचेतस मनु, भारद्वाज, अगस्त्य मुनि, गौरशिरस मुनि, नन्दी,

*जवाहरलाल नेहरू पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर (उ.प्र.). भारत

 ISSN 0976-0849

कार्तिकेय, भैरवनाथ ने किया, परन्तु भगवान दत्तात्रेय का नाम इसे आगे बढ़ाने में प्रमुख रूप से लिया जाता है क्योंकि उन्होंने वैष्णव और शैव मत में समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य कार्य किया। दत्तात्रेय के प्रयास से ही महाराष्ट्र में **'नाथ-परम्परा'** को गति मिली। **दत्तात्रेय** को **आदिगुरु** भी माना जाता है। भगवान दत्तात्रेय के पश्चात् सन्त **मत्स्येन्द्रनाथ** ने **'नाथ-परम्परा'** को पुनः संगठित करके उसको अबाध गति से प्रवाहित किया तथा ये चौरासी नाथों में प्रमुख हो गये।[2] इनकी पूजा बंगाल, नेपाल, असम, तिब्बत और बर्मा में बहुत होती है। नाथपन्थ को अधिक प्रसिद्धि और नयी ऊँचाई पर पहुँचाने का कार्य **मत्स्येन्द्रनाथ** के शिष्य **गोरखनाथ** ने शैवधर्म की प्रचलित सभी धाराओं और धारणाओं को मिलाकर किया तथा उनके लाखों शिष्यों में अनेक उन्हीं के समान सिद्ध हुए। महार्णव तन्त्र में माना गया है कि **नवनाथ** ही **'नाथपन्थ'**, **'नाथ-सम्प्रदाय'** के मूल प्रवर्तक हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं– **मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गहनिनाथ, जालंधरनाथ कृष्णपाद, भर्तृहरिनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, चर्पटनाथ।** गोरखनाथ के पन्थ या सम्प्रदाय को प्रमुख रूप से निम्न शाखाएँ– भुज के कण्ठनाथ, पागलनाथ, रावल, पंख या पंक, वन, गोपाल या राम, चाँदनाथ कपिलानी, हेठनाथ, आई पन्थ, वैरागपन्थ, जयपुर के पावनाथ, धजनाथ आदि मिलती हैं।

नाथपन्थ के **आदिनाथ** और **दत्तात्रेय** के पश्चात् महत्त्वपूर्ण नाम है- **मत्स्येन्द्रनाथ** का। ये 84 महासिद्धों में से एक तथा गोरखनाथ के गुरु और हठयोग की पुस्तक 'कौलज्ञाननिर्णय' के लेखक के हैं।[3] मत्स्येन्द्रनाथ की सार्वभौम शिक्षण के लिए **'विश्वयोगी'** भी कहा जाता है। **मीननाथ** और **मछन्दरनाथ** के नाम से भी ये प्रसिद्ध हैं।

गोरखनाथ जी का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज में जातीय भेद अपनी कट्टरता की सीमा लाँघने का प्रयास कर रहा था। ज्ञान पर सिर्फ एक वर्ग का वर्चस्व कायम था, लोगों का आध्यात्मिक ज्ञान से दूरी इतनी बढ़ती जा रही थी कि जनता इसके लिए तड़पने लगी और धर्म-परिवर्तन को विवश भी। ऐसे समय में गोरखनाथ जी ने बहुत बड़ी जनता को धर्म-परिवर्तन से रोका तथा जातिगत और बाह्याडम्बरों पर बेहिचक चोट करते हुए सामाजिक चेतना को नयी क्रांति देने का प्रयास किया।[4] गोरखनाथ ने पतंजलि के योग को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया और बह्मचर्य, वाकसंयम, शारीरिक-मानसिक शुचिता, मद्य-माँस के त्याग का आग्रह किया। उनका सिद्धान्त था **'जोइ-जोइ पिण्डे सोई ब्रह्माण्डे'** अर्थात् जो शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है। इला-पिंगला, नाद-बिन्दु की साधना, षट्चक्र भेदन, शून्य चक्र, कुण्डलिनी का प्रवेश आदिनाथों की अन्तरसाधना के मुख्य अंग है।

गोरखनाथ योगविद्या के आचार्य थे परन्तु उनका मन हठयोग में अधिक रमा तथा उसी को प्रचारित-प्रसारित करने का बीड़ा उठाया। सामान्यतः हठयोग का तात्पर्य होता है– हठ पूर्वक किया जाने वाला अभ्यास अथवा किसी अन्यास को जबरदस्ती करने की क्रिया को 'हठयोग' कहते

हैं। इसमें 'हठ' शब्द की रचना 'ह' और 'ठ' दो रहस्यमय एवं प्रतीकात्मक अक्षरों से हुई है। 'ह' का अर्थ 'सूर्य' तथा 'ठ' का अर्थ 'चन्द्रमा' है तो योग से तात्पर्य 'जोड़' है। सूर्य तथा चन्द्र (ह एवं ठ) मानव शरीर के दो ध्रुवों के प्रतीक हैं। जीवन की सारी क्रियाओं और गतिविधियों को बनाये रखने में इन दो जीवनी शक्तियों का पारस्परिक सामंजस्य आवश्यक है।[5] ये मानव शरीर के माध्यम से कार्यरत सार्वभौमिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार 'हठयोग' का अर्थ हुआ सूर्य और चन्द्र का जहाँ जोड़ या मिलन होता है। हठयोगियों के अनुसार भगवान् शिव, जो कि आदिनाथ कहे जाते हैं, ने माँ पार्वती को योग का उपदेश दिया। स्वामी मुक्तिबोधानन्द की पुस्तक 'हठयोग-प्रदीपिका' के अनुसार, सिन्धुघाटी सभ्यता के खुदाई से प्राप्त भित्ति चित्रों में योगासन करते हुए देवी-देवताओं की मुद्राएँ इस बात की ओर संकेत करते हैं कि सिन्धुघाटी सभ्यता से पूर्व भी योग का प्रचार-प्रसार रहा होगा। 'हठयोग' का चार आधार है– आसन, प्राणायाम, मुद्रा और नादानुसन्धान। अनाहतनाद में मन को लीन करना ही नादानुसन्धान है।

हठयोग शारीरिक और मानसिक विकास के लिए संसार की प्राचीनतम प्रणाली है, जिसका भारतीय योगियों के द्वारा लगातार अभ्यास किया जाता रहा है।[6] हठयोग की विभिन्न मुद्राओं का ध्यान करने से हमें मानसिक शान्ति मिलती है तो शारीरिक सन्तुलन भी बना रहता है। इससे मेरुदण्ड लचिला होता है तथा स्नायु संस्थान के स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। योगासन से स्नायु के मूल का आन्तरिक प्राणों द्वारा पोषण होता है। अत: योगासन अन्य व्यायामों से अलग है।

हठयोग के लगातार अभ्यास से व्यक्ति का गवाया हुआ स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति पुन: लौट आती है। यह आत्मा की गुप्त शक्ति को पहचानकर अपनी संकल्पशक्ति में वृद्धि कर सकता है। हठयोग के आसन मन एवं शरीर के सूक्ष्म सम्बन्ध के पूर्ण ज्ञान पर आधारित एक चमत्कारिक मनोशारीरिक व्यायाम है। इसके माध्यम से और भी जो योग हैं जैसे– कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग को आसानी से सिद्ध किया जा सकता है। मन और शरीर ही सारे मानवीय प्रयत्नों का आधार है।

गहनीनाथ के गुरु गोरखनाथ थे। ऐसी मान्यता है कि गोरखनाथ अपने गुरु मछन्दरनाथ के साथ एक दिन तालाब के किनारे प्रवास कर रहे थे। मछन्दरनाथ ने कहा कि मैं भिक्षा लेकर आता हूँ और आप तब तक संजीवनी विद्या का अभ्यास करो। इतना कहकर मत्स्येन्द्रनाथ भिक्षा लेने चले गये और शिष्य गोरखनाथ संजीवनी विद्या को सिद्ध करने लगे। तालाब के किनारे बच्चे खेलने के लिए आये और वे मिट्टी की बैलगाड़ी बनाये तथा उसे चलाने के लिए मिट्टी का गाड़ीवान बनाने लगे तो उन्हें सफल नहीं हो पा रहे थे। तब लड़कों में से एक ने सोचा कि जो साधु आँख बन्द कर बैठा है, इसी से गाड़ीवान बनाने के लिए कहते हैं। बच्चों की जिद पर वे पुतला बनाने लगे और सफल भी हो गये। पुतला पूर्ण आकार में बनते ही प्रणाम किया। इतने में मत्स्येन्द्रनाथ जी भिक्षा लेकर आ गये और देखा कि एक बच्चा गोरखनाथ के पास बैठा है तो उन्होंने अपने कमण्डल से दूध

 ISSN 0976-0849

निकालकर उस बालक को पिलाया और बच्चे को अपने साथ लेकर जाने लगे। गाँव के लोग भी यह दृश्य देख रहे थे। इस घटना को देखकर एक निःसन्तान ब्राह्मण दम्पती (मधुमय और गंगा) आये और कहा मुझे सन्तान नहीं है कृपा करें। तो उस बालक को उन्होंने दम्पत्ति को दे दिया। वही बालक आगे चलकर गहनीनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[7] गहनीनाथ की समाधि महाराष्ट्र के चिंचोली गाँव, पटोदा तहसील बीड़ जिला में स्थित है। मुसलमान लोग इन्हें **'गैबीपीर'** कहते हैं।

जालन्धरनाथ के गुरु का नाम **दत्तात्रेय** था। किंवदन्ती के अनुसार एक बार हस्तिनापुर के राजा ब्रिहद्रव ने सोमयज्ञ का अनुष्ठान किया तो अन्तरिक्षनारायण ने यज्ञ में प्रवेश किया और यज्ञ के समाप्ति पर एक तेजस्वी बालक निकला। यही बालक आगे चलकर **'जालन्धरनाथ'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। योगी जालन्धर अनेक तीर्थ स्थलों का भ्रमण करते हुए अपने साँवरतन्त्र विद्या के चमत्कार से लोगों को चमत्कृत करते थे तथा नाथपन्थ और योग का उपदेश देकर लोगों को अपना शिष्य बनाते थे।

कृष्णपाद के गुरु **जालन्धरनाथ** थे तथा मत्स्येन्द्रनाथ के गुरुभाई के रूप में माने जाते है। **कृष्णपाद** का और नाम **कनीफनाथ, कण्हपा, कान्हुमा, कानमा** भी मिलता है। हाथिनी के कान से उत्पन्न होने के कारण इन्हें **कनीफनाथ** कहते है। कनीफनाथ ने बद्रीनाथ में भागीरथी नदी के किनारे 12 वर्ष तक तपस्या की तथा कई वर्ष तक जंगल में निवास कर योग-साधना की। इसके बाद दीन-दलितों को भक्तिमार्ग में प्रवेश के लिए प्रेरित किया।

भर्तृहरिनाथ विक्रमादित्य के बड़े भाई थे। वे अपनी पत्नी पिंगला को बहुत प्रेम करते थे, परन्तु रानी किसी और से प्रेम करती थी। इस बात का पता लगने पर वे वैराग्य धारण कर लिये और गुरु गोरखनाथ की शरण में आ गये। कहा जाता है कि एक बार एक सिद्ध योगी ने एक फल राजा को दिया और कहा कि– **"जो इस फल को खा लेगा वह हमेशा चिर युवा बना रहेगा।"** राजा अपनी रानी पिंगला से प्रेम करते थे इसलिए उस फल को वे उस रानी को दे दिया। रानी दूसरे युवक से प्रेम करती थी इसलिए फल को उसने उसको दे दिया। वह युवक वेश्या से प्रेम करता था एतदर्थ उसने उसको दे दिया। वेश्या ने जब फल प्राप्त किया तो सोचा कि इस फल का वास्तविक अधिकारी राजा है अस्तु वह फल राजा को दे देती है। फल को पुनः प्राप्त करने के बाद उन्हें वैराग्य हो गया और राजपाठ अपने छोटे भाई विक्रमादित्य को सौंपकर गोरखनाथ के शिष्य हो गये। भर्तृहरिनाथ ने तीन शतक (श्रृंगार शतक, नीति शतक और वैराग्य शतक) की रचना की जो तब भी समाज के लिए प्रासंगिक था, आज भी है एवं भविष्य में भी रहेगा।[8]

रेवणनाथ का सोलापुर जिले के करमाला तहसील के पीट में समाधि स्थल है। इनके पिता का नाम ब्रह्मदेव था।

नागनाथ के जन्म के बारे में प्रचलित है कि ब्रह्मा के आशीर्वाद के फलस्वरूप इनकी उत्पत्ति

हुई।

चर्पटनाथ हिमालय की गुफाओं में रहते हुए अवधूत का प्रतिपादन किया तथा व्यक्ति को सचेत करते हुए बताया कि उसे आन्तरिक शक्तियों को बढ़ाने का कार्य करना चाहिए। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने माना है कि ये चर्पटनाथ गोरखनाथ के परवर्ती जान पड़ते हैं। इनका सम्बन्ध व्रजयानी सम्प्रदाय से हो सकता है। तिब्बती परम्परा में उन्हें **'मीनपा'** का गुरु माना गया है। नाथ-परम्परा में इन्हें गोरखनाथ का शिष्य माना जाता है। इनके नाम से प्रसिद्ध बानियों में इनके नाम का पता चलता है। ऐसा माना जाता है कि पहले ये रसेश्वर-सम्प्रदाय के थे, लेकिन गोरखनाथ के प्रभाव में ये गोरख-सम्प्रदाय के हो गये।

समग्रतः कहा जा सकता है कि नवनाथों ने नाथपन्थ को आगे बढ़ाने का कार्य किया। कोई भी नाथ किसी से कम नहीं है फिर भी इन नाथों में ज्यादा प्रसिद्धि **'मत्स्येन्द्रनाथ'** और उन्हीं के शिष्य **'गोरखनाथ'** को मिली। दोनों ने 'हठयोग' के द्वारा समाज को सही दिशा देने का कार्य किया। एक ने 'हठयोग' का बीजारोपण किया तो दूसरे ने उसे पुष्पित और पल्वित करके संसार के जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. बड़थ्वाल, पीताम्बरदत्त, गोरखबानी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 2003 ई., पृष्ठ 17
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1930 ई., पृष्ठ 35
3. भारती, धर्मवीर, सिद्ध साहित्य, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1953 ई., पृष्ठ 57
4. बिग्स, जी.डब्लू, गोरखनाथ एण्ड द कनफटा योगीज, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1938 ई., पृष्ठ 102
5. मल्लिक, कल्याणी, नाथ सम्प्रदाय का इतिहास दर्शन एवं साधना प्रणाली, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, 1950 ई., पृष्ठ 31
6. राघव, रांगेय, गोरखनाथ और उनका युग, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1963 ई., पृष्ठ 37
7. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाथ सिद्धों की बानियाँ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1967 ई., पृष्ठ 73
8. शर्मा, विनयमोहन, हिन्दी को मराठी संतों की देन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1957 ई., पृष्ठ 44

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 50-61

भोजपुरी–वाङ्मय में गोरखनाथ

प्रो. रामदरश राय*

सारांशः भारतवर्ष की कोई ऐसी भाषा नहीं है, जिसकी साहित्य विधा में गोरक्षनाथ सम्बन्धी आख्यानों एवं कथानकों का वर्णन न प्राप्त हो। महायोगी गोरखनाथ के चिन्तन-क्षितिज एवं भाषा-साहित्य का धरातल अछोर है और सम्पूर्ण भारतवर्ष में परिव्याप्त है। वर्तमान समय में इसका प्रभाव भारत भूमि से बाहर मारिशस, बांग्लादेश, कम्बोडिया, इजरायल, जर्मनी, यूक्रेन और अमेरिका जैसे वैदेशिक भूमि पर भी दृष्टिगोचर होता है जहाँ नाथ पन्थ और गोखनाथ के योग दर्शन एवं भाषा साहित्य पर अनुचिन्तन एवं अन्वेषण कार्य हो रहे हैं। वस्तुतः गोरखनाथ ही साहित्यवाणी भाषिक वैविध्य का एक विशाल पारावार है। उनकी काव्यवाणी में संस्कृत, पंजाबी, राजस्थानी, अवधी, ब्रज, खड़ी बोली, दक्खिनी हिन्दी, हिन्दवी (हिन्दुई), टक्क अपभ्रंश, प्राकृत, भोजपुरी आदि का पर्याप्त व्यवहार दर्शित होता है। एक साहित्य सृजक के रूप में बहुभाषाविद् गोरखनाथ जी संस्कृत, पुरानी हिन्दी और भोजपुरी के भाषायोगी थे। गोरखनाथ जी भोजपुरी जैसी समृद्ध और शक्ति सम्पन्न भाषा के प्रधान अर्चक एवं आदिकवि माने जाते हैं। लोकभाषा भोजपुरी से प्रभावित होकर इन्होंने अपनी साहित्य सृजन में संस्कृत से परहेज तथा भोजपुरी को प्रमुखता प्रदान किया था।

बीजशब्दः भोजपुरी, नाथपंथ, गोरखनाथ, भाषाई विविधता, सबदी, सारंगी, हठयोग, भाषा-शैली, खड़ी बोली।

"भारतवर्ष की कोई भाषा नहीं है जिसमें गोरखनाथ-सम्बन्धी कहानियाँ न पायी जाती हों।"[1] यह स्थापना देकर नाथ-साहित्य के अन्वेषी हस्ताक्षर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक निर्भ्रान्त साक्ष्य सौंप दिया है कि गुरु गोरखनाथ, महायोगी गोरखनाथ के चिन्तन-क्षितिज एवं भाषा-साहित्य का धरातल अछोर है और भारतभूमि के प्रत्येक प्रान्त में परिव्याप्त है। अब तो मॉरिशस, बांग्लादेश, कम्बोडिया, इजरायल, जर्मनी, यूक्रेन और अमेरिका जैसे विदेशी प्रायद्वीप नाथपन्थ और गोरखनाथ के योग-दर्शन एवं भाषा-साहित्य पर अनुचिन्तन और खोजकार्य कर रहे हैं।

*कृतकार्य आचार्य, हिन्दी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)-273019

वस्तुतः गोरख की साहित्यवाणी भाषिक वैविध्य का एक विशाल पारावार है। उनकी काव्यवाणी के दृष्टान्त संस्कृत में हैं तो पंजाबी और राजस्थानी में भी। अवधी और ब्रजी में मिलते हैं तो खड़ीबोली और दक्खिनी हिन्दी में भी। हिन्दवी (हिन्दुई) की गन्ध उनकी काव्यभाषा में देखी जा सकती है तो टक्क अपभ्रंश और प्राकृत के चटक चिह्न भी। भोजपुरी जैसी समृद्ध और शक्तिसम्पन्न भाषा के मानो वे प्रधान अर्चक थे। भोजपुरी के पुराने सभी विद्वान्, भाषाविद्–साहित्यविद् और अन्वेषक एक स्वर में निष्कर्ष दे चुके हैं कि लोकभाषा भोजपुरी के आदिकवि गुरु गोरखनाथ ही हैं। सच है, भोजपुरी की सम्पूर्ण काव्य–शृंखला में कवि गोरखनाथ जी आदिपीठ पर विद्यमान हैं। हिन्दी के इतिहास–ग्रन्थ और विश्वविद्यालयों के भोजपुरीकाव्य–पाठ्यग्रन्थ भी गुरु गोरख को आदिकवि के रूप में लिपिबद्ध कर प्रामाणिकता का अनुभव कर रहे हैं। यही नहीं, खड़ीबोली हिन्दी के आदिप्रस्थान (पुरानी खड़ीबोली) के रूप में भी आज का अनुसन्धान गोरखवाणी को देख रहा है। गोरक्षपीठ के ब्रह्मलीन विद्वान् महन्त अवेद्यनाथ जी का एक निष्कर्ष–विधायक अभिमत सटीक–प्रामाणिक प्रतीत होता है– "गोरखवाणी की भाषा खड़ी बोली–शृंखला की आदिकालीन कड़ी है और महायोगी गोरखनाथ हिन्दी के प्रथम कवि है।"[2] इसी कृति में योगी आदित्यनाथ जी ने गुरु श्री गोरखनाथ को 'हिन्दी एवं भोजपुरी का आदिकवि' कहा है।

दरअसल, भाषा को सतत प्रवहमान निर्मल नदी–नीर कहा गया है। नाथपन्थी कवि–योगियों के लोकगायन से सारांश छानकर सन्त कबीर ने काव्यभाषा की एक निर्मल काव्यात्मक अर्द्धाली सौंप दी है जो भाषाज्ञान का पारिभाषिक सूत्र बन उठा है– "संस्कीरत है कूप–जल, भाखा बहता नीर।" यही नहीं, योगियों–सन्तों द्वारा प्रक्षेपित नीर–क्षीर–विवेकी यह काव्योपदेशना हिन्दी–कवियों को भा गयी। इस काव्यसूत्र को थामकर, "गते न शोकं विभवे न वांछा, प्राप्तेन हर्षं न करोति योगी" जैसा संस्कृत–श्लोक रचने में निपुण गुरु गोरखनाथ ने संस्कृत छोड़कर लोकभाषा भोजपुरी की राह पकड़ ली– "हबकि न बोलिबा, ठबकि न चलिबा...."। एक नहीं, उन्होंने अनेक साखियों और पदों की भोजपुरी में रचना कर डाली। सन्त कबीर के लिए तो संस्कृत को अपना काव्यसखा बनाने में प्रारम्भ से ही परहेज रहा है। कबीर को पूरबी भाषा 'भोजपुरी' खूब भायी। इसी तरह संस्कृत के जानकार तुलसी भी अवधी के घर जाने–आने में परितोष का अनुभव किये। अभिप्राय यह कि भारत कि लोकभाषाओं ने अपना भाषिक विस्तार अधिक किया। भोजपुरी की लोकव्याप्ति प्रमाण है। भोजपुरी वाङ्मय में काव्यगुरु गोरखनाथ की आदिकवि के रूप में उपस्थिति तो एक ऐतिहासिक प्रमाण है।

'आरा पुरातत्त्व' और 'शाहाबाद गजेटियर' के अभिलेखीय आलोक में सर जार्ज–ए–ग्रियर्सन ने प्रसंगवश कहा है कि, "भोजपुरी उस शक्तिशाली स्फूर्तिपूर्ण और उत्साही जाति की व्यावहारिक भाषा है, जो परिस्थिति और समय के अनुकूल अपने को बनाने के लिए सदा प्रस्तुत रहती है और जिसका प्रभाव हिन्दुस्तान के हर भाग पर पड़ा है। हिन्दुस्तान में सभ्यता फैलाने का श्रेय बंगालियों

 ISSN 0976-0849

और भोजपुरियों को ही प्राप्त है। इस काम में बंगालियों ने अपनी कलम से काम लिया और भोजपुरियों ने अपनी लाठी से।"[3] इस प्रसंग के औचक उल्लेख के पीछे मन्तव्य और कथ्य यह है कि भोजपुरी-परिक्षेत्र में 'योगभाषा' का आनुष्ठानिक उपस्थापन गुरु गोरखनाथ ने भोजपुरी-भाषा में किया। हठयोग की क्रियात्मक प्रयोगशाला के रूप में भोजपुरी-भूमि को और उसकी बलिष्ठ भाषा-भूमि के रूप में गोरखपुर को उपयुक्त समझा।

गोरखनाथ-विषयक वाङ्मय-विमर्श किये बिना उनकी वाचिक और भाषिक चिन्तनभूमि को समझना सतही सर्वेक्षण होगा। यह तथ्य अब सर्वसाक्षीकृत है कि बहुभाषाविद् गोरखनाथ जी संस्कृत, पुरानी हिन्दी और भोजपुरी के भाषायोगी थे। तीनों भाषाओं के विदग्ध प्रयोक्ता गोरख को भाषावैज्ञानिक आँख से देखने पर इस आश्चर्य को बल मिल उठता है कि तुलसी की तरह उनका संस्कृत भाषाज्ञान प्रगाढ़ और पाण्डित्यपूर्ण था। मूलतः वे योगी थे। योगदर्शन की भाषा देववाणी थी। अस्तु, योग-ज्ञान, योग-विमर्श और योग-सिद्धान्त के लिये संस्कृत का भाषाज्ञान उन्होंने आवश्यक समझा और हठसंहिता, योगमार्तण्ड, योग-सिद्धान्त-पद्धति, सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति, हठयोग, महार्थ-मंजरी, गोरक्ष-संहिता, गोरक्ष-गीता, अवधूत-बीज एवं योग-बीज जैसे 28 लघु-दीर्घ संस्कृत ग्रन्थ उन्होंने रच डाले। योग-योगी, हठयोग-क्रियायोग आदि योग-विषयीन सभी अंग-प्रत्यंग उनकी संस्कृत-रचनाओं में अपने भूषण-वैशिष्ट्य के साथ मूर्तिमान हो उठे हैं। योग और नाथयोग की अन्तः अनुस्यूत रेखाओं को प्रकट कर, दर्शनवेत्ताओं द्वारा उन्हें पढ़ लेने, भाष्य कर लेने की एक मार्गदर्शिका उन्होंने तैयार कर दी। 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' और 'योग-सिद्धान्त-पद्धति', 'गोरक्ष-संहिता' और 'गोरक्ष-गीता' जैसे संस्कृत-ग्रन्थ गोरखनाथ के योगदर्शन के प्रकट प्रक्षेप बने। कुछ उदाहरण जो गोरक्ष के संस्कृत-भाषाज्ञान और योग-विमर्श के जीवित दृष्टान्त हैं–

"गते न शोकं विभवे न वांछा
प्राप्ते न हर्षं स करोति योगी।
आनन्दपूर्णो निजबोध लीनो
न बाध्यते कालपथेन नित्यम्॥"[4]

(सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति, 6/60)

"अपक्वाः परिपक्वाश्च द्विविधा देहिन स्मृताः।
अपक्या योगहीनास्तु पक्वा योगेन देहिनः॥
पक्वो योगाग्निा देहो ह्यजडशोकवर्जितः।
जडस्तत्पार्थिवो ज्ञेयश्चापक्वो दुःखदो भवेत॥"[5]

(योगबीज, 34-35)

"कर्मणा मनसा वाचा धारणाः पंचदुर्लभाः।
विज्ञाय सततं योगी सर्वपापैः प्रमुच्यते॥"[6]

(विवेक मार्तण्ड, 164)

संस्कृत–भाषा का वैदुष्य–प्रतिमान रखते हुए भी गोरखनाथ जी की प्रसिद्धि लोकवाणी में प्रसूत 'सबदी' और 'पद' के कारण बनी। वैसे ही, जैसे गोस्वामी तुलसीदास की संस्कृत–भाषा की पाण्डित्यमयी विदग्धता लोकवाणी 'अवधी' के समक्ष मौन– मूक–अवाक् बनकर रह गयी। गोरख को पढ़ने–समझने– अर्थायित करने के लिये भारत के पूरब और पश्चिम की लोकभाषाओं और लोकमुहावरों के समीप बैठकर अनुसन्धान करना प्रामाणिक होगा। भोजपुरी के साथ–साथ राजस्थानी, पंजाबी, ब्रजी, अवधी और पहाड़ी बोलियों की भाषिक अन्तर्गन्ध को सूंघना और पकड़ना होगा। पहाड़ी भाषाओं की पड़ताल इसलिये, क्योंकि गोरक्ष की भ्रमणशील योगयात्रा उत्तराखण्ड और नेपाल की पार्वत्य घाटियों में पर्याप्त समय तक होती रही है। वैसे भी योगी–स्वभाव वाले सन्त–संन्यासी प्रायः घुमन्तु या कि परिभ्रमणशील प्रकृति के होते हैं। ज्ञान और कैवल्य के सम्यक् परिबोध–हेतु देश–देशान्तर में विचरणशील रहते हैं। गोरखनाथ जी इस योग और योगी–मनोविज्ञान से कैसे बचते? यह सोलह आने का सच है कि लोकभाषा या कि अंचल–विशेष में जन्मी और रची–बसी–पगी जनभाषा अधिक प्रभावमयी और दूर तक अर्थ का बौछार करने वाली होती है। महात्मा बुद्ध को विश्वविख्याति मिली, उस समय की अंचलभाषा–जनभाषा 'पालि' (पल्लि–गाँव की भाषा) के कारण। विद्यापति पहिचाने गये मैथिली के कारण। तुलसी जाने गये अवधी के कारण। 'ब्रजी' ने सूरदास को ब्रजभाषा का वाल्मीकि बनाया तो 'भोजपुरी' ने कबीर को 'कबीर' (महान)। इसी तरह 'रमता जोगी' होने के कारण राजस्थानी, हिन्दवी, टक्क अपभ्रंश, पंजाबी, पुरानी खड़ीबोली, फारसी और संस्कृत आदिक और भी कई भाषाओं के प्रयोक्ता–समाहरता महायोगी गोरखनाथ जी इनमें से किसी भी भाषा–साहित्य के इतिहास में अभिलेखीय अध्याय या कालखण्ड नहीं बन सके। बने और दर्ज हुए तो भोजपुरी के भाषिक साहित्येतिहास में। भोजपुरी की वाचिक परम्परा भी या कि लोकगीत और लोकगाथा भी नाथपन्थी तीन योगियों को अधिक दुहराती है, तीनों के महिमामण्डन में लोकविश्वास के अनुरूप लोकगीत रचती है, लोकगाथाएँ सुनाती है और किंवदन्तियों– अनुभूतियों के बहुविध लोकमिथ रचती है। उलेख्य योगीत्रयी अथवा त्रिनाथ हैं– योगी गोरखनाथ, योगी भर्तृहरिनाथ, योगी गोपीनाथ।

नाथपन्थ और योगदर्शन के अध्येता–खोजकर्ता भी सारांश सौंपते हैं, "महायोगी गोरखनाथ का प्रमुख नाथपीठ गोरखपुर में है जो भोजपुरी भाषाभाषी–क्षेत्र के केन्द्र में है। इस विस्तृत भोजपुरी–क्षेत्र के मानव–मनोविज्ञान का अधिक स्पर्श गोरख, भरथरी और गोपीचन्द तीनों ही करते हैं। तीनों योगी नाथ–परम्परा के नवनाथ मण्डल के राजयोगी हैं।"[7]

 ISSN 0976-0849

हिन्दी के भाषिक इतिहास में कवि गोरखनाथ को आदिपीठ पर बैठा हुआ प्रायः सभी इतिहासकारों ने देखा है। सिद्ध-साहित्य और नाथपन्थ की पार्श्ववर्ती वृतरेखा को पढ़ते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी तथा अन्य सभी साहित्येतिहास-लेखकों ने गोरखनाथ को हिन्दी की आदिभूमि में उपस्थापित पाया है। भोजपुरी के भाषा-साहित्य का इतिहास-लेखन भी गोरखनाथ का प्रथम स्पर्श करते हुए आगे बढ़ा है। इस तथ्य का एक बड़ा साक्ष्य मुझे 'पुरइन पात' काव्यसंग्रह की भूमिका में दृष्टिगत हुआ। दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर पाठ्य अध्ययन में अनिवार्य प्रश्नपत्र (लोकसाहित्य के सिद्धान्त और भोजपुरी साहित्य) के रूप में अंगीकृत यह किताब एक प्रामाणिक साहित्यिक दस्तावेज के रूप में सामने आती है जिसमें सम्पादकद्वय ने लिखा है कि, "भोजपुरी का आरम्भिक रूप गोरखनाथ की बानी और अन्य सिद्ध-नाथ कवियों की रचनाओं में मिलता है। गोरखनाथ के शिष्य भरथरी के समय से ही भोजपुरी ने प्राकृत अथवा अपभ्रंश का साथ पूर्ण रूप से छोड़ दिया था। भोजपुरी न केवल समर्थ काव्यभाषा के रूप में विकसित हो गयी थी, बल्कि अपनी अभिव्यंजना-शक्ति, शब्द-सम्पदा और मुहावरे आदि से इतनी समर्थ हो गयी थी कि कबीर आदि की कविताओं पर भी उसका प्रभाव पड़ा।"[8]

सन्दर्भित उद्धरण का अभिप्रेत इस आशय को बल देना है कि गोरखनाथ जी दशकों-पहले विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्वीकृत होकर पठन-पाठन-आलोचना और शोध के विषय बन चुके हैं। देश के विश्वविद्यालयों में गोरक्षनाथ पर शताधिक शोधकार्य हो चुके हैं। अब तो विदेशी विश्वविद्यालय भी उन्हें शोध का विषय बना रहे हैं। भोजपुरी के 'पुरइन पात' काव्यसंग्रह में गोरखनाथ का और उनके काव्य का प्रथम कवि और प्रथम पाठ होना प्रमाणित करता है कि 'गोरख-वाणी' भोजपुरी-भाषाकाव्य का कालजयी शिलालेख है और गोरखनाथ भोजपुरी के कालजयी कवि हैं।

यह सच है कि खड़ीबोली हिन्दी में गोरखनाथ पर अधिक कलम चलायी गयी है। भोजपुरी के आदिकवि गोरखनाथ को भोजपुरी के कवि-लेखकों ने नजरअन्दाज किया है। दस्तावेजी कोई काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतकाव्य, प्रदीर्घकविता, उपन्यास, नाटक, कहानी और निबन्ध ऐसा नहीं दिखलायी पड़ता, जो गोरखनाथ के महनीय व्यक्तित्व का भोजपुरी के भाषाविन्यास में अनावरण करता हो। हाँ, इधर 'महायोगी गोरखनाथ' तथा 'नवनाथ अउर नाथजोगी' एवं 'महायोगी गोरखनाथ का जीवन-दर्शन' लिखकर डॉ. फूलचन्दप्रसाद गुप्त[9] ने गोरखनाथ का जीवन-चरित भोजपुरी-भाषा में उद्घाटित किया है। श्री ओमप्रकाश पाण्डेय आचार्य ने 'गोरख के गुन गाई' काव्य भोजपुरी में रचकर उन्हें आदरांजलि दी है। तथापि भोजपुरी में गोरख पर किये गये लेखकीय प्रयास अभी स्फुट हैं। 'लोकभाषा और नाथपन्थ' विषयक एक पुस्तिका।[10] मुझे यह भरोसा दे गयी कि भोजपुरी की भाषिक अभिव्यक्ति में 'नाथपन्थ' और 'गोरखनाथ' अभी जिन्दा हैं। भोजपुरी-वाङ्मय में गोरखनाथ

को पढ़ना और समझना भोजपुरी की विशाल भाषिक परम्परा और लोकसंस्कृति का सम्मान है।

हाँ, लोकसंवेदना, लोकमानस और लोकभाषा में गोरखनाथ ओझलदृष्टि नहीं हैं। मकरसंक्रान्ति में खिचड़ी चढ़ाने के प्रसंग में, गुरु गोरख की चामत्कारिक योगमहिमा के सन्दर्भ में तथा शिवावतारी उनकी मंगलविधायिनी लोकदृष्टि के सम्बन्ध में लोकजिह्वा कभी सूखी नहीं दिखी। कभी गीत के रूप में तो कभी लोकगाथा के रूप में उन्हें याद किया जाता रहा है। बारम्बार रचा जाता रहा है। गोरख की योग-प्रभुता को जायसी ने स्वीकार किया है, "जोगी सिद्ध होइ तब, जब गोरख सों भेंट"[11] तो तुलसी ने भी व्याजस्तुति में गोरख के 'योग' को 'भक्ति' से सबल और प्रभावी माना है, "गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग"।[12] कबीर ने तो मानो गोरख के सम्पूर्ण चिन्तन-दर्शन और काव्यरचना-विन्यास को सांगोपांग ग्रहण कर लिया था। प्रसंगवश यह कहना तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि योग और नाथयोग के व्याज से सम्पूर्ण उत्तरभारत की भक्तियात्रा (भक्ति-आन्दोलन) के आदिनायक महायोगी कवि-गुरु गोरखनाथ ही रहे हैं। हिन्दी की आदिकालीन और मध्यकालीन योगभाषा- भक्तिभाषा के प्रणेता-पुरोधा भी। श्रेणीबद्ध या वर्गीकृत कोई भाषावैज्ञानिक न होते हुए भी गोरखनाथ जी अपने समय के श्रेष्ठ भाषाचार्य थे। 'योगभाषा' और 'लोकभाषा' की जितनी वैविध्यपूर्ण किन्तु घनीभूत गन्ध गोरक्षवाणी में है उतनी उनके समय में अन्यत्र दुर्लभ है। प्रतीत होता है कि 'भाखा बहता नीर' के अर्थ-सौरभ से गोरखनाथ जी भिज्ञ थे।

पूर्वांचल की लोकसंवेदना और लोकवाणी में गुरु गोरखनाथ को महनीय स्थान प्राप्त है। नाथ-परम्परा तो गोरखनाथ जी को शिव का अवतार मानती है। परन्तु, लोक-परम्परा उन्हें साक्षात् शिव मानती है। भारत की सनातन संस्कृति में 'त्रिदेव' की महिमा-मान्यता है। परन्तु, सहज प्रसन्न हो उठने वाले, मंगल की मूर्ति रचने वाले भोलेनाथ अधिक वन्द्य और लोकमान्य हैं। मान्यता है और लोकविश्वास भी कि पार्वतीनाथ के प्रसीदन और वरदान से कोई भी मनोकामना आपूर्ण हो उठती है। भारतीय लोकश्रद्धा और लोकविश्वास में आस्था रखने वाली सन्तति-विहीना स्त्री गुरु गोरखनाथ के चामत्कारिक योगशक्ति की लोकाराधना करती हुई एक ओर अपने भरोसे को जीतती है तो दूसरी ओर युगप्रर्वतक-योगपुरुष महायोगी गुरु गोरखनाथ को लोकप्रतिष्ठा में सर्वोच्च स्थान पर देखती है। गुरु गोरख की कृपाकांक्षी लोकस्त्री की यह आस्थावाणी भोजपुरी-वाणी में उतरकर गोरखनाथ की अर्चना-आरती करती है–

हे बाबा गोरख!
असीस राउर चाहीं,
पुरवहु मनोरथ
दया राउर चाहीं।
कोखि हमार सूनी

 ISSN 0976-0849

आ जिनगी बा भारी,
असरा लगा के
खड़ी रउरे दुआरी।
खता कवनो भईल
छमा दे उबारीं,
फूटल करम मानो
सगरो हमारी।
खिचड़ी चढ़इबों
भभूतिया लगइबों,
अँखियन अखण्ड दीप
धुनिया रमइबों।
लउकत न माई-बाप
केहू बा हमारी,
तारि लऽ उबारि लऽ
हे नीलकंठ धारी। हे बाबा गोरख!... [13]

(योगीगीत : लोकगीत)

खिचड़ी-मेला की प्रस्थान-यात्रा में गाँव के स्त्री-समूह द्वारा गाया गया यह सगुन-गीत घुमन्तु योगीगीत-लोकगीत बनकर अमर हो गया है। गोरख के महिमा-गान के रूप में गाँव-गाँव घूमकर गानेवाले घुमन्तु सारंङी-योगी अब नहीं रहे। मगर लोककण्ठ में उतर उठा यह गोरख-गीत आज भी जीवित है। गोरखपुर के उपनगर गोला के पार्श्ववर्ती गाँव कौवाडील (चौकड़ी) के योगीपुरवा निवासी सौ वर्ष के शय्याशायी एक अतिवृद्ध सारंङी-वादक योगी के मुँह से उक्त गोरखगीत, भरथरी के गीत और गोपीचन्द के गीत सुनकर इस बात का सुख-सन्तोष प्राप्त हुआ कि गोरख, भरथरी और गोपीनाथ सरीखे नाथयोगी किताबों के गल जाने पर भी लोकमुख में वाणीयोग के माध्यम से जीवित रहेंगे। इसीलिए जरूरी है कि लोकवाणी या कि लोकभाषा को बचाये रखने के लिये गाँव-गाँव में जाकर सर्वेक्षण-साक्षात्कार लेकर, शोधन करके उन्हें लिपिबद्ध किया जाय। मुँह से सरंङी की धुन-आवाज निकाल लेने वाले योगी-सन्तों को सम्मान और गौरव दिया जाय। भोजपुरी में उतर उठा यह गोरख-गीत (जोगी-गीत) एक दृष्टान्त-मात्र है। खोजने और जमीन पर उतरने से ऐसे सैकड़ों लोकगीत-जोगीगीत मिलेगे, जिनके आलोक में नाथपन्थी लोकगीतों को आधार बनाकर नया-मौलिक-प्रशस्त शोधकार्य सम्भव बन सकता है। इस नयी खोज-शृंखला के उभर उठने पर राजस्थानी, पंजाबी, अवधी, ब्रजी, छत्तीसगढ़ी और पहाड़ी भाषाओं के योगी-गीतों, गोरक्ष विषयक लोकगीतों के

सर्वेक्षण–शोध का अनुष्ठान परिपूर्ण किया जा सकता है।

'गीत' किसी भी भाषा के हों, जादुई प्रभाव छोड़ते हैं। 'लोकगीत' तो मधुमास की तरह मानव–मन को मादक और उन्मत्त बना बैठते हैं। दरअसल, योगी–गीत लोकगीतों की शिरोरेखा होते हैं। योगी–गीतों में एक ओर लोकमानस को गुदगुदाने की अन्तर्सुषमा मौजूद होती है तो दूसरी ओर नागरमानस को योग–अध्यात्म और दर्शन की त्रिवेणी में उतार लेने की रहस्यभरी–बहुअर्थिक अभिव्यंजना शक्ति भी।

योगी बन उठना नियति का एक क्रीड़ा–विलास है। राजकुमार थे गोरख, योगी बन उठे। नृपति थे भर्तृहरि, योगी बन गये। गोपीचन्द ने भी राजसी पीत–पट चीरकर, गुदड़ी बनाकर योगपथ पकड़ लिया था। कालान्तर में उत्तरनाथयोगियों में महन्त दिग्विजयनाथ जी, महन्त अवेद्यनाथ जी और महन्त आदित्यनाथ जी भी वैभव–श्री–सम्पन्न कुलकुटुम्ब को छोड़कर योगी बन उठे। 'योगी' बनना, निष्काम कर्मयोगी बनना लोक की दृष्टि में सबसे बड़ा त्याग है। मानव–मूल्य के अर्पण की पराकाष्ठा है। लोक द्वारा प्राप्त सबसे बड़ा 'श्रद्धापत्र' है। मगर यह सम्भव है महात्याग का प्रतिमान बनने पर। एक लोकप्रसिद्ध प्रमाण, नियति को मंजूर था गोपीचन्द का योगी बनना। बावन किले की बादशाहत, छप्पन कोस की रियासत और तिरपन करोड़ की तहसील त्यागकर, माताराानी–रनिवास–दरबार और सभी परिचितों को रोता–विलखता छोड़कर गोपीचन्द चल दिये। गोपीचन्द योगी हो गये।

योगी होकर, कंथा–गुदरी धारणकर, हाथ में भिक्षापात्र लेकर योगी–भीख माँगने अपने राजमहल पहुँचे तो उन्हें उनकी माँ ने नहीं पहचाना। आत्मपरीक्षा के तौर पर सुदूर कदलीवन के पास बहन बीरम से भिक्षा पाने चले गये। गोपीचन्द के योगी बनने की भनक पाकर बहन बीरम चन्दन का मुरझाया पेड़ पकड़कर रो रही थी। सारंङी बजाकर योगी गोपीचन्द ने बहन के घर भिक्षा माँगा। बहन भी उन्हें नहीं पहचान पायी। हाँ, यह दृश्य अवश्य आया कि पिता के घर से नेग में मिले हुए बौरहवा हाथी ने देखते ही पहचान लिया और अपने मस्तक पर उठाकर बैठा लिया। बीरम का कुत्ता भी सूँघकर उन्हें पहचान गया और उनके पाँव और देह पर लोटने लगा। चर–परिचय भी पहचान गये, मगर बहन नहीं पहचान पायी। स्वजनों से भाई गोपीचन्द के आने और लौट जाने की खबर पाकर बहन वीरम रोती–कलपती पछाड़ खाकर गिर पड़ी। घर की महिलाओं से भिक्षा माँगकर योगसिद्ध बन उठने की कामना ने उन्हें द्वन्द्व में डाल दिया था कि कहीं पहचान लिये गये तो योगसाधना की पहली सीढ़ी टूट जायेगी। गोपीचन्द के इस मनोद्वन्द्व की मर्मवेधी लोककथागीत सारंङी की तान पर जब फेरी लगाने वाले गुदरिया जोगी गाते हैं तब हर भावुक श्रोता–मन की आँखें अश्रु–आप्लावित हो उठती है–

"केहू न चीन्ही गोपीचन्द!
केहू न चीन्ही।

 ISSN 0976-0849

माई न चीन्ही,
बहिना न चीन्ही,
भिखिया माँगत योगी
केहू न चीन्ही।"[14]

(गुदरिया योगीगीत : लोकगीत)

योगी गोपीचन्द प्रसिद्ध नवनाथ में एक थे। यह भी सर्वश्रुत है कि नाथपन्थ के 'मीननाथी सम्प्रदाय' के वे प्रवर्तक थे।

भर्तृहरिनाथ और योगी गोपीचन्द की योगकथा के समानान्तर पंजाब प्रान्त के प्रेमयोगी राँझा और पुरनमल्ल, चित्तौड़ के राजा रतनसेन, मंजरी और चनवा का उद्धारक प्रेमवीर लोरिक और प्रेमयोग के पथिक ढोला-मारू, बुन्देल लोकगाथा आल्हा, सोरठी-बृजाभार, शोभानायका-बनजारा, बाला-लखन्दर, संयोगिता-स्वयंवर प्रभृति अनेक लोकप्रेमगाथाएँ प्रेमयोग की प्रतीक हैं। लौकिक प्रेमविधान के जरिये अलौकिक रहस्य के साक्षात्कार की अनूठी रूपरेखाएँ हैं। सूफी-साधना अथवा प्रेममार्गी अध्यात्म-साधना में इसे इश्कमजाजी से इश्कहकीकी में अवान्तरित होना कहा गया है। जायसी का 'पदमावत' इस प्रेमयोग का महासूत्र अथवा कि महाकाव्यमय योगगाथा है। नाथपन्थ के महनीय योगनायक गुरु गोरखनाथ के उत्तरवर्ती सूफीसन्त मलिक मुहम्मद जायसी ने गोरक्ष की योगमहिमा और नाथपन्थ की सिद्धियोगवाही ज्ञानगुणगरिमा का अपने 'पद्मावत' में स्वीकरण किया है–

"बिनु गुरुपन्थ न पाइये, भूल सो जो भेंट।
जोगी सिद्ध होइ तब, जब गोरख सौं भेंट॥"[15] (पद्मावत)

अर्थात् भूलवश भी गुरुपन्थ यानी गुरु गोरख के नाथपन्थ और योगपन्थ में प्रवेश कर, गोरक्ष गुरु के साधना-सान्निध्य का लाभ उठाकर कोई योगी सिद्ध हो सकता है। गोरखनाथ के सान्निध्य का आशय है उनकी अमर योगकाया के सिद्ध तपतेज का अंगीकरण। सारांश यह कि नाथपन्थ की कठोर साधना-ऊष्मा को सहन किये बिना अथवा गुरु गोरखनाथ द्वारा निर्दिष्ट क्षुरस्यधार योगमार्ग पर टहले बिना कोई भी योगी अभीप्सित सिद्धि की सम्प्राप्ति नहीं कर सकता।

उज्जैन के राजा भर्तृहरि ने अपनी अनिंद्य सुन्दरी रानी पिंगला के विश्वासघात से खिन्न होकर वैराग्य-पथ पकड़ लिया। किंवदन्ती मानती है कि काले हिरन के वध के शाप को प्रक्षालित करने के निमित्त उन्होंने वैराग्य धारण किया और नाथगुरु गोरक्ष के शरणागत हो योगसाधना आरम्भ की। नवनाथों में शृंखलाबद्ध एक भर्तृहरिनाथ भी है। विद्वान् नृपति से नाथपन्थ में उतरकर उन्होंने 'वैराग्यशतक' और 'नीतिशतक' जैसा ज्ञानग्रन्थ रचा। इन ग्रन्थों से पूर्व पत्नी रानी पिंगला की रूपासक्ति को विषय बनाकर 'शृंगारशतक' लिखा था। विद्वद्भूमि उज्जयिनी के विद्वान् राजा का

नाथपन्थ में समाहित होना और गुरु गोरक्षनाथ का शिष्य बन उठना महज संयोगमात्र नहीं अपितु नाथपन्थ और गोरक्षनाथ की तपोविभा और योगआभा की विश्वकल्याणी आकर्षणशक्ति थी। एक नरेश के रूप में भर्तृहरि राजवन्द्य रहते, परन्तु विश्ववन्द्य न बन पाते। गोरखनाथ के योगाकर्षण ने राजपाट छोड़कर उन्हें योगी बना दिया। हाथ में सारंङी, देह में गुदरी और अंग–अंग में भभूत लगाये राजा भरथरी भिखारी बनकर अपने राजमहल पहुँचकर पत्नी पिंगला से भिक्षा माँग लिये। सिद्ध योगी होकर योगपुरुष, साहित्यपुरुष और महापुरुष बन उठे। नवनाथ के प्रसिद्ध अध्याय और पाठ बनकर इतिहासपुरुष और मिथकपुरुष भी कहलाये।

लोकमानस मानता है कि उज्जयिनी–नरेश भर्तृहरि किसी उत्साह अथवा आत्मनिर्णय में योगी नहीं बने थे, अपितु अवसाद और क्रोध के वशीभूत हो वैरागी बन गये। अपनी अनिद्य–अपूर्व– सुन्दरी रानी पिंगला के प्रति मनोभेद उत्पन्न हो जाने के कारण, सन्देह के स्थायीभाव के अंकुरित हो जाने के कारण उन्होंने वैराग्य–वरण कर लिया था। अनुकूल अवसर देखकर गुरु गोरखनाथ द्वारा उन्हें अपना शिष्य बना लिया गया। इस प्रसंग पर भोजपुरी की लोकगाथा एक जोगीगीत बनकर साक्षीकृत होती है–

राजा भरथरी भइलें जोगिया
किरोधना ना।
रूप की मूरति गुनी सयानी
सोना–देह की खानी,
मुकुट–सिंहासन पीठ–पादुका
महल की दौलत रानी।
बनि गइलन बैरागी भरथरि
तजि दिहलन सुख–सानी
जोगी भरथरि फिर न लवटलन
राजपाट राजधानी
राजा भरथरि भइले जोगिया
किरोधना ना।[16]

(जोगीगीत)

उत्तरभारतीय गाँवों में फेरी लगाकर सरंङी बजाकर योग–जागरण करने वाले जोगी–यती भरथरी के कथाप्रसंग पर गीत गाकर, महायोगी गोरखनाथ के 'अलख–निरंजन' से साक्षात्कार लेते रहे हैं। लोकनाटकों में लोकमंचों से खेले गये 'भरथरी'–विषयक नाटक अधिक मंचित और प्रशंसित हुए

 ISSN 0976-0849

हैं। नाट्यमंचन या कि पात्र-संवाद के बीच-बीच में, दर्शक-श्रोता-रुचि में रसान्तरण के निमित्त गाये जाने वाले 'भरथरी-गीत' श्रोतासमाज को अधिक प्रिय-रोमांचक और भावभरित करने वाले होते हैं। प्रत्यक्षतः देखा गया है, अनुभव किया गया है कि ग्राम्यांचल के लोकमंचों से सत्य हरिश्चन्द्र, सोरठी बिरजाभार, द्रौपदी-चीरहरण, अभिमन्यु-बध और भरत-मिलाप के समानान्तर 'राजा भरथरी' का लोकनाट्य अधिक आशंसित और लोकचर्चित बना है। राजा-रूप को छोड़कर योगी-रूप में खड़े भरथरी को लोकमानस ने हृदय-परिवर्तन के लोकविश्वास की थाती के रूप में देखा है।

काव्यभाषा अथवा रचनाभाषा से गुजरते हुए यह निष्कर्ष निकल आता है कि रचनाकार की प्रधान भाषा कौन-सी है। सामान्यतः प्रत्येक रचनाशिल्पी अनेक भाषिक तटबन्धों से गुजरता है। बोलियों की अनेक रेखाओं का स्पर्श करता है। परन्तु सभी भाषा-बोलियों को छानकर परखने पर उस कवि की कोई एक प्रमुख भाषा सामने खड़ी मिलती है, जिसके आधार पर यह सारांश निकालना आसान हो जाता है कि समीक्ष्य या आलोच्य कवि की प्रधान भाषा अमुक है। यह एक बड़ी सच्चाई है कि बहुभाषाविद् होते हुए भी कोई रचनाकार अपनी किसी एक विशिष्ट भाषा के कारण पहिचाना जाता है। जैसे-तुलसी 'ब्रजी' के भी पण्डित हैं, मगर उनका नाम आते ही 'अवधी' के प्रधान कवि की छवि-मूर्ति खड़ी होती है। वैसे ही भाषिक वैविध्य के बावजूद गोरखनाथ की काव्यभाषा के अनुशीलन से आभासित हो उठता है कि वे पूरब-पश्चिम की भाषिक संयुक्ति के अधिष्ठाता होकर भी भोजुपरी भाषा के भूपति हैं।

भोजपुरी-वाङ्मय में खड़े गोरखनाथ की भाषिक आहट को सुनने और उनकी ध्वन्यात्मक भाषिक अभिव्यक्ति की एक लघु पड़ताल से इस तथ्य का साक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। कवि गोरखनाथ जी जब 'लंका छाड़ि पलंका जाइबा।'[17] (सबदी-64) एवं 'सिर की पोट उतारी'[18] (सबदी-206) जैसे मुहावरों का प्रयोग करते हैं। 'मन चंगा तो कठौती ही गंगा'[19] (सबदी-153) एवं 'दूधै धोया कोइला उजला न होइला'[20] (सबदी-34) जैसी लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं, तब सहज ही ध्वनित हो उठता है कि ये मुहावरे और उक्तिमय प्रयोग भोजपुरी के हैं। 'हसिबा षेलिबा धरिबा ध्यांन'[21] (सबदी-8) 'हबकि न बोलिबा ढबकि न चालिबा'[22] (सबदी-27) और 'धाये न षइबा भूखे न मरिबा'[23] (सबदी-31) जैसी काव्य-अर्द्धालियाँ गोरख को भोजपुरी की कविकोटि सौंपती हैं। यही नहीं 'गोरखवाणी' के पाइबा, खाइबा, सोइबा, जानिबा, खोजिबा, करिबा, पढ़ि-पढ़ि, चीन्हत, जोगी, नकटी, तिरलोक, अहीरा, बभना, मरमी, अधरमी, भरथरी, गियानी, आदि क्रियापदों, संज्ञापदों और लोकप्रत्ययों के प्रयोग में गोरखनाथ को भोजपुरी के कवि-खाते में रखना और पढ़ना भाषावैज्ञानिक न्याय भी है। 'गोरखवाणी' के प्रतीक-विधान, बिम्ब-विधान, अलंकरण, मिथक-तत्त्व और उलटबाँसियाँ अपनी ध्वन्यात्मक अन्विति में गोरख को पूरब का भाषा-प्रतिनिधि मानती हैं। 'गोरखवाणी' का वृहत्तर प्रदेय है भोजपुरी की भाषिक ठाट का उपस्थापन और भोजपुरी की

लोकसंस्कृति का अभिरक्षण। कदाचित् भोजपुरी की वाचिक और लिखित परम्परा की इसी अनाघ्रात लोकगन्ध में गोरख को आज 'भोजपुरी का आदिकवि' कहा जा रहा है। तथापि, भोजपुरी–वाङ्मय में गोरखनाथ की उपस्थिति अभी वांछित विमर्श और अपेक्षित निष्कर्ष की माँग रखती है।

सन्दर्भः

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाथसम्प्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1950 ई., पृष्ठ 106
2. सिंह, कमल, गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य, पृष्ठ–शुभाशीष, महन्त अवेद्यनाथ, प्रकाशक– श्रीगोरखनाथ मन्दिर, 1983 ई., पृष्ठ XIII
3. ग्रियर्सन, जार्ज ए., लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, 1928 ई., पृष्ठ 173
4. गोरखनाथ, सिद्ध–सिद्धान्त–पद्धति, अनु. रामलाल श्रीवास्तव, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, 6/60
5. गोरखनाथ, योगबीज, अनु. रामलाल श्रीवास्तव, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, 34–35
6. गोरखनाथ, विवेकमार्तण्ड, अनु. रामलाल श्रीवास्तव, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, 164
7. राय, रामदरश, सम्भवामि युगे युगे, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2020 ई., पृष्ठ 90
8. मिश्र, चित्तरंजन एवं नीरन, अरुणेश, पुरइन पात, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2002 ई., पृष्ठ 14
9. गुप्त, फूलचन्द प्रसाद, 'नवनाथ अउर नाथजोगी', अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2020 ई., पृष्ठ 116
10. शाहाबादी, रवीन्द्र कुमार, 'भोजपुरी आ नाथपन्थ' विषयक आलेख (लोकभाषा–सम्बर्द्धन में नाथपन्थ का योगदान, सम्पादक : डॉ. प्रदीप कुमार राव), 2019 ई., पृष्ठ 52
11. जायसी पद्मावत (पार्वती–महेश खण्ड), दोहा–6
12. तुलसी, कवितावली (कलि–वर्णन प्रसंग), कवित्त–84
13. लोकगीत : सारंगीवादक योगीगीत
14. गुदरिया योगीगीत : लोकगीत
15. जायसी, पद्मावत (पार्वती–महेश खण्ड), दोहा–6
16. भोजपुरी की लोकगाथा, एक जोगीगीत के रूप में
17. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरखबानी, सबदी–64
18. तत्रैव, सबदी–206
19. तत्रैव, सबदी–153
20. तत्रैव, सबदी–34
21. तत्रैव, सबदी–8
22. तत्रैव, सबदी–27
23. तत्रैव, सबदी–31

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 62-70

मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त की सैन्य व्यवस्था

महेश कुमार शरण*

सारांशः भारतीय इतिहास में सर्वप्रथम एकराट साम्राज्य की अवधारणा को यथार्थ रूप देने वाला लौह पुरुष एवं युग प्रवर्तक चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त मौर्य मात्र विजिगिषु शासक ही नहीं प्रत्युत् एक कुशल शासन संगठनकर्ता भी था। वह एक बड़ी सेना का स्वामी था। इसने न केवल पंजाब से यूनानियों एवं मगध से नन्द शक्ति का समापन किया, बल्कि समस्त उत्तर भारत को रौंद डाला। पराक्रमी नन्दों की विशाल एवं सुगठित सेना चन्द्रगुप्त मौर्य को विरासत में प्राप्त हुई थी। इसकी अपनी स्वयं की भी संगठित सेना थी। पंजाब से मैसीडोनियों के प्रतिनिधियों को बहिस्कृत करने के पश्चात इसकी सैनिक शक्ति और बढ़ गयी थी। चन्द्रगुप्त मौर्य की इस विशाल सेना के स्वरूप एवं संगठन की जानकारी हमें अर्थशास्त्र तथा मेगास्थनीज की इण्डिका से मिलती है। मेगास्थनीज ने चन्द्रगुप्त मौर्य के सेना की विशालता पर बल दिया है। अर्थशास्त्र में चतुरंग बल (हस्तिबल, अश्वबल, रथबल तथा पदाति) का उल्लेख मिलता है। मेगास्थनीज ने सेना के छह अंगों का उल्लेख किया है- नौसेना, पदाति, अश्वारोही, हस्तिबल, रथ तथा यातायात इत्यादि की सुविधा देने वाले। अर्थशास्त्र में छह प्रकार के पदाति सैनिकों- मौल (पैतृक सेना), भृतक (किराये के सैनिक), श्रेणी (युद्ध अथवा शस्त्रों से जीविका चलाने वाले सैनिक जातियों एवं क्षत्रियों की सेना), मित्र बल (मित्र राज्यों की सेना), अमित्र बल (शत्रु राज्यों की सेना) तथा अटवी बल (आटविक जातियों की सेना) का उल्लेख किया गया है।

बीजशब्दः मौर्य, शासन व्यवस्था, सेना, सैन्यबल, दुर्ग, वेतन, युद्धनीति, चाणक्य, अर्थशास्त्र, अस्त्र-शस्त्र।

प्राचीन भारतीय इतिहास के मनीषियों ने चन्द्रगुप्त मौर्य को मराठा सम्राट् शिवाजी के समान माना है और ऐसा कहा है कि चन्द्रगुप्त के अन्दर निर्भीकता और राष्ट्र प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी थी। एक साधारण एवं असहाय परिवार का होकर भी वह सदा विदेशियों के चंगुल से देश को मुक्त करने का प्रयास करता रहा। वह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। बचपन से ही उसके अन्दर

*पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, गया कॉलेज, गया

राजकीय गुणों का पल्लवन हो रहा था। चाणक्य से जब चन्द्रगुप्त को पहली मुलाकाल हुई तो वह समवय लड़कों के बीच राजकीलम खेल के अन्तर्गत न्यायाधीश का कार्य कर रहा था। अपने कौशल और कुशाग्र मति के कारण वह चाणक्य का प्रेम भाजन बनकर उसकी कृपा के कारण ही नन्दों के शासन से भारतवर्ष को मुक्त कराकर मौर्य साम्राज्य के संस्थापक के रूप में इतिहास में प्रतिष्ठित हुआ और अमर हो गया। चन्द्रगुप्त भारत के प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् के रूप में हमारे सामने आता है।

चन्द्रगुप्त मौर्य की सैनिक एवं राजनीतिक उपलब्धयों के विवरणों से ज्ञात होता है कि वह अपनी प्रतिभा के बल पर एक सामान्य नागरिक से सम्पूर्ण देश के सम्राट् का पद प्राप्त किया। विश्व के इतिहास में यह एक अद्वितीय घटना है। उसका शासन काल नन्दों के पतन के बाद, 321 ई.पू. से 297 ई.पू., लगभग 24 वर्षो का था। चन्द्रगुप्त एक साथ ही अद्वितीय जननायक, सफल योद्धा, कुशल एवं प्रजावत्सल प्रशासक, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ तथा विद्या एवं कला का अनन्य प्रेमी था। वह भारत का पहला ऐतिहासिक व्यक्ति था जिसने एक ऐसे कीर्तिमान की स्थापना अपने राज्य में की जो सदा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा अनुकरणीय रहा। डॉ. वी.ए. स्मिथ ने ऐसा लिखा है कि 18 वर्ष के कठोर प्रतिकार द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य मकदूनिया के सैनिकों को भारतीय सीमा से बाहर खदेड़ा। सेल्यूक्स की शक्ति को उसने क्षीण कर दिया और स्वयं उत्तरी भारत का निर्विवाद सम्राट् बना। ये सभी विशेषताएं उसे इतिहास के महानतम और सफलतम शासकों की श्रेणी में स्थापित करती है।

हम यह भी जानते है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने दिग्विजय अभियान के द्वारा भारत को राजनीतिक एकता प्रदान की। उसने सम्पूर्ण भारत में अपना एकक्षत्र राज्य स्थापित किया और एक ऐसी प्रबल सेना का संगठन किया जो न केवल उसके शासन काल में, वरन् उसके उत्तराधिकारियों के समय में भी भारत को बहुत दिनों तक विदेशी आक्रमणों के भय से मुक्त रखा। प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य चन्द्रगुप्त मौर्य की सैन्य-व्यवस्था के विषय में विवरण देना है। उक्त के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने किस प्रकार अपनी सैन्य व्यवस्था के बल पर ही अपना साम्राज्य पूरब में बंगाल से पश्चिम में बलूचिस्तान तथा अफगानिस्तान तक और उत्तर में हिमालय से दक्षिण में कर्नाटक के चिन्तलदुर्ग जिले तक प्रसारित किया था।

यह विदित है कि नन्द साम्राज्य के पतन के पश्चात् चन्द्रगुप्त को मगध की उक्त विशाल सेना प्राप्त हुई थी, जिसकी विशालता के विषय में सुनकर ही यूनानी विजेता सिकन्दर की अजेय सेना का साहस छूट गया था तथा उसने आगे बढ़ने से इंकार कर दिया था। इसके अतिरिक्त भी साम्राज्य विस्तार एवं देश की रक्षा के लिये चन्द्रगुप्त ने काफी संख्या में नये सैनिकों की भर्ती भी की थी। चन्द्रगुप्त की सेना का स्वरूप चतुरगिणी था। मेगास्थनीज के अनुसार चन्द्रगुप्त को सेना में 6,00,000 से भी अधिक पैदल सिपाही थे। 30,000 अश्वारोही, 9000 गजारोही तथा 8000 रथों की संख्या के विषय में ग्रीक लेखकों में मतभेद है।

 ISSN 0976-0849

सैन्य संगठन –

चन्द्रगुप्त मौर्य ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक अपनी विशाल सेना के प्रबन्ध एवं देखरेख के लिये एक अलग सैनिक विभाग की स्थापना की थी जिनके सदस्यों की संख्या 30 थी। युद्ध विभाग के ये 30 सदस्य पाँच-पाँच सदस्यों की छह उपसमितियों में विभक्त थे जिनके अधीन निम्नलिखित कार्य थे[1]–

(1) पहली उपसमिति पैदल सेना (पदाति) की व्यवस्था करती थी।

(2) दूसरी उपसमिति अश्वारोही सेना का प्रबन्ध करती थी।

(3) तीसरी उपसमिति रथ सेना का प्रबन्ध करती थी।

(4) चौथी उपसमिति हस्ति सेना का प्रबन्ध करती थी।

(5) पाँचवी उपसमिति सेना के लिये आवश्यक खाद्य सामग्री, युद्ध के लिये उपयोगी अस्त्र-शस्त्र एवं अन्य उपकरण जुटाने का कार्य करती थी।

(6) छठी उपसमिति जहाजी बेड़े के सेनापति के साथ सहयोग करती थी।

सैनिकों को नियमित रूप से वेतन दिया था। राज्य द्वारा प्राप्त सैनिकों की सुविधाओं के विषय में मेगास्थनीज ने लिखा है कि उनका वेतन इतना था कि वे इस रकम से अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते थे। मौर्य सैनिक स्वतन्त्रता का भोग पूर्णरूपेण करते थे। युद्ध काल में ही उन्हें कठिन परिश्रम करना पड़ता था। युद्ध काल में भी जब वे शिविरों में रहते थे तो उन्हें नौकर मिलते थे, जो उनके अस्त्र-शस्त्र को साफ करते थे, घोड़ों की देखरेख करते थे तथा उनके रथों का संचालन करते थे। सेना की चिकित्सा के लिये भी तत्कालिक व्यवस्था रहती थी। युद्ध क्षेत्र से घायल सैनिकों को हटाकर उनकी चिकित्सा की जाती थी। युद्ध में घायल पशुओं के लिये भी यही सुविधाएँ प्रदान की गई थीं।

सम्राट् स्वयं ही प्रधान सेनापति था। सेना का प्रबन्ध करने वाला पदाधिकारी "बलाध्यक्ष" के नाम से प्रसिद्ध था। सुव्यवस्थित सेना का विवरण मेगास्थनीज ने भी प्रस्तुत किया है। सैनिक दृष्टिकोण से दुर्ग का भी बड़ा महत्व था। इस काल में पाँच प्रकार के दुर्गों का उल्लेख हमें मिलता है– स्थल दुर्ग, जल दुर्ग, वन दुर्ग, गिरि दुर्ग और मरू दुर्ग। इन दुर्गों के रक्षा की भी उचित व्यवस्था थी। अस्त्र-शस्त्र पर राज्य का एकाधिकार था और इनके निर्माण के लिये कई सरकारी कारखाने थे। जलमार्गों की रक्षा के लिये जल सेना भी थी। सेना विभाग के प्रधान पदाधिकरी के अधीन बहुत से छोटे-बड़े सेनानायक थे। सैनिक विभाग के अन्तर्गत एक सुसंगठित गुप्तचर विभाग भी था।

"अर्थशास्त्र" से हमें चन्द्रगुप्त के छह प्रकार की सेना का वर्णन मिलता है–

(1) मौलबल– यह सर्वोत्तम सेना मानी जाती थी क्योंकि यह सेना वंश परम्परा से युद्धाभ्यासी थी।

(2) भृतबल– अर्थात वेतन भोगी सेना

(3) मित्रबल– मित्र राज्यों की सेना

(4) आटव बल– वन जातियों की सेना

(5) श्रेणी बल– जो युद्ध के समय राजकीय सेवा करती थी।

(6) अमित्र बल– शत्रु की पराजित एवं बन्दी सेना।

"अर्थशास्त्र" के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य ने पृथक् रूप से सैनिक संघ का उल्लेख नहीं किया है पर कौटिल्य ने जिन विभागों के अध्यक्षों को पत्याध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, हस्त्याध्यक्ष और नावध्यक्ष से सूचित किया है वे इन्हीं उपसमितियों को बतलाते हैं जिनका उल्लेख ग्रीक लेखकों द्वारा किया गया है।[2] पत्याध्यक्ष का कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के सैनिकों को शक्ति सामर्थ्य तथा निर्बलताओं का पता लगाते रहना होता था। अश्वाध्यक्ष न केवल विविध नसलों के घोड़ों को पालने की व्यवस्था करता था बल्कि युद्ध के लिये उन्हें प्रशिक्षित कराना भी उसी का कार्य था। घोड़ों के सम्बन्ध में जो कार्य अश्वाध्यक्ष करता था वही हाथियों के लिये हस्त्याध्यक्ष करता था।[3] रथों के भी कई प्रकार थे। रथ पर सारथि के अतिरिक्त रशिक आदि भी रहते थे जो तीर-कमान, अस्त्र-शस्त्र, आवरण और उपकरणों आदि से सुसज्जित हुआ करते थे।[4] रथ सेना का संचालन रथाध्यक्ष द्वारा किया जाता था। नावध्यक्ष का प्रमुख कार्य जलमार्गों और उनमें प्रयुक्त होनेवाला विविध प्रकार की नौकाओं की व्यवस्था करना ही था तथा समुद्र मार्ग से आने-जाने वाले जहाज, बन्दरगाह आदि भी उसी के नियन्त्रण में थे। नावध्यक्ष और उसके कर्मचारियों को जल युद्ध की भी कभी-कभी आवश्यकता हो जाती थी। कौटिल्य ने कहा है कि हिंस्निका नौकाओं को नष्ट कर दिया जाय और साथ ही ऐसी नौकाओं को भी जिन्होंने बन्दरगाह के नियमों तथा व्यवहार का उल्लंघन किया है।[5]

कोटिल्य ने इनके अतिरिक्त चर एवं अनुचरों के भी अस्तित्व को स्वीकारा है जो युद्धभूमि में पहुँचने के लिये सेना के आगे-आगे शिविर मार्ग, पुल, कूप, तीर्थ (नदी पार करने का स्थान) आदि निर्माण करते चलते थे। उनमें से कुछ युद्ध-यंत्र, आयुध, कवच आदि की देखरेख करते थे। अन्य दूसरे लोग जानवरों के लिये घास और चारा की व्यवस्था करते थे। कुछ लोग घायलों को युद्ध भूमि से ढोने का काम करते थे। इन कार्यों को विशिष्ट प्रकार के श्रमिक ही किया करते थे जो असैनिक होते थे। सेना का अपना औषधि विभाग भी था जिसमें पर्याप्त संख्या में चिकित्सक हुआ करते थे जो आवश्यक शस्त्र, यंत्र, दवा, आरामदायक तेल एवं पट्टी साथ में लिये हुये घायलों की सेवा सुश्रूषा किया करते थे और उपचारिकाएं (नर्स) उनके भोजन एवं शक्तिवर्धक पेय की व्यवस्था

 ISSN 0976-0849

कर उनका उत्साह वर्धक करती थीं।

सेना के साथ दुन्दुभी, शंख, झण्डा एवं ध्वजा आदि भी चलते थे। कौटिल्य के अनुसार सूखी भूमि एवं सूखे मौसम में सेना का वह विशिष्ट अंग अधिक उपयोगी था जिसमें अश्व, ऊँट एवं गधे (खरोष्ट्राश्व बल) होते थे। सेना के संगठन में "पदिक", "सेनापति" और "नायक" एक दूसरे की तुलना में अधिक ऊँचे पदाधिकारी होते थे। सेना के दस अंगों के एक पति (पदाधिकारी) को "पदिक" कहा जाता था, दस पदिकों के ऊपर जो एक पदाधिकारी हो उसे सेनापति कहा जाता था तथा दस सेनापतियों के ऊपर एक "नायक" होता था।[6] चन्द्रगुप्त की सेना में केवल क्षत्रिय सैनिक ही नहीं होते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र– सब वर्णों के युवकों की सेना में भर्ती किया जाता था।

सैनिक उपकरण एवं हथियार

कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार के आयुधों, यंत्रों तथा कवचों का उल्लेख किया है। युद्ध यंत्रों में स्थित यंत्राणि एवं चलयंत्राणि के वरांन है। स्थित यन्त्राणि वजन में भारी होने के कारण एक स्थान पर स्थित रहकर काम देते थे। चल यंत्राणि में चक्र, त्रिशूल, मुग्दर एवं गदा आदि थे। हलमुखानि या नुकीले अस्त्रों में शक्ति, प्राश, कुन्त प्रमुख थे। धनुष, तीन प्रकार के तलवार, परशु एवं कुठार तथा पत्थर फेंकने वाले यंत्रों का भी विवरण है। तनु-वाणों में लोह-जाल (शिर स्त्राणेसहित कवच), लौह जातिका (कवच), लौहपट्ट (बिना बाँह का कवच) तथा लौह कवच (जिसमें सीना पर लोहे की पट्टी होती थी) का तथा शरीर के विभिन्न अंगों की रक्षा करने के लिये शिरत्राण, कण्छत्राण, कूपसि (बाहु रक्षक), हस्तिकर्ण (शिररक्षक) तथा पेटी आदि का उल्लेख हुआ है।

अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण और उनकी संभाल के लिये राज्य का एक अलग विभाग था जिसके अध्यक्ष को "आयुधागाराध्यक्ष" कहते थे। इसका मुख्य कार्य शिल्पियों का पारिश्रमिक निर्धारण करना था तथा वह यह भी निश्चित करता था कि वे अपना कार्य कितने समय में सम्पादित करके दे दें तथा उनके उत्पादन की किस्म क्या हो।[7] इस बात का भी विशेष ध्यान दिया जाता था कि अस्त्र-शस्त्र ऋतु प्रभाव के कारण खराब न होने पाये। कौटिल्य ने उस काल में प्रयुक्त होने वाले हथियारों तथा सैनिक यन्त्रों का विस्तृत विवरण दिया है जिन्हें इनके उपयोग के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में बाँट दिया गया है चाहे उनके उसका उपयोग रण क्षेत्र में हो या दुर्गों के निर्माण अथवा रक्षा के लिये हो या शत्रु के नगरों एवं उसके शक्तिशाली केन्द्रों को नष्ट करने के लिये हों। "अर्थशास्त्र" में कहीं भी ऐसे आयुधों का उल्लेख नहीं है जिनमें बारूद की आवश्यकता पड़ती हो। युद्ध के लिये इस काल में मुख्यतः धनुष, बाण और ढाल तलवार का ही प्रयोग किया जाता था। इसके अलावे अनेक प्रकार के भाले, बरछे और चक्र भी इस काल में प्रयुक्त किये जाते थे।

"शतार्हन" नामक एक आयुध का भी वर्णन है जो तोप या बन्दूक न होकर "अर्थशास्त्र" के टीकाकार के अनुसार एक लाट होती थी जिसमें बहुत सी नुकीली कीलें गड़ी रहती थीं जिसे दुर्ग की प्राचीर पर रखा जाता था और आक्रमण के समय शत्रु सेना पर गिरा दिया जाता था तथा शत्रु सेना पर फेंका जाता था। इसके अतिरिक्त विषैले धुएँ से शत्रु सेना का संहार करना या शत्रु सैनिकों को अन्धा कर देना, शत्रु राज्य के जलाशयों और कुओं के जल को दूषित कर देना और शत्रु देश में बीमारी फैला देना– उसी प्रकार के साधन थे। शत्रु के दुर्ग में आग लगाने के प्रयोजन से अग्निवाणों का प्रयोग किया जाता था। अग्नि योग चूर्ण या अग्नि योग गुलिकाओं द्वारा शत्रु के दुर्ग तथा स्कन्धावार में आग लगाने के अन्य भी अनेक ढंग "अर्थशास्त्र" में प्रतिमादित किये गये हैं।

युद्धः प्रकार और व्यूह रचना–

मौर्य काल में चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा शत्रु को परास्त करने के लिये विविध साधन प्रयोग में लाये जाते थे। "अर्थशास्त्र" से हमें तीन प्रकार के युद्धों का वर्णन मिलता है– प्रकाश युद्ध, कूट युद्ध और तूष्णी युद्ध।[8] प्रथम प्रकार में खुले आकाश के नीचे युद्ध किया जाता था। दूसरे प्रकार में कूट साधनों का प्रयोग किया जाता था। तीसरी श्रेणी में जब गूढ़ पुरुषों द्वारा शत्रु का नाश किया जाय तथा खुलकर लड़ने की आाश्यकता न हो तो इसे तूष्णी युद्ध कहा जाता था। जिसका सैन्य बल शक्तिशाली हो जिसने कूट-नीति में सफलता प्राप्त कर ली है और जिसने सब प्रकार के संकटों या भयों के निवारण की व्यवस्था कर ली हो ऐसे राजा को प्रकाश युद्ध करना चाहिये।[9] जब राजा की यह विश्वास हो जाये कि उसकी शक्ति शत्रु की तुलना में अधिक है तभी प्रकाश युद्ध करना चाहिये अन्यथा कूट युद्ध का आश्रय लेकर शत्रु को परास्त करना चाहिये। कूट युद्ध की भी कई श्रेणियाँ थी जिनमें निम्न प्रमुख हैं–

(1) यह दिखलाया जाये कि अपनी सैन्य शक्ति बहुत निर्बल है तब पीछे हटना प्रारंभ कर दिया जाये।

(2) अपने को पीछे हटता देखकर शत्रु सुरक्षित स्थान का परित्याग कर ऐसी भूमि पर चला जाये जो सुरक्षित नहीं होगी।

(3) शत्रु को ऐसी भूमि पर आया देख तुरन्त पलट कर उस पर आक्रमण कर दिया जाये।

(4) रात्रि के समय शत्रु सेना पर आक्रमण किया जाये जिसके कारण शत्रु राज्य के सैनिक रात भर सो न पायें।

(5) अगले दिन थकान और नींद के कारण जब वे सोने लगे तो उन पर पुनः हमला कर दिया जाये।

 ISSN 0976-0849

(6) जब धूप शत्रु सेना के मुख पर पड़ रही हो या हवा का रुख शत्रु सेना की ओर हो तब उस पर आक्रमण कर दिया जाये।

तूष्णी युद्ध में सैनिकों और आयुधों का प्रयोग नहीं किया जाता था।

मौर्यों के शासन-काल में दुर्गों का भी विशेष महत्व रहा है। नगर का निर्माण दुर्ग के रूप में किया जाता था। राजधानी के अतिरिक्त जनपद की सीमाओं पर अनेक दुर्गा बनाये जाते थे जिनमें स्थापित सेनाएँ धन्तपालों की अधीनता में रहती थी।[10] इन दुर्गों का मुख्य उद्देश्य शत्रु के आक्रमण से देश की रक्षा करना ही होता था। सेनाएँ जहाँ दुर्गों में रहता था वहाँ उनके लिये छावनियाँ भी स्थापित किये जाते थे। शत्रु इन छावनियों पर आक्रमण न कर सके इसके लिये छावनियों के चारों ओर दीवार भी बनायी जाती थी जो खाई से घिरी होती थी। शत्रु पर आक्रमण और स्वदेश की रक्षा आदि के लिये जब छावनियाँ कहीं प्रस्थान करती थीं तो यह पहले ही देख लिया जाता था कि सेना के मार्ग में कौन-कौन से ग्राम तथा जंगल पड़ेंगे तथा उनसे कितनी मात्रा में अन्न, ईंधन और जल प्राप्त किया जा सकेगा। इस काल में ऐसी व्यवस्था की गई थी कि सेना के लिये जितनी भोज्य सामग्री की आवश्यकता समझी जाये, उससे दुगुनी मात्रा में उसे साथ ले जाने का प्रबन्ध किया जाता था। इस सामग्री की ढुलाई की व्यवस्था यदि न की जा सके तो सैनिकों से ही उसे ढुलवाने का काम किया जाता था।[11] छावनी के प्रस्थान करने पर नायक उसके आगे-आगे रहता था और सेनापति सबसे पीछे।[12]

युद्ध काल में मौर्य सेना की अनेक प्रकार से व्यूह रचना की जाती थी। पदाति, रथ, अश्व और हस्ति चारों प्रकार के सैनिकों को एक विशेष ढंग से खड़ा किया जाता था । व्यूह के कई प्रकार थे जिनमें चार ही प्रमुख थे– दण्ड व्यूह, भोग व्यूह, मण्डल व्यूह और ससंहत व्यूह। सैनिकों को युद्ध सामग्री तथा अन्य आवश्यक सामान का संग्रह करके रखा जाना भी अत्यन्त उपयोगी माना जाता था।[13] चिकित्सक भी सेना के साथ रहते थे। शल्य चिकित्सा के उपकरण, चिकित्सा कार्य में सहायक उपकरण, औषधि, विभिन्न प्रकार के तेल तथा विभिन्न प्रकार के वस्त्र चिकित्सकों के पास आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग में लाने के लिये रखे जाते थे। इनके अतिरिक्त ऐसी स्त्रियाँ भी सेना के चिकित्सकों के साथ रहती थीं जो भोजन और पेय की व्यवस्था करती थीं।[14] चिकित्सकों और उनके साथ की स्त्रियों का सेना के पीछे-पीछे रहने का यह प्रयोजन था कि घायल हुये सैनिकों की चिकित्सा वीर सेवा शुश्रूषा की व्यवस्था हो सके।

सैनिकों को एकत्र कर राजा उन्हें संबोधन करता था। उन्हें यह भी कहा जाता था कि वेदों के अनुसार यज्ञों द्वारा जो फल प्राप्त किया जाता है, शूर लोग युद्ध में उसे सुगमता से प्राप्त कर लेते हैं। ज्योतिषी लोग भी अपनी भविष्यवाणी से विजय अभियान की प्रेरणा सैनिकों को दिया करते थे।[15] युद्ध की समाप्ति के बाद सैनिकों को उनके वेतन का दुगुना पारितोषिक स्वरूप प्रदान किया जाता

था।[16] इसी प्रकार शत्रु देश के राजा के मारने पर एक लाख पण, कुमार और सेनापति को मारने पर पचास हजार पण, प्रबीर मुख्य को मारने पर दस हजार पण, हस्ति का संहार और रथ का विनाश करने पर पाँच हजार पण, अश्व को मारने पर एक हजार पण, पदाति मुख्य को मारने पर सौ पण और शत्रु सेना के किसी भी सैनिक का सिर काट कर ले आने पर बीस पण पुरस्कार देने की व्यवस्था थी।

शत्रु राज्य से युद्ध के समय यह ध्यान में रखा जाता था कि धन और जन का व्यर्थ संहार न किया जाये। इसीलिये कौटिलीय अर्थशास्त्र में ऐसा विवरण हमें मिलता है कि शत्रु के दुर्ग या स्कन्धावार को आक्रान्त करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना अनिवार्य था तथा उन पर शस्त्र का प्रयोग न किया जाये।[17]

(1) पतित शत्रु सेना के सैनिक जो भय से भूमि पर लेट जायें।

(2) वैसे लोग जो भय से अपनी पीठ आक्रान्त की ओर कर ली हो।

(3) वैसे लोग जो आत्म समर्पण कर दिया हो।

(4) वैसे लोग जिन्होंने अपने बाल खोल दिये हों।

(5) वैसे सेनिक जो हथियार डाल दिये हों।

(6) वैसे व्यक्ति जिन्हें भय के कारण शक्ल बिगड़ गई हो।

(7) वैसे लोग जो युद्ध में भाग न ले रहे हों।

उपयुक्त तथ्यों के आलोक में ही मेगास्थनीज ने ऐसा लिखा है कि भूमि जोतने वाले, चाहे उनके पड़ोस में युद्ध क्यों न हो रहा हो किसी प्रकार के भय की आशंका से विचलित नहीं होते। दोनों पक्षों के योद्धा युद्ध के समय एक दूसरे का संहार करते हैं पर जो खेतों में लगे हुये हों उन्हें वे पूर्णतया निर्विघ्न रहने देते हैं। डॉ. सत्केतु विद्यालंकार के शब्दों में[18] "यह कल्पना करना असंगत नहीं होगा कि अर्थशास्त्र में निरूपित नीति का अनुसरण करके ही मौर्यों ने अपने उस साम्राज्य का निर्माण किया था जो विस्तार की दृष्टि से मुगलों और ब्रिटिश युग के भारत से भी अधिक विशाल था। निस्सन्देह चन्द्रगुप्त की युद्धनीति अत्यन्त उत्कृष्ट थी।"

पाद-टिप्पणी

1. McCrindle, J.W. Ancient India as described by Megasthenes and Arrian, Oriential Press, Calcutta, 1877, PP-84
2. कौटिलीय अर्थशास्त्र, व्याख्याकार-वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 1984 ई., 10/4 "स्वभूमिः पच्यश्वरथ द्विपानाभिषता युद्धे निवेशे च।"

 ISSN 0976-0849

3. तत्रैव, 2/33
4. तत्रैव, 2/28, "हिसिका निधातयेत्। अमित्र बिध्यातिगाः पण्यपत्तन चारित्रोधाति काश्च।"
5. तत्रैव
6. तत्रैव, 106, अंडगदशक स्यैकः पतिः पादिकः। पादिकदशकस्यैकः सेनापतिः, तुद्वशंकस्येको नायक इति।
7. तत्रैव, 2/18, आयुधागाराध्यक्षः सांग्राणिकांदोर्गकर्मिक, परपुराभिछाहिकं चकुयन्त्र माधंध भावरणमुप करण, च तज्जातकारु शिल्यिभिः कृतकर्म, प्रमाण कालवेतनफल निस्पत्तिभिः कारयेत।
8. तत्रैव, 7/6, "विझमस्य प्रकाशं युद्धं कूटयुद्धं मूष्णी युद्ध मिति।"
9. तत्रैव, 10/3, "बलविशिष्टः कृतोपजापः प्रतिविहित, कुर्तहस्वभूंभ्यां प्रकाश युद्धमुपेयात्।"
10. तत्रैव, 2/1, "अन्तेस्वन्तपाल दुर्गाणि।"
11. तत्रैव, 10/2
12. तत्रैव, 10/2, "पुरस्तान्नाधकः ..... पाश्चात् सेनापतिर्यायात।"
13. तत्रैव, 10/5, "द्वे शर्त धनुषा गत्वा राजा तिष्ठेअतिग्रहः। भिन्न संधातन तस्मान्न शुध्यता प्रतिग्रहः।।"
14. तत्रैव, 10/3
15. तत्रैव, 10/27
16. तत्रैव, 07/13
17. तत्रैव, 13/4
18. विद्यालंकर, सत्यकेतु, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन, मसूरी, 1980 ई., पृष्ठ 443

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 71-78

भारतीय ज्ञान-विज्ञान परंपरा

डॉ. जितेन्द्र भावसार*

सार संक्षेपः वर्तमान युग में राष्ट्र के विकास में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का अहम योगदान हैं। प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक भारतीय ज्ञान और विज्ञान ने आपात स्थितियों में विश्व को राह दिखाई। भारत का विज्ञान कल भी समृद्धद्ध था और आज भी समृद्धद्धशाली होने के साथ ही विश्व के लिए प्रेरणा का केंद्र हैं। आज तक हुए समस्त शोध में कहीं न कहीं प्राचीन भारतीय विज्ञान अपना आधार प्रस्तुत करता हैं। भारतीय ज्ञान सम्पदा विश्व के लिए सदैव उपलब्ध रही, गुरुकुल परम्परा से सम्पूर्ण विश्व के अलग अलग देशों से आये विद्यार्थियों ने ज्ञान अर्जन किया। प्रस्तुत लेख में प्राचीन भारत के विज्ञान और तकनीक के बारे में किये गए कार्यों का संक्षिप्त और सामान्य परिचय दिया गया हैं जिससे भारत के प्राचीन विज्ञान को समझकर आधुनिक विज्ञान में नए नवाचार की राह आसान होगी।

बीजशब्दः भारतीय ज्ञान परंपरा, धातु शास्त्र, आयुर्विज्ञान, रंगयोजना, वेद, योग, गणित, पर्यावरण, अनुसंधान

प्रस्तावना

आदिकाल से ही भारत का विज्ञान समृद्ध रहा हैं, विज्ञान की प्रत्येक विधा रसायन, भौतिकी, गणित, चिकित्सा विज्ञान, धातु शास्त्र, खगोल विज्ञान सभी में भारतीय मनीषियों का ज्ञान उत्कर्ष पर रहा। यदि परिणात्मक शिक्षा की बात करें तो कौटिल्य के अनुसार, शिक्षित व्यक्ति में तीन चारित्रिक परिणाम आते हैं: विद्या- नवीन ज्ञान का सृजन, विवेक- सही ज्ञान को सही समय पर सही जगह उपयोग करने की क्षमता और विलक्षणता- वास्तविक जीवन में प्राप्त ज्ञान के उचित परिणाम के लिए कौशल का होना। शिक्षा प्रणाली में सही तरीके से ज्ञान और कौशल का एकीकरण हो तो सार्थक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा को प्रमुखता

*सहायक प्राध्यापक, रसायनशास्त्र विभाग, अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल, मध्य प्रदेश (भारत) संपर्क सूत्रः 9770244969, ई-मेलः jitendra.bhawsar@gmail.com, राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ स्मृति सप्तदिवसीय व्याख्यान-माला के अन्तर्गत दिनांक 19 अगस्त, 2023 को उक्त विषय पर लेखक द्वारा दिये गये व्याख्यान का संकलन।

 ISSN 0976-0849

से सम्मिलित करने पर जोर दिया हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा मात्र एक विषय नहीं हैं, इसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने का उद्देश्य अंतर्विषयक अध्ययन और अध्यापन को बढ़ाना है, जो स्वदेशी विज्ञान के ज्ञान से कौशल पूर्ण और आत्मनिर्भर भारत की नयी पीढ़ी का निर्माण करेगी। भारतीय ज्ञान सम्पदा को राष्ट्रीय शिक्षा नीति में समावेश करने का एक उद्देश्य यह भी कि प्राचीन भारतीय ज्ञान का विधिवत प्रलेखीकरण कर सकें। इस लेख में प्राचीन भारत में विभिन्न विषयों में हुए शोध में से कुछ प्रमुख शोध का उल्लेख किया जा रहा है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा को प्रारंभिक रूप से समझने में आसान होगी।

भारतीय ज्ञान परंपरा में गणितः

प्राचीन भारत में गणित का शोध अपने उत्कर्ष पर था, इसकी व्याख्या सिर्फ वेदों में ही की जाती हैं। वेदांग-ज्योतिष, काल-गणना की सबसे पुरानी पुस्तक है, लगभग 1500 ई.पू. लिखी इस पुस्तक में भी गणित की उत्कृष्टता को दर्शाता यह श्लोक है-[1]

यथा शिखा मयूराणां, नागानाम मणियों यथा।
तद वेदांग- शास्त्रनाम, शास्त्राणाम गणितम मूर्धनिस्थितम।।

अर्थात् जिस प्रकार मयूरों की शिखाएं और सर्पों की मणियाँ शरीर में सर्वोपरि स्थान मस्तक पर विराजमान हैं, उसी प्रकार वेदों के सब अंगों तथा शास्त्रों में गणित शिरोमणि है। ठीक उसी प्रकार से प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ महावीराचार्य (850 ई.)[2] ने 'गणितसार संग्रह' के प्रथम अध्याय में लिखा है-

बहुकिंचिदस्तु किम् त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्किंचिदस्तु तत्सर्व गणितेन बिना नहि।।

अर्थात् बहुत अधिक प्रलाप करने से क्या लाभ हैं। इस जगत में जो कुछ भी वस्तु हैं वह सब गणित के बिना समझना संभव नहीं हैं।

यह ज्ञान भारतीय बुद्धिजीवियों को प्रारम्भ से ही था, अतः उन्होंने गणित पर सर्वाधिक ध्यान दिया। यह सर्वविदित हैं, कि शून्य का अविष्कार भारत में हुआ और यह भी सत्य हैं कि 15वीं और 16वीं शताब्दी तक यूरोप के अंदर गणित में कोई विशेष कार्य नहीं हुआ। 11वीं से 12वीं शताब्दी में हुए कैलकुलस के जन्मदाता भास्कराचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ लीलावती में लघु कथाओं के माध्यम से गणित के अनेक छोटे-छोटे सूत्र दिए गए हैं।[3] 11वीं से 18वीं शताब्दी तक गणित के प्रचार प्रसार में इस ग्रन्थ की महत्वपूर्ण भूमिका रही। हैं। ऋग्वेद की एक ऋचा हैं :

द्वादश प्राध्याश्य प्रधयशय क्रमेकम त्रीणि नाभ्यामिक उतच्चिकेट।
तस्मिन्त्सामाकं त्रिशता न शङ्कवोअरविता षष्टिर्न चलचलास।।

इसमें द्वादश अर्थात् बारह त्रीणि अर्थात् तीन, त्रिशत अर्थात् तीन सौ, षष्टी अर्थात् साथ संख्याओं का प्रयोग दाशमिक प्रणाली का उदाहरण हैं। यह प्रणाली सर्वप्रथम भारत से अरब और अरब से अन्य यूरोपीय देशों तक गयी।

प्राचीन गणित का आदिकाल (500 ई.पू.) तक और वैदिक काल (1000 ई.पू.) तक कहा जाता हैं। सर्वप्रथम बोधायन द्वारा पाई का मान की गणना की गयी, शताब्दियों पहले पाइथोगोरस प्रमेय की खोज भी बोधायन द्वारा की गयी जिसका उन्होंने अपने ग्रन्थ शुल्ब सूत्र (1000 ई.पु.) में वर्णन किया है।[1]

दीर्घ चतुरस स्याक्ष्णया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यकमानी यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति।

अर्थात् किसी आयात का कर्ण क्षेत्रफल में उतना ही होता हैं, जितना कि उसकी लम्बाई और चौड़ाई का होता है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्, पूर्ण मुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्ण मेवा वशिष्यते।

(ईशावास्योपनिषद)

यह ईशावास्योपनिषद का प्रारम्भ शुल्क हैं इसका अर्थ है- यह भी पूर्ण हैं, वह भी पूर्ण हैं। पूर्ण से पूर्ण की उत्पत्ति होती हैं, फिर भी वह पूर्ण ही रहता हैं तथा अंत में पूर्ण में पूर्ण ही हो जाता हैं फिर भी पूर्ण ही बचा रहता हैं तथा पूर्ण में पूर्ण जोड़ देने के बाद भी उत्तर पूर्ण ही आता हैं।

पर्यावरण हितैषी भारतीय ज्ञान परंपराः

भारतीय समाज सदैव ही प्रकृति पूजक रहा हैं, न्यूनतम मात्रा में संसाधनों का उपयोग करना और प्रकृति के प्रति मातृभाव का सम्बन्ध रखना भारतीय संस्कृति की विशेषता रही हैं। भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक संसाधनों के सीमित दोहन के बारे में सनातन काल से ही कहा गया हैं। ईशावास्य उपनिषद में एक सूत्र है- तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। इसका अर्थ है कि जो त्याग करते हैं, वे ही भोग पाते हैं। उक्त सूक्त में स्पष्ट हैं कि भारतीय ज्ञान परम्परा, सनातन काल से ही पर्यावरण संरक्षण का सन्देश देती आयी हैं। जैसी कि भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल वेदों में पर्यावरण संरक्षण के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी और सिद्धांत बताये गए हैं, उदाहरण के लिए 4 ऋग्वेद में सूक्त 10. 191 में पृथ्वी को माता कहा गया हैं और पुत्र के रूप में मानव से सम्बन्ध बताया गया हैं– "माता भूमि पुत्रोहं पृथिव्या" अर्थात् पृथ्वी मेरी माता हैं और मैं इसका पुत्र हूँ। अतः प्राचीन भारत में जिन परम्पराओं और प्रौद्योगिकी का विकास हुआ हैं, उसमें पर्यावरण के हित का ध्यान रखने के साथ-साथ अपशिष्ट पदार्थों के पुनः चक्रीकरण की व्यवस्था भी की गयी हैं। वेदों में पर्यावरण

 ISSN 0976-0849

संरक्षण से सम्बंधित अनेक मन्त्र दिए गए हैं, ये मन्त्र मानव और पर्यावरण के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध बताते हैं।

आप्यायन्तु मिमं लोकं सर्वे वृक्षा वनस्पतयः।
यथाहं क्रियतां चरितं च पृथिव्या मृते सदा।

ऋग्वेद (10-191-2)[4]

अर्थात् सभी वृक्ष और वनस्पतियाँ इस संसार को सुसज्जित करें, हमेशा पृथ्वी में नियमितता से जीवन बिताएं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में धातु विज्ञानः

प्राचीन भारत में रसायन शास्त्र को 'रसशास' या 'रसक्रिया' के नाम से जाना जाता था। इस कालखंड में कुल आठ धातुओं के उपयोग का वर्णन किया गया है, जिसमें स्वर्ण, रजत, लोह, ताम्र, यशद (जस्ता), वंग (टिन), मर्करी, सीसा (लेड)। छान्दोग्य उपनिषद में मिश्र धातुओं का वर्णन मिलता हैं। रसरत्नाकर और वृहत संहिता जैसे ग्रंथों में धातुओं के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया हैं।[5] इस दौरान चरक और सुश्रुत संहिता नामक पुस्तकें उपलब्ध थी, जिसमें धातुओं को भस्म में परिवर्तित करने के साथ-साथ इनके औषधीय गुणों का भी वर्णन किया गया हैं। रत्नसम्मुचय ग्रन्थ में प्रयोगशाला में उपयोग होने वाले 32 प्रकार के बर्तनो के बारे में वर्णन किया हैं।[5]

सुवर्ण रजतं ताम्रं तीक्ष्णवंग भुजङ्गमाः।
लोहकं षड्विधं तच्च यथापूर्व तद्क्षयं।।

(रसार्णव 7-89-10)[6]

अर्थात् स्वर्ण, चांदी, ताम्र, सीसा और लोहा इसी क्रम में धातुओं में जंग न लगने की प्रक्रिया होती हैं, जहाँ सबसे कम स्वर्ण में और सबसे अधिक लोह में जंग लगता हैं।

भारत के दक्षिण राज्य केरल में स्थित अर्णामुना स्थान पर आज भी कलाकारों द्वारा धातु के दर्पण बनाने की कला हैं।[7] ये दर्पण धातुओं से हस्त कौशल द्वारा निर्मित होते हैं। इस प्रकार के दर्पण की विश्व भर में काफी मांग रहती थी और भारत से निर्यात किये जाते थे। 'अराणमुला कन्नाडी' यानी हिंदी में दर्पण या आईना और इसे मलयालम व तमिल में 'कन्नाडी' कहते हैं। कन्नाडी शीशे के बजाय धातु से बनाए जाते हैं और इसके बनने की रहस्यमयी प्रक्रिया पीढ़ियों से चले आ रही पारिवारिक परंपरा का हिस्सा है। यह कला एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती है।[8]

कुछ समय पूर्व ही भारत में लोह निर्माण की अद्भुत परम्परा और कला थी। आज भी बस्तर के अघरिया समाज द्वारा रेत से लोह निष्कर्षण का कार्य किया जाता हैं। इस लोहे की विशेषता हैं

कि इसमें कभी जंग नहीं लगता। कुतुब मीनार के सामने स्थित कीर्ति स्तम्भ और धार में स्थित लौह स्तम्भ इसका प्रमाण हैं। मध्यकालीन युग को देखें तो राजा भोज के शासनकाल (1010-1053 ईस्वी) में मालवा में धातु विज्ञान का शोध भी उत्कर्ष पर रहा, फिर वह अयस्क से धातुओं का निष्कर्षण हो या जंग रहित धातु निर्माण की विधि, राजा भोज के शासनकाल के दौरान मालवा में लौह उद्योग की उपलब्धियों को अच्छी तरह से प्रलेखित किया गया है। स्वयं राजा भोज भी धातु विज्ञान में पारंगत थे, उन्होंने अपने ग्रंथ युक्तिकल्पतरु में लोहे के अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की चर्चा की है और लौह धातु विज्ञान पर पहले के ग्रंथों जैसे लोहार्णवा, लोहादस्पा और लौहप्रदीप का उल्लेख किया है। राजा भोज ने अपने धातु विज्ञान के कौशल से लौह स्तंभ का निर्माण करवाया था, जो आज भी जंग रहित है। आई.आई.टी. कानपूर के वरिष्ठ प्राध्यापक आर. बालसुब्रमण्यम के अनुसार यह लौह स्तम्भ मूल रूप से एक शिव मंदिर के सामने, त्रिशूल (त्रिशूल) की चोटी के साथ सबसे ऊपर स्थित था, अब यह स्तम्भ दो दीर्घ टुकड़ों में विभाजित हैं।[9]

भारतीय ज्ञान परंपरा में रंगः

रंग मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग हैं, सौंदर्य बोध से लेकर उपचार तक रंगों का उपयोग होता हैं। रंग अपने विभिन्न स्वरूपों में प्राणियों के लिए औषधि का कार्य करते हैं। रंग योजना का मूल प्रकाश हैं जैसे कि सूर्य के प्रकाश में सात रंग दिखाई देते हैं अतः रंगों का मूल स्त्रोत इंद्रधनुष को ही माना गया हैं। सूर्य कि सात किरणों को सप्तरश्मि कहा जाता हैं, जो सात रंग के अश्वों के साथ ही सात दिनों को प्रकट करती हैं।

सूर्यआत्माजगतस्तःस्थुषश्र्च

ऋग्वेदसंहिता (1/115/1)[10]

अर्थात् सूर्य, जड़ चेतन रूपी जगत की आत्मा हैं। सूर्य के 12 स्वरूपों की स्तुति वेदों में की गयी हैं, जिन्हें आधार मानकर आधुनिक स्वास्थ्य मनीषियों ने बारह सूर्य नमस्कार बताये हैंः

पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्।
बुध्येम शरदः शतम्। रोहेम शरदः शतम्।
पुषेम शरदः शतम्। भवेम शरदः शतम्।
भूयेम शरदः शतम्। भूयसीः शरदः शतात्।

(अथर्ववेद 19.67.1-8)[11]

अर्थात् अथर्ववेद में कहा गया हैं, कि सूर्य की किरणों से जीवन शक्ति और दीर्घायु प्राप्त होती हैं। प्राचीन भारतीय सभ्यता जैसे कि हड़प्पा और मोहनजोदाड़ो की खुदाई में भी रंग लगे हुए बर्तन प्राप्त हुए। रंग के विषय में 5 अलग-अलग क्षेत्रों में अध्ययन किया गया हैं।[12,13,14]

 ISSN 0976-0849

रसायन शास्त्र से सम्बंधित वैज्ञानिकों ने रंगों के रासायनिक गुणों का अध्ययन किया। भौतिक विज्ञान शास्त्र के वैज्ञानिकों ने रंगों पर पड़ने वाली प्रकाश का अध्ययन किया। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार रंग मनुष्य पर अपना न मिटने वाला प्रभाव छोड़ देते है, जैसे तथ्यों का अध्ययन किया। शरीर रचना वैज्ञानिकों ने आँखों द्वारा ग्रहण की गयी रंग संवेदना का अध्ययन किया। रंगीन सूर्य रश्मियों में स्नान करने से कई प्रकार के रोग विकारों को दूर किया जाता हैं, इसी के आधार पर क्रोमोथैरेपी की तकनीक विकसित की गयी। जिसका उपयोग सूजन कम करने, दर्द से राहत देंने, खुले घाव भरने और शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं के बाद शरीर में हुई हानि को कम किया जा सकता है।

योग शास्त्र के अनुसार कुण्डलिनी जागरण में रंगों का प्रयोग किया जाता थाः

"यत् पिंडे तत् ब्रह्मांडे" अर्थात् जो चीजें इस ब्रह्मांड में विद्यमान हैं, वो समस्त चीजें जीव के अंदर भी विद्यमान हैं। सूर्य की रश्मियों में स्नान करने से कई प्रकार के रोग विकारों को दूर किया जाता हैं, इसी के आधार पर क्रोमोथैरेपी की तकनीक विकसित की गयी जिसका उपयोग सूजन कम करने, दर्द से राहत दें, खुले घाव भरने और शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं के बाद शरीर में हुई हानि को काम किया जा सकता है। रंगों का अस्तित्व शरीर और प्रकृति में सामान मात्रा में रहता हैं।[15-16]

भारतीय ज्ञान परम्परा में आयुर्वेद और योगः

आयुर्वेद प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति हैं, आयुर्वेद के अनुसार शरीर पंचतत्वों आकाश, वायु, तेज (अग्नि), जल, पृथ्वी तत्व से मिलकर बना है एवं वात, पित्त और कफ इस शरीर के त्रिदोष हैं। इन तीनो के बीच का संतुलन अच्छे स्वास्थ्य का सूचक हैं। चरक और सुश्रुत आयुर्वेद के संयोजक हैं। चरक संहिता में अनेकानेक रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है जबकि शल्य चिकित्सा का वर्णन सुश्रुत संहिता में किया गया हैं। चरक संहिता में 500 और सुश्रुत संहिता में 700 से अधिक वनस्पतियों को औषधि के रूप में सूचीबद्ध किया गया हैं।[17] विश्व को "योग" भारत की देन हैं, योग सूत्र के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग हैं।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

निष्कर्षः

भारत की संस्कृति में धर्म सम्मत परम्पराओं का विशेष स्थान है। समाज और राष्ट्र को ज्ञान का मार्ग दिखने के लिए ऋषि परम्परा आगे रही, अन्न उत्पादन में कृषि परम्परा, तो कौशल अर्जित करके राष्ट्र को समृद्धि के मार्ग पर ले जाने वाली भारतीय विज्ञान परम्परा। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में गुरुकुल, ज्ञान के साथ कौशल का भी केंद्र थे, अतः भारत को पुनः जग सिरमौर बनाने के लिए प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति की आवश्यकता हैं। उक्त लेख का आशय भी भारतीय विज्ञान

के साहित्य को जानना, पढ़ना, चिंतन करना और समाज के हितों के लिए उपयोग करना हैं। भारतीय बौद्धिक सम्पदा का प्रलेखिकरण कर समाज के सामने रखना आज की आवश्यकता हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा आज के भौतिकतावादी युग में वैश्विक स्तर पर मानव समाज को जीवन यात्रा के लिए आदर्श दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। प्राचीन भारतीय ज्ञान, पर्यावरण के प्रति अपने दायित्व को स्मरण कराता हुआ, स्वस्थ जीवन शैली के साथ जीने की प्रेरणा देता हैं।

ॐ सहनाववतु।
सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

सन्दर्भ सूचीः

1. सिंह, मनोरंजन कुमार, अध्यात्म में गणितीय सूत्र का प्रयोग, विज्ञान गरिमा सिंधु, अंक 109, 2019 ई., पृष्ठ 7-16
2. गणित का शिक्षण शास्त्र भाग 1, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षा शास्त्र विद्या शाखा, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, 2018 ई., पृष्ठ 4-5
3. चतुर्वेदी, कन्हैयालाल, भारतीय मेधा की अनुपम देन हैं गणित शास्त्र, पाथेय कण, 2015 ई., पृष्ठ 26
4. ऋग्वेद, संपा. सातवलेकर, दामोदर, स्वाध्याय मंडल, वैदिक अनुसंधान केन्द्र, पाइड़ी, महाराष्ट्र (10.191.2), 2001 ई.
5. कुमावत, खेताराम, भारत में रसायन शास्त्र की समृद्ध प्राचीन परंपरा, पाथेय कण, 2015 ई., पृष्ठ 33
6. रसार्णव 7-89-10
7. Balasubraramaniam, R., New Study of the Dhar iron pillar, Indian Journal of History of Science, 37.2 (2002) 115-151
8. Ghosh, M.K., The Delhi Iron Pillar and Its Iron, NML Technical J., 5 (1963) 31-45
9. Biswas, A.K., Minerals and Metals in Ancient India, Vol. II, D.K. Printworld, New Delhi, 1996.
10. ऋग्वेदसंहिता, तत्रैव (1/115/1)
11. अथर्ववेद, संपा. सातवलेकर, दामोदर, स्वाध्याय मंडल, वैदिक अनुसंधान केन्द्र, पाइड़ी, महाराष्ट (19.69.1-8), 2001 ई.
12. परिमि, सुरेश और भट्ट, गोपाल कृष्णा, रसेन्द्र सार संग्रह, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2007 ई., पृष्ठ 75
13. शेरी, डॉ. जी., गृह व्यवस्था एवं कला, प्रकाशक विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, नवीन संस्करण ISBN 8174571027

14. दीक्षित, डॉ. पुष्पा, योग प्रशिक्षिका 'वैदिक सूर्य देवता द्वारा शारीरिक चिकित्सा', संज्ञा हरण शोध 23(1) पृष्ठ 2278-8166

15. उपाध्याय, डॉ. पुष्पा, आतंरिक गृह सज्जा एवं संसाधन प्रबंध, प्रथम संस्करण, विस्डम बुक, वाराणसी, पृष्ठ 363-373

16. कुमारी, सीता, रंगों का दैनिक जीवन में उपयोग एवं चिकित्सा संज्ञाहरण शोध, 24(1), ISSN 2278-8166

17. झा, प्रतापानन्द, विज्ञान परक भारतीय संस्कृति, विज्ञान प्रकाश 20(3), पृष्ठ 62-68

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 79-84

प्राचीन भारत से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तक अध्यापक शिक्षा का उन्मेष

शिप्रा सिंह*

सारांश- भारत में अध्यापक शिक्षा का प्रारम्भ प्राचीन काल से ही दृष्टिगोचर है। शिक्षक का कार्य समस्त कार्यों में सर्वाधिक पवित्र माना जाता है। अध्यापक शिक्षा ही वह स्त्रोत है जिसके सानिध्य में भावी अध्यापकगण कौशल एवं तकनीकि से सुशोभित होते हैं एवं कौशल विशेष में अपनी दक्षता अर्जन करते हैं। अध्यापक शिक्षा द्वारा सृजनात्मक एवं मौलिक चिन्तन विकसित किया जाता है, जिससे आने वाले कल को क्षमताओं से निहित बनाया जा सके। अध्यापक शिक्षा के शुभारम्भ के परिणामस्वरूप कार्यकुशलता, दक्षता, सम्प्रेषण, योग्यता एवं उद्यमगत श्रेष्ठता की स्थापना को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है, लेकिन मानवीय एवं वातावरण सम्बन्धी पक्षों को विकसित करने के लिए शिक्षा को स्थान देना जरूरी हो जाता है, जिससे मानवीय मूल्यों को भी संवर्धित किया जा सके।

बीज शब्द- अध्यापक शिक्षा, व्यक्तित्व, अध्यापन, मौलिकता, नार्मल स्कूल, प्रशिक्षण, पुनर्बोधन पाठ्यक्रम, शोध क्षेत्रीय संस्थान, गुणवत्ता, नैतिकता, सेवारत अप्रशिक्षित भारतीय मूल्य, मानीटर प्रणाली, उच्च चरित्र, आत्मिक ज्ञान।

प्रस्तावना :

ऐतिहासिक कालखण्ड के अन्तर्गत प्राचीनकाल, बौद्धकाल तथा मध्यकाल जैसी तीन अवधि स्पष्ट है, जब कि अर्वाचीन कालखण्ड के अन्तर्गत स्वातंत्रय पूर्व ब्रिटिश काल तथा स्वातंत्रयोत्तर कालावधि को सम्मिलित किया जा रहा है। ऐतिहासिक कालखण्ड की तुलना में आधुनिक काल में ही औपचारिक अध्यापक शिक्षा का उन्मेष तथा विविध रूपांतरण दृष्टिगोचर हो रहा है।

*सहायक आचार्य, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

इन समस्त काल खण्डों में अध्यापक शिक्षा के स्वरूपों का वर्णन अग्रलिखित है–

प्राचीनकालीन अध्यापक शिक्षा :

2500 ई.पू. से 500 ई.पू. के काल खण्ड में यह माना जाता रहा है कि अध्यापक जन्मजात होते हैं, बनाये नहीं जाते। उपरोक्त कथन के अनुसार जिस व्यक्ति में आचरण के आधार पर अध्यापक के कर्तव्यों का लक्षण दृष्टिगोचर होता था, वही व्यक्ति अध्यापक माना जाता था। इस प्रकार अध्यापक का कार्य मात्र ज्ञान देना नहीं था अपितु छात्रों में आचरण व्यवहार के आधार पर आन्तरिक रूप में भी शिक्षित करना होता था। इस प्रकार अध्यापक विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास के प्रति सतत प्रयत्नशील रहता था।

प्राचीन काल में अध्यापक चुनने के लिए मानीटर प्रणाली भी प्रचलित थी। जो वरिष्ठ छात्र ज्ञानयुक्त होता था, वह अपने से कनिष्ठ विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। अर्थात् छात्रों द्वारा ही योग्य अध्यापक का चुनाव कर लिया जाता था। शास्त्रज्ञान के साथ-साथ उच्च चरित्र और आत्मिक ज्ञान वाला व्यक्ति ही अध्यापक बनने का अधिकारी होता था।

समय के साथ जाति प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ तो अध्यापन का कार्य एक जाति विशेष का कार्य बनता गया। अमः अध्यापन की गुणवत्ता का ह्रास प्रारम्भ हो गया जहाँ अध्यापक का चयन योग्यता न होकर जातिगत आधार हो गया।

बौद्धकालीन अध्यापक शिक्षा :

बौद्धकाल में बुद्ध के उपदेशों एवं विचारों को जनजागरण तक पहुँचाने के लिए योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। सर्वप्रथम औपचारिक रूप में धार्मिक शिक्षा के लिए ही शिक्षकीय प्रशिक्षण की व्यवस्था इस कालावधि में की गई। नैतिक एवं अनुशासन को शिक्षा का आधार माना गया। इस उदारवादी व्यवस्था में ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य वर्ग के लोगों को भी भिक्षु बनने के लिए योग्य माना जाने लगा। पब्बजा तथा उपसम्पदा जैसे संस्कारों के मध्यवर्ती काल में विद्याभ्यास सम्पूर्ण होने के बाद वो आचार्यों की देखरेख में अध्यापन हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती थी। संघों में वरिष्ठ और श्रेष्ठ छात्र अध्ययन-अध्यापन कार्य में आचार्यों की सहायता किया करते थे। इसी अग्रशिष्य प्रणाली को इस काल में औपचारिक अध्यापक शिक्षा के रूप में सर्वप्रथम स्वीकृति दी गई।

मध्यकाल में अध्यापक शिक्षा :

इस कालखण्ड को मुस्लिमकालीन शिक्षा व्यवस्था के रूप में देखा जाता है। इस काल में औपचारिक रूप से अध्यापक शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध नहीं किया गया था। मकतब में स्थानीय

शिक्षित तथा मदरसों के लिए उच्च शिक्षित अरब देशों से बुलाये गये मौलवियों की प्राय: नियुक्ति की जाती थी। इस काल में शिक्षा मूलत: धार्मिक स्वरूप में थी और व्यावहारिक शिक्षा में अधिक महत्व पवित्र कुरान के उपदेशों को दिया जाता था। अध्यापक शिक्षा के लिए समुचित प्रबन्ध लगभग नगण्य था।

ईसाई मिशनरी काल में अध्यापक शिक्षा :

भारत में सर्वप्रथम पुर्तगाली मिशनरियों ने शिक्षा का प्रसार कार्य शुरू किया था, परन्तु अध्यापक प्रशिक्षण की व्यवस्था सर्वप्रथम डेन मिशनरियों ने की। उन्होंने 1716 ई. में ट्रानणकोर में प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए नार्मल स्कूल स्थापित किया। वस्तुत: यह काल अध्यापक प्रशिक्षण तक ही सीमित था। डेन मिशनरियों ने 1793 ई. में सेरामपुर में दूसरा नार्मल स्कूल स्थापित किया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन काल में अध्यापक शिक्षा :

डेन मिशनरियों से प्रेरणा लेकर मुम्बई, मद्रास, कलकत्ता की शिक्षा समितियों ने अपने क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की। वर्ष 1854 में भारत में वुड का घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ। इसमें शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक और हाईस्कूल के शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु संस्थाएं स्थापित की गई तथा यहीं से भारत में अध्यापक शिक्षण का नया अध्याय शुरू हुआ। सर्वप्रथम 1856 ई. में मेरठ और उसके बाद 1857 ई. में बनारस में नार्मल स्कूल स्थापित किए गए।

ब्रिटिश शासन काल में अध्यापक शिक्षा :

वर्ष 1858 में भारत में सीधे ब्रिटिश सरकार का शासन स्थापित हुआ। 1859 में लार्ड स्टैनले ने वुड घोषणा पत्र के बाद भी अध्यापक प्रशिक्षण की व्यवस्था न होने पर खेद प्रकट करते हुए आदेश दिया कि भारत में अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाएं स्थापित की जाएं और उन्हें सहायता अनुदान दिया जाए। परिणामस्वरूप वर्ष 1881-82 तक भारत में 106 नार्मल स्कूल और 2 अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थापित हो चुके थे।

1882 ई. में भारतीय शिक्षा आयोग (हण्टर कमीशन) की नियुक्ति की गई। इस कमीशन ने प्राथमिक मिडिल और माध्यमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था करने की सिफारिश की। सरकारी प्रयास द्वारा 1900 ई. तक भारत में नार्मल स्कूलों की संख्या 133 हो गई। ट्रेनिंग स्कूलों की संख्या 50 हो गई और ट्रेनिंग कालेजों की संख्या बढ़कर 6 हो गई। ये लाहौर, मद्रास, फुटसारा, इलाहाबाद और राजमुंदरी में स्थापित थे।

1904 ई. में तत्कालीन गवर्नर जनरल एवं वायसराय लार्ड कर्जन ने अध्यापक प्रशिक्षण

 ISSN 0976-0849

संस्थाओं की स्थापना के साथ-साथ उनमें सुधार हेतु अनेक कार्यक्रम प्रस्तावित किए। 1917 ई. में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति मिशेल सैण्डलर की अध्यक्षता में की गयी। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग माध्यमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभाग खोलने की सिफारिश की और साथ ही स्वतंत्र रूप में प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना की सिफारिश की। 1929 ई. में हर्टोक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने मुख्यतः सेवारत प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए पुनर्बोधन पाठ्यक्रम का सुझाव दिया। यहां से सभी स्तरों की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। 1944 ई. में सार्जेन्ट योजना में अध्यापक शिक्षा के स्वरूप, प्रसार एवं उन्नयन की पूर्ण योजना प्रस्तुत की गई।

स्वतंत्र भारत में अध्यापक शिक्षा :

स्वतंत्रता के पश्चात् देश में शिक्षा के प्रसार के लिए पुनः प्रयत्न प्रारम्भ हुए। फलस्वरूप अध्यापकों की माँग बढ़ी। अध्यापकों की संख्या बढ़ाने के लिए अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना शुरू की गई साथ ही अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम राधाकृष्णन आयोग 1948-49 ई. ने सुझाव प्रस्तुत किया। इस आयोग ने सैद्धान्तिक ज्ञान के स्थान पर प्रायोगिक प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया। इस आयोग के सुझाव पर सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। प्रशिक्षण महाविद्यालयों की सं. बढ़कर 53 हो गई।

1952 ई. में मुदालियर कमीशन ने चार सुझाव दिये। पहला दो तरह की अध्यापक प्रशिक्षण संस्था– प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्था तथा माध्यमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्था होनी चाहिए। दूसरी इन संस्थाओं में पार्ट टाइम टीचर ट्रेनिंग की व्यवस्था की जाय तथा तीसरा प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए रिफ्रेशर कोर्स चलाए जाएं। चौथा अध्यापक शिक्षा के लिए शोध कार्य हो।

1961 ई. में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) की स्थापना की गई। इस परिषद् ने प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के स्तरमान को निर्धारित किया। इसके लिए पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार किया। इस परिषद् ने प्रारम्भ में चार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय स्थापित किए जिन्हें क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में बदल दिया। वर्तमान में इनकी सं. पाँच है। ये संस्थान अजमेर, भोपाल, मैसूर, भुवनेश्वर और शिलांग में स्थापित हैं। इसके अतिरिक्त तीन संस्थान यथा– राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान-नई दिल्ली, केन्द्रीय शैक्षिक तकनीकी संस्थान-नई दिल्ली एवं पं. सुन्दरलाल शर्मा केन्द्रीय व्यावसायिक शिक्षा संस्थान-भोपाल हैं। कालान्तर में 1963-64 ई. के मध्य में कई राज्यों ने राज्य शिक्षा संस्थान की स्थापना की।

1964 ई. में कोठारी कमीशन की नियुक्ति की गयी। इस कमीशन ने पत्राचार पाठ्यक्रम और अल्पकालीन अध्यापक शिक्षा सम्बन्धी शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार किया। उसके अतिरिक्त

सेवारत अप्रशिक्षित अध्यापकों के लिए ग्रीष्मकालीन संस्थाओं का सृजन भी किया। सभी राज्यों में अध्यापक शिक्षा के लिए सघन कॉलेज स्थापित किए जाए। सभी अध्यापक शिक्षा संस्थाओं में प्रसार सेवा विभाग स्थापित किए जाएं।

5 सितम्बर (शिक्षक दिवस) 1982 ई. को केन्द्र सरकार ने अध्यापकों के प्रशिक्षण एवं उनके उन्नयन हेतु राष्ट्रीय शिक्षक आयोग प्रथम एवं राष्ट्रीय शिक्षक आयोग द्वितीय का गठन किया। राष्ट्रीय शिक्षक आयोग प्रथम के अध्यक्ष डॉ. डी.पी. चट्टोपाध्याय थे। इन दोनों आयोगों ने अध्यापकों के प्रशिक्षण एवं उनके स्तर को ऊँचा उठाने के सम्बन्ध में अनेक सुझाव दिए। भविष्य में इन आयोगों के सुझाव पर सभी स्तरों पर सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

1986 ई. में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा हुई। इसमें अध्यापक शिक्षा में सुधार के लिए एक कार्य योजना (Plan of Action) को तैयार किया गया। इसके अन्तर्गत सभी राज्यों में एक-एक जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) की स्थापना का कार्य शुरू किया गया। कुछ अच्छे शिक्षक प्रशिक्षण कालेजों को शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों में समुन्नत करने का कार्य प्रारम्भ किया गया। इसके अतिरिक्त कुछ अच्छे स्तर के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों और विभागों को उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थानों में समुन्नत करने का कार्य शुरू किया गया।

दिसम्बर 1993 ई. में संसद में राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् (NCTE) एक्ट 1993 पास कर उसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया जो वर्तमान में अध्यापक शिक्षा की केन्द्रीय नियंत्रक संस्था है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में अध्यापक शिक्षा :

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के संरक्षण और शिक्षा मंत्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' के मार्गदर्शन में तैयार हुई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 आत्मनिर्भर भारत के निर्माण हेतु एक दूरदर्शी विजन अभिलेख है जिसमें भारतीय शिक्षा के भविष्य की दूरगामी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संभावनाएं है। (कुमार निरंजन 2020)

नयी पीढ़ी की रचना में अध्यापक शिक्षा महत्वपूर्ण है क्योंकि एक अध्यापक में बहुविषयक दृष्टिकोण और ज्ञान के साथ-साथ भारतीय मूल्यों, भाषाओं, ज्ञान, लोकाचार और परम्पराओं के प्रति जागरूकता होनी चाहिए। इस दिशा में अब तक किए गए प्रयास न तो अध्यापक शिक्षा तन्त्र में बड़े पैमाने पर व्यापत भ्रष्टाचार रोक पाए हैं और न ही गुणवत्ता के लिए निर्धारित बुनियादी मानक को लागू कर पाए हैं, जिससे अध्यापक शिक्षा की अखंडता, विश्वसनीयता, प्रभावकारिता और उच्चतर गुणवत्ता को बहाल किया जा सके। इस दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा वर्ष 2030 तक, केवल शैक्षिक रूप से सुदृढ़, बहुविषयक और एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम ही कार्यान्वित होंगे। इसके साथ ही साथ वर्ष 2030 तक सभी एकल शिक्षक शिक्षा के संस्थानों को बहुविषयक

 ISSN 0976-0849

संस्थानों के रूप में बदलने की आवश्यकता होगी क्योंकि उन्हें भी 4–वर्षीय एकीकृत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों को संचालित करना होगा। बी.एड्. कार्यक्रमों के लिए उत्कृष्ट उम्मीदवारों को आकर्षित करने के उद्देश्य से मेधावी विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों की स्थापना की जायेगी।

अध्यापक शिक्षा के लिए एक समान मानकों को बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय परीक्षण एजेंसी द्वारा विषय एवं योग्यता परीक्षण कराने एवं शिक्षा विभाग में संकाय सदस्यों की प्रोफाइल में विविधता होना एक आवश्यक लक्ष्य होगा जिससे अध्यापकों की बहुविषयी शिक्षा को और उनके अवधारणात्मक विकास को मजबूती प्रदान की जा सके। इन संकल्पनाओं के साथ यह आशय प्रतीत हो रहा है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित होगी।

निष्कर्ष :

एक अध्यापक का महत्वपूर्ण आधार उसकी शिक्षात्मक तथा प्रशिक्षणात्मक पृष्ठभूमि होती है। एक अध्यापक नयी पीढ़ी का भविष्य निर्माता होता है, अब तक हमने प्राचीन काल से लेकर आज तक अध्यापक शिक्षा के विकास के लिए विभिन्न समितियों, आयोगों के सुझाव का पालन किये किंतु आज भी अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में वह गुणवत्ता विकसित नहीं कर पाए जो वास्तविक रूप में हमारे प्राचीन काल से लेकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तक के उद्देश्य हैं। इसका मुख्य कारण अध्यापक का नैतिक आधार है, जब तक अध्यापक अपने नैतिक जिम्मेदारियों को नहीं समझेंगे तब तक अध्यापक शिक्षा का विकास मात्र बाह्य पटल पर ही दृष्टिगोचर होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन ई पी) 2020 ई., मानव संसाधन विकास शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली
2. लाल बिहारी, रमन, भारतीय शिक्षा का इतिहास, न्यू हाउस पब्लिशिंग कम्पनी, कानपुर, 2020 ई.
3. कुमार, नरेश, अध्यापक शिक्षा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1997 ई.
4. भट्टाचार्य, जी.सी., अध्यापक शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, उत्तर प्रदेश, 1999 ई.
5. शर्मा, कुमार अमितेश, पाण्डेय सीमा, अध्यापक शिक्षा के मूल तत्व, ठाकुर पब्लिकेशन, लखनऊ, 2001 ई.

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 85-89

गुप्तयुगीन भारत में उद्योग एवं व्यापार

डॉ. पद्मजा सिंह*

सारांशः अपनी संस्कृति के उषाकाल (वैदिक काल) से ही भारत कृषि प्रधान देश होने के साथ-साथ एक व्यापार उन्मुख देश भी रहा है। यहाँ मानव ने अपनी प्रगतिशिल विकास यात्रा के अलग-अलग सोपानों पर व्यापार-वाणिज्य तथा उद्योग धन्धों को विकास का एक नया क्षितिज प्रदान किया। सैंधव काल में तो भारत का पाश्चात्य सभ्यताओं (मेसोपोटामियाँ एवं मिस्र) से व्यापारिक सम्बन्ध पुरातात्विक साक्ष्यों से प्रमाणित हैं। मौर्य कालीन व्यापार-वाणिज्य की गतिविधियाँ हमें कौटिलय के अर्थशास्त्र एवं अन्य समकालीन साहित्यों से विदित होती है। गुप्त काल तक आते-आते भारत में विविध उद्योगों एवं व्यापार-वाणिज्य का अभूतपूर्व विकास हो चुका था। गुप्त सम्राटों द्वारा वैविध्यता से परिपूर्ण प्रभूत मात्रा में स्वर्ण मुद्राओं का निर्गतन कराना तद्युगीन अर्थव्यवस्था के अत्यन्त सुदृढ़ होने का प्रमाण है। तत्कालीन साहित्यों से भी विविध प्रकार के उद्योगों के समुन्नत अवस्था में होने का भान होता है। प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से गुप्त युगीन भारत में उद्योग और व्यापार को सम्यक रूप से विवेचित करना ही इस शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

बीजशब्दः उद्योग बन्धे, वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, आर्थिक विकास, आभूषण, धातुकला, धातु विज्ञान आंतरिक व्यापार, बाह्य व्यापार, पूंजी, मसाले।

मानव जीवन के विकास एवं उत्कर्ष की यात्रा में धर्म और अर्थ का बराबर महत्त्व रहा है। मानव समूह का समाज और सभ्यता के निर्माण में जितना महत्त्व धर्म-अध्यात्म का दिखता है उतना ही महत्त्व आर्थिक गतिविधियों का। प्रकृतिमूलक मानव ने खाद्य-संग्राहक की अवस्था से खाद्यान्नोत्पादक अवस्था तक पहुँचने के साथ ही अर्थ का महत्त्व समझने लगा था। यद्यपि विकास-यात्रा के एक लम्बे युग तक मनुष्य समाज की आर्थिक गतिविधियाँ वस्तु विनिमय और उसके लिए निर्मित बाजारों तक सीमित रहीं, किन्तु जैसे-जैसे सभ्यता-संस्कृतियों का भौगोलिक विस्तार होता गया एवं आपस में उनके समाजार्थिक सम्बन्ध विकसित होते गये, धीरे-धीरे व्यापार और उद्योगों का विकास होता

*असिस्टेण्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

गया। प्रारम्भिक युग से लेकर उत्तरवैदिक युग तक आर्थिक जीवन का मूल आधार कृषि एवं व्यापार बन चुका था। भारत के जीवन-दर्शन में अर्थ का महत्त्व पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में देखा जा सकता है।

गुप्त साम्राज्य के उदय से बहुत पहले ही भारत में कृषि, उद्योग एवं व्यापार विकसित हो चुका था। याज्ञवल्क्य[1], नारद[2], बृहस्पति[3] एवं मनु[4] जैसे विचारकों ने अर्थशास्त्र को धर्मशास्त्र का अभिन्न हिस्सा माना है। महाभारत का एक पर्व ही उद्योग पर्व है। इस ग्रन्थ में अर्थ को उच्चतम धर्म मानकर इसे त्रिवर्ग का प्रधान आधारतत्त्व माना गया है।[5] कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ का नाम ही अर्थशास्त्र रखा है और अर्थ को जीवन का महत्त्वपूर्ण आधार माना है।[6]

भारत के क्रमिक आर्थिक विकास के आधार कृषि, उद्योग एवं व्यापार का उत्तरोत्तर विकास गुप्तयुग में भी हुआ। गुप्त सम्राटों द्वारा सम्पूर्ण गंगाघाटी, मालवा, गुजरात एवं काठियावाड़ तक के विस्तृत और सर्वाधिक जनसंख्या वाले इस क्षेत्र को एक शक्तिशाली एवं सुसंगठित शासन ने उद्योग एवं व्यापार को एक नयी गति प्रदान की। इस युग के ऐतिहासिक साक्ष्य इस बात के प्रमाण हैं कि गुप्तयुग में उद्योग के लिए कच्चे माल, कारीगरों के हुनर और उद्यम की प्रचुरता थी। इस काल के साहित्यिक साक्ष्यों में विविध प्रकार के कपड़ों का उल्लेख मिलता है जिनमें रुई, रेशम, ऊन क्षौम और वृक्षों की छाल शामिल हैं।[7] गुप्तयुगीन बुनकरों ने अपने कौशल, योग्यता और लगन से तन्तुवाय अर्थात् वस्त्र उद्योग को समृद्ध किया। रघुवंश में उल्लेख मिलता है कि तन्तुवाय वस्त्र बनाने में इतने निपुण थे कि उनके कपड़े फूँक मात्र से उड़ जाते थे।[8] बाण के 'हर्षचरित' में इस बात का उल्लेख मिलता है, राजकुमारी राज्यश्री के विवाह के अवसर पर क्षौम, बदर अर्थात् सूती, दुकूल अर्थात् छाल का रेशम, लालातन्तु अर्थात् मकड़ी का रेशम, अंशुक अर्थात् मलमल, नेत्र अर्थात् धारीदार रेशम के कपड़े प्रयोग किये गये थे।[9] 'हर्षचरित' में चमकीले रंगीन कपड़े के लिए पुलकबन्द और फूलदार रेशम कपड़ों के लिए पुष्पपट्ट का उल्लेख मिलता है। संन्यासियों के लिए भी वल्कल वस्त्रों का उल्लेख है।[10] हर्षचरित में ही यह उल्लेख मिलता है कि पुण्ड्र प्रदेश का क्षौम कपड़ा इतना मशहूर था कि बाणभट्ट के गाँव तक इसका प्रयोग होता था। कामरूप के राजा द्वारा हर्ष के भेजे गये उपहारों में वस्त्र का जो उल्लेख मिलता है वह विकसित वस्त्र उद्योग का ही प्रमाण है। उल्लेखनीय है कि इस उपहार की सूची में क्षीम, जातीपट्टिका अर्थात् बुना हुआ रेशम और चित्रयुक्त कपड़े अर्थात् चित्रपट्ट के बण्डल शामिल थे।[11] शान्तिदेव के शिक्षा समुच्चय में बनारस के प्रतिष्ठित रेशमी कपड़ों का उल्लेख हुआ है।[12]

अमरकोश में खुरदरी और महीन किस्म के कपड़ों के लिए विरंजित और अवरंजित रेशम आदि के लिए अलग-अलग शब्द प्रयोग किये गये हैं।[13] अजन्ता के भित्तिचित्र भी विकसित वस्त्र उद्योग की ओर संकेत करते हैं।[14] उपर्युक्त गुप्तोत्तरयुगीन प्रमाण इस बात के सूचक हैं कि गुप्तयुग में वस्त्र उद्योग का काफी विकास हो चुका था जिसका प्रभाव छठवीं-सातवीं शताब्दी ईस्वी में भी

दिखाई देता है।

धातु उद्योग की दृष्टि से गुप्तकाल अपने युग तक के भारतीय इतिहास का स्वर्णिम युग है। साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्य इस बात के प्रमाण हैं कि धातुकला इस युग की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। मेहरौली का लौह-स्तम्भ आज भी अपनी विशिष्ट गुणवत्ता के कारण जाना जाता है। खुले आकाश के नीचे खुले वातावरण में धूप, वर्षा इत्यादि विविध मौसम का सामना करते हुए बिना जंग लगे यह लौह स्तम्भ गुप्तयुगीन धातुविज्ञान का अद्वितीय प्रमाण है। गुप्त सम्राटों की स्वर्ण, रजत व ताम्र मुद्राएँ उनके धातुविज्ञान और उसके विकास का प्रमाण है। कालिदास के ग्रन्थों में स्वर्ण, स्वर्णभूलि अर्थात् कनकसिकता, चाँदी, ताम्र, अयस अर्थात् लोहा, वज अर्थात् हीरा, पुष्पराग अर्थात् पुखराज, महानील अथवा इन्द्रनील अर्थात् नीलम, मरकत अर्थात् पन्ना, स्फटिक इत्यादि धातु एवं रत्नों का उल्लेख मिलता है। वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में बाइस मणियों का उल्लेख किया है। श्वानचांग के यात्रा-विवरण में स्वर्णकार और उसके द्वारा स्वर्णाभूषणों में रत्नों के उपयोग का उल्लेख है।[15]

गुप्तकाल में धातुओं की आपूर्ति कहाँ से होती थी, इस बारे में स्पष्ट प्रमाणों का अभाव है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस युग में भी पूर्वकाल की तरह ताँबा और स्वर्ण मुद्राएँ दूसरे देशों से मँगाया जाता था। यद्यपि कि ह्वेनसांग के अनुसार, सोना और चाँदी भारत में भी उपलब्ध था। उसके अनुसार उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के व्यास-सिन्ध और सतलज के बीच के क्षेत्रों में सोना चाँदी के साथ ताँबा और लोहा भी मिलता था। नेपाल में भी ताँबा मिलने का उल्लेख है।[16]

गुप्तयुग में धातु उद्योग के विकास का प्रमुख आधार तकनीकी विज्ञान का प्रयोग था। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में गुप्तयुगीन धातु विज्ञान का उल्लेख किया है।[17] वात्स्यायन के कामसूत्र में चौंसठ ललित कलाओं का उल्लेख है। इन चौंसठ ललित कलाओं में रूप-रत्न परीक्षा, धातुवाद और मणिराग-कारज्ञानम का उल्लेख किया गया है। यू.एन. घोषाल ने मणिराग कारज्ञानम का अर्थ कीमती पत्थरों की परख धातुओं को पिघलाना और जवाहरात की क्रियाविधि माना है। ह्वेनसांग ने भी अपने यात्रा विवरण में उल्लेख किया है कि उस समय भारत में बड़े पैमाने पर पीतल तैयार किया जाता था। वह अपने यात्रा विवरण में लिखता है कि राजा पूर्णवर्मन ने ताँबे की एक विशाल प्रतिमा बनवायी थी तथा राजा शीलादित्य अर्थात् हर्ष द्वारा नालन्दा में पीतल का एक मन्दिर बनवाया जा रहा था।[18] उल्लेखनीय है कि भागलपुर जिले के सुल्तानगंज से लगभग 7½ फीट ऊँची बुद्ध की धातु प्रतिमा भी इसी काल की है, जो बर्मिंघम संग्रहालय में सुरक्षित है। पुरानी दिल्ली के मेहरौली में स्थित लोह-स्तम्भ गुप्तयुगीन धातुकला का उद्वितीय उदाहरण है।

गुप्तयुग में आभूषण बनाने की कला पूर्व की अपेक्षा अधिक विकसित हो चुकी थी। वृहत्संहिता में एक स्थान पर बाइस प्रकार के रत्नों का उल्लेख मिलता है, इनमें हीरा, नीलम, पुखराज, पन्ना, माणिक, नीलमणि, मोती चन्द्रमणि वैदूर्य, माणिक गोमेद, शंख जैसे रत्न एवं पत्थर

 ISSN 0976-0849

सम्मिलित है।[19] गुप्तयुगी साहित्यिक ग्रन्थों में रत्नों के अनेक प्रयोजन का उल्लेख मिलता है। सोने के आभूषणों एवं मुहरों में रत्न जड़े जाते थे। पोशाकों की सजावट, चौकियों, गदद्देदार पलंग, आईना, लैम्प इत्यादि की सजावट के लिए रत्नों के उपयोग का उल्लेख मिलता है। मंगलकारी चिह्नों के रूप में भी रत्न पहने जाते थे।[20] मृच्छकटिक नाटक में भी आभूषणकारों का उल्लेख है। गुप्तयुगीन औद्योगिक विकास में मूर्तियों के कारीगरों का भी उल्लेखनीय योगदान दिखाई देता है। बृहत्संहिता एवं अमरकोश में मोतियों के मालाओं की अलग-अलग किस्मों की सूची मिलती है।[21]

गुप्तयुगीन सम्राटों के वैभवपूर्ण साम्राज्य में विकसित उद्योग एवं व्यापार से यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि यह युग भारत के अन्तर्देशीय एवं वैदेशिक व्यापार को भी अनवरत प्रोत्साहित कर रहा था। भारत के वैदेशिक व्यापार की दृष्टि से भी गुप्तयुग सर्वोत्तम विकास का युग है। गुप्तयुगीन साहित्यिक साक्ष्यों में विदेशों से आयात और निर्यात के पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा, चीन, सुवर्णभूमि ऐसे प्रमुख पूर्वी देशों से गुप्तयुगीन साम्राज्य में वस्त्र, अश्व मँगाये जाते थे। चीन से चीनांशुक नामक कौशेय वस्त्र भारत के विभिन्न नगरों में लाये जाते थे।[22] कालिदास के रघुवंश में कम्बोज से रघु को घोड़ों का उपहार मिलने का उल्लेख है। पश्चिमी देशों में पारसिक और यवन जैसे देशों से भी घोड़ों के भारत में आने का उल्लेख मिलता है। उल्लेखनीय है कि इन देशों को अश्व साधन कहा गया है।[24] पूर्वी द्वीपों से इलायची, मिर्च मसाले इत्यादि का आयात किया जाता था।[25] 'शाकुन्तलम्' में उल्लेख मिलता है कि हस्तिनापुर का एक प्रतिष्ठित सार्थवाह समुद्री तूफान के कारण अपने माल-भरे पोत के साथ समुद्र में समा गया था। भारत के पश्चिमी बन्दरगाहों से हाथीदाँत, गोमेद, लाल मलमल, मोटा वस्त्र, रेशम, सूत इत्यादि वस्तुएँ विदेशों को भेजी जाती थीं। गुप्तयुग तक आते-आते आर्थिक गतिविधियों से सम्बन्धित विविध प्रकार के कानून बनाये जा चुके थे और कुछ बनाये जा रहे थे। इस सन्दर्भ में मजदूरी सम्बन्धी कानून श्रम एवं पूँजी के पारस्पारिक सम्बन्धों से सम्बन्धित कानून का विभिन्न स्मृतियों में उल्लेख गुप्तयुगीन आर्थिक विकास के प्रमाण हैं।[26]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षस्वरूप यह कहा जा सकता है कि गुप्तयुग प्राचीन भारत के आर्थिक विकास की दृष्टि से अत्यन्त विकसित युग है। साम्राज्य की आर्थिक समृद्धि की सूचक गुप्त सम्राटों की स्वर्ण एवं रजत मुद्राएँ है। उच्च जीवनस्तर तथा जीवन की विलासिता एवं वैभवपूर्ण सम्राटों का जीवन एक तरफ जहाँ सम्राट एवं राज्य की आर्थिक सम्पन्नता का सूचक है वहीं दूसरी तरु साहित्यिक कृतियों में उच्च वर्ग भी सम्पन्न दिखाई देता है। यह कहना असंगत न होगा कि गुप्तयुग न केवल साहित्यिक, सांस्कृतिक पुनर्जागरण का स्वर्णयुग है, अपितु यह भारत के तत्कालीन आर्थिक विकास का भी स्वर्णयुग है।

सन्दर्भः

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.21, अनु. पं. श्रीराम शर्मा, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1974 ई., पृष्ठ 239
स्मृत्योविरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः। अर्थशास्त्रास्तु बलवर्धम् शास्त्रमिति स्थितिः।

2. नारद स्मृति, 1.1.39, पं. हंसाचार्य, चौखम्भा संस्कृत सरीज, वाराणसी, 1973 ई., पृष्ठ 191
यत्र विप्रतिपत्तिः स्यादधर्मशास्त्रार्थशास्त्रयोः। अर्थशास्त्रोक्तमुत्सृज्य धर्मशास्त्रोक्तमाचरेत।।
3. बृहस्पति सूक्त, 6.7-12, अनु. पं. श्रीराम शर्मा, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1974 ई., पृष्ठ 172
4. मनुस्मृति, 7.43, संपा. गौरीनन्दन, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1983 ई., पृष्ठ 131
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीति च शाश्वतीम्। आन्वीक्षिकी चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः।।
5. महाभारत, उद्योग पर्व 72.23-24, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1999 ई., पृष्ठ 339
6. अर्थशास्त्र 1.70.10-11, संपा. वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभव, वाराणसी, 2000 ई., पृष्ठ 91
संस्थाया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम्। यस्मिन्नर्थे विरुध्येत धर्मेणार्थं विनिष्चयेत्।।
7. अमरकोश, 6, 110-111, संपा. हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2001 ई., पृष्ठ 392
8. रघुवंश, 16.43, अनु. आचार्य धारादत्त, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1959 ई., पृष्ठ 397
9. हर्षचरित, प्रथम उच्छवास, संपा. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1964 ई., पृष्ठ 92
10. तत्रैव, पृष्ठ 106
11. तत्रैव, पृष्ठ 109
12. शिक्षा समुच्चय, पृष्ठ 208
13. अमरकोश 2.6, तदैव, पृष्ठ 115-116
14. सरकार, डी.सी., इण्डियन एपीग्राफी, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1930 ई., पृष्ठ 162-169
15. वाटर्स, 1, पृष्ठ 178, 225, 239 इत्यादि।
16. तत्रैव, पृष्ठ 178, 225 239, 286, 501 इत्यादि।
17. कामसूत्र, 1, 3, 16, संपा. सतीश गोयल, डायमंड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2015 ई., पृष्ठ 127
18. द्रष्टव्य, मजूमदार, आर.सी., श्रेण्ययुग, प्रथम संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1984 ई., पृष्ठ 659
19. बृहत्संहिता, 80, 4-5
20. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक-5, संपा. डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1981 ई., पृष्ठ 49, रघुवंश, 16, 43, तदैव दशकुमारचरित, पृ. 1; संपा. रामचन्द्र काले, शारदा ग्रन्थमाला, बम्बई, 1909 ई., पृष्ठ 391; हर्षचरित 4, तत्रैव, पृष्ठ 239
21. वृहत्संहिता 81, 31-36, अमरकोश 2, 6, तत्रैव, पृष्ठ 105-106
22. कुमारसम्भव, 7.3, तत्रैव, पृष्ठ 129, शाकुन्तलम् 1.30, संपा. विराज, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004 ई., पृष्ठ 39
23. रघुवंश, 4, 69-70, तत्रैव, पृष्ठ 311
24. रघुवंश, 4. 62; तत्रैव, पृष्ठ 192, मालविकाग्निमित्र, संपा. विराज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2003, पृष्ठ 79, 102
25. रघुवंश, 6.57, तत्रैव पृष्ठ 232
26. नारदस्मृति, श्लोक 5-7; 1.98; तत्रैव, बृहस्पति स्मृति 1, 15.16-18; 15-16; 3-7; 9-11; तत्रैव, कात्यायन स्मृति 657-60

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 90-96

बौद्ध स्थापत्य कला और बोरोबुदूर मंदिर : एक अध्ययन

प्रो. (डॉ.) चन्द्र भूषण मिश्र*

सारांशः बोरोबुदूर स्तूप जोग जकार्ता से 20 मील उत्तर की ओर प्रामा और इला नदियों के संगम पर है। यह विश्व के समस्त कला की उत्कृष्ट कृतियों में से एक है। यह उत्तम कृति 750 ई. से 850 ई. में कला प्रेमी शैलेन्द्र राजाओं के संरक्षण में तैयार हुई। इसके द्वार और परिक्रमा पथ शिला फलकों से निर्मित एवं मूर्तियों द्वारा सुसज्जित हैं। यह विश्व प्रसिद्ध स्तूप एक पहाड़ी को काटकर बनाया गया है। इसकी खोज सन् 1885 ई. में सर टामस रैफलन ने की थी। एक समकोण चतुर्भुज मेढ़ी पर पाँच दीवारों से घिरी सीढ़ियाँ क्रमशः दर्शन के लिए ऊपर ले जाती हैं। ऊपर पहुँचने पर तीन गोल पंक्तियों में चबूतरे बने हैं, जिनपर 72 स्तूप हैं। सबसे ऊपर मध्य भाग में एक स्तूप है जिसकी मेढ़ी छिपी हुई है। यह स्तूप नौवीं मंजिल पर बनाया गया है। स्थापत्य कला के दृष्टिकोण से यह किसी परिपाटी के अन्तर्गत नहीं बनाया गया और कुछ विद्वानों का मानना है कि वास्तव में यह एक समय में नहीं बना है।

बीजशब्दः दक्षिण-पूर्व एशिया, भारतीयता, देवमूर्तियाँ, सुवर्णद्वीप, बोरोबुदूर, स्थापत्य कला, मूर्तिकला, मंदिर।

दक्षिण पूर्व एशिया के देश, जो प्राचीन भारतीय साहित्य विशेषकर जातकों में सुवर्ण भूमि एवं सुवर्ण द्वीप के रूप में वर्णित हैं, ईसा से सदियों पूर्व से प्रमुखतया व्यापार के क्रम में भारतीयों के सम्पर्क में रहे।[1] इस पृष्ठभूमि में ये देश भारतीय व्यापारियों के व्यापार स्थल तो बने ही बाद में सदियों तक भारतीय संस्कृति के प्रमुख केन्द्र भी बन गए। सुवर्ण भूमि के अतिरिक्त सुवर्ण द्वीप के देश भी ईसा की प्रथम शताब्दी तक भारतीय उपनिवेश बनने लगे थे। भारतीयों ने यहाँ अपनी व्यापारिक बस्तियाँ बना ली थीं और उनकी संस्कृति ने यहाँ के जन जीवन पर अपना प्रभाव डालना

*प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा (सम विश्वविद्यालय) (अधिनस्थ संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)

प्रारंभ कर दिया था। फलस्वरूप भारतीय सभ्यता संस्कृति की छाप इन देशों पर पड़नी शुरू हो गई थी। कालक्रम में यहाँ के भारतीय मूल के शासकों के संरक्षण में भारतीय धर्म-संस्कृति, कला एवं साहित्य का यहाँ अपूर्व विकास हुआ। यहाँ अनेक विशाल मंदिरों और चैत्यों का निर्माण हुआ।

सुवर्ण द्वीप के देशों में जावा (यवद्वीप) अभी तक अपनी पुरातन भारतीय संस्कृति के अवशेषों को संजोये हुए है। यहाँ की कलाकृतियाँ-मठ, मंदिर, मूर्तियाँ आदि स्पष्टतया इस तथ्य के साक्ष्य हैं कि यहाँ के लोगों को भारतीयों ने सभ्यता-संस्कृति से अवगत कराया। जहाँ तक जावा के स्थापत्य का प्रश्न है- स्पष्ट परिलक्षित है कि भारतीयों की कला से प्रभावित स्थापत्य का सुंदरम रूप आज भी हमें यहाँ देखने को मिलता है जो भारतीय धर्म से प्रभावित है। भारतीय जावानी स्थापत्य की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि कलाकारों ने अपनी रचना की पृष्ठभूमि में धर्म को भी महत्व दिया था। डॉ. आर.सी. मजुमदार की दृष्टि में भारतीय न केवल अपनी सामाजिक परम्पराओं के साथ यहाँ आए अपितु भारत की अति विकसित कलात्मक परम्पराओं विशेषकर मूर्तिकला और स्थापत्य कला के सुन्दरतम स्वरूप को साथ लेते आए।[2] फलस्वरूप भारतीयों के सहयोग से जावा आदि देशों में जिन कृतियों का निर्माण हुआ उन पर भारतीय धर्म और दर्शन का प्रभाव दिखता है। दूसरे शब्दों में ये भारतीय कला के प्रतीकात्मक रूप प्रतीत होते है।

जावा के मंदिरों में दियेंग मंदिर, प्रमबनन घाटी के बौद्ध मंदिर, चंडि मेन्दुत और केडु के बौद्ध मंदिरों के अतिरिक्त "बोरोबुदूर" का अपना विशेष कलात्मक और धार्मिक महत्व है। अंग्रेजी में इसे BARABUDUR, BOROBUDUR, BURUBUDUR और BOROBADO आदि कई रूपों में ध्वनित किया गया है। मि. रैफल्स के अनुसार यह शब्द स्थान विशेष को इंगित करता है जहाँ यह मंदिर बना।

प्रमबनन घाटी का यह एक प्रमुख क्षेत्र हैं जो मध्य जावा की कला एवं बौद्ध मंदिरों के समूह का प्रसिद्ध केन्द्र है। इस क्षेत्र के प्रमुख मंदिर हैं- चंडि कलसन, चंडि सारि और चंडि सेवु। प्रमबनन घाटी से दक्षिण पूर्व केडू है। इस समतल क्षेत्र में अनेक अद्‌भूत हिन्दू और बौद्ध मंदिर हैं। इनमें से चंडि मेन्दुत और चंडि-पवान भारतीय जावानी कला की सुन्दरतम रचनाएँ है। किन्तु मेन्दुत और पवान से सीधे आगे 1913 गज की दूरी पर एक पहाड़ की चोटी पर निर्मित 'बोरोबुदूर' का मंदिर स्थापत्य का उद्‌भूत सुन्दर नूमना है।[3] प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से यह स्थल जितना ही सुरम्भ और मनोरम है, वास्तुकला में यहाँ उससे भी आगे बढ़कर अपना चमत्कार प्रदर्शित किया है। निश्चय ही निर्माण स्थल का चयन कलाकार की कला-प्रियता का परिचायक है जिसने भारतीय जावानी कला के इस जीवन्त रूप को स्थायित्व प्रदान कर जावा की सभ्यता को उद्‌घोषित किया है।

केडु में बोरोबुदूर का यह मंदिर एक पहाड़ी को काटकर बनाया गया है। जैसा इसका नाम रहस्यमय है वैसा ही यह मंदिर भी कला का एक रहस्यमव उदाहरण है।[4] पालमुस ने इसे 'गुप्त

 ISSN 0976-0849

विहार' कहा है। यह महाचैत्य (मंदिर) जिसे सर टामस रैफल ने 1885 ई. में खोजा था, नौ चबूतरों या चक्करों से मिलकर बना है। इसमें प्रत्येक चबूतरा अपने से नीचे वाले से आकृति में छोटा और भीतर की ओर सिमटा हुआ है। एक समकोण चतुर्भुज मेढी पर पाँच दिवारों से घिरी वीथियाँ क्रमशः दर्शक को ऊपर ले जाती है। ऊपर पहुँचने पर तीन गोल पंक्तियों में चबूतरे बने हैं जिनपर 72 स्तूप हैं। नौ चबूतरों में सबसे निचले छः सीधी रेखा के कोणों वाले हैं। वे गोलाकार न होकर समकोण चतुर्भुज के रूप में है। ऊपर के तीन चबूतरे गोलाकार हैं। सबसे निचले चबूतरे की पूरी लम्बाई 131 गज (लगभग 400 फीट) है और ऊपर वाले की लम्बाई 30 गज (90 फीट) है। नीचे के पाँच चक्कर भीतर की ओर से एक दीवार से इस तरह घिरे हुए है कि दो चक्करों के बीच में एक गलियारा सा बन गया है। सबसे ऊपर के तीन चबूतरे स्तूपों से घिरे हैं और इन स्तूपों में छिद्रवाली छत के नीचे बुद्ध की एक मूर्ति बनी हुई है। नौवीं चक्करदार चबूतरों से सीढ़ियों का एक क्रम शुरू होता है जो अतिसुसज्जित एवं अलंकृत मुख्य स्तूप तक जाता है। चबूतरों की दीवारों पर विविध प्रकार की रूपावलियाँ अंकित है। इनके बीच में गवाक्ष बने हुए हैं। प्रत्येक गवाक्ष में ध्यानी बुद्ध की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित हैं। सबसे नीचे दीवारों से घिरी विथियों में 'ललितविस्तर', 'दिव्यावदान', आर्यसूर की जातक माला तथा गण्डव्यूह से उद्धृत बुद्ध की जीवनी पत्थरों पर उत्कीर्ण है। इस प्रकार का चित्रण लोगों के हृदय में बौद्ध धर्म के प्रति आस्था का प्रतीक है। बोरोबुदूर के सम्पूर्ण महाचैत्य में 432 मूर्तियाँ है। स्तूप बनाने वाले कलाकारों ने ध्यानी बुद्धों की मूर्तियों को स्थापित करते हुए यह ध्यान रखा कि अक्षोभ्य की मूर्तियाँ पूर्व की ओर गवाक्षों में हो और रत्न सम्भव की मूर्तियाँ दक्षिण की ओर गवाक्षों में हो, अमिताभ के पज्चिम की ओर और अमोघसिद्धि की मूर्तियाँ उत्तर की ओर गवाक्षों में स्थित हों। पाँचवें चक्करदार चबूतरे के गवाक्षों में स्थापित मूर्तियाँ वैरोचन की हैं। चबूतरों की दीवारों पर जो रूपावलियाँ है वे भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं किन्तु ये सभी मूर्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ऊपर के तीन मंजिलों के चबूतरे नीचे की छः मंजिले चबूतरों से स्थापत्य की दृष्टि से भिन्न है। ऊपर गोल मेढ़ी पर तीन पंक्तियों में क्रमशः 32, 24 और 16 स्तूप बने हुए हैं। प्रत्येक स्तूप में भी ध्यानी बुद्ध की मूर्तियाँ हैं जो संभवतः वज्रसत्व की हैं। ऊपर के तीन मंजिलों की अपेक्षा नीचे की छः मंजिले अधिक अलंकृत हैं, सौंदर्यपूर्ण हैं। नीचे के पाँच मंजिले में जो गलियारे हैं वे प्रायः साढ़े छः फीट चौड़े और आठ फीट से साढ़े बारह फीट तक ऊँचे हैं। इनमें बनी रूपावलियाँ मूलतः बुद्ध के जीवन से संबंधित हैं और पत्थरों पर उत्कीर्ण हैं। बुद्ध के अतिरिक्त नाग, किन्नर, यक्ष, राक्षस, कालमकर, कल्पवृक्ष, पारिजात, हंस तथा अन्य पशु-पक्षी अंकित है जिन्हें बुद्ध के जीवन से संबद्ध कर चित्रित किया गया है। गलियारों के दोनों पार्श्वों में ऊपर की मंजिल में जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इनके ऊपर सुन्दर मेहराब बने हुये हैं। मेहराबों के बीच में कीर्त्तिमुख का चित्रण है जिनसे फूल आबद्ध है। द्वारों के ऊपर मूर्ति-गवाक्षों की तरह मूर्ति शिखर बने हुए हैं। द्वारों को बहुत अधिक कलात्मक ढंग से बनाकर अलंकृत किया गया है। स्थापत्य की दृष्टि से ये

अद्‌भूत हैं। द्वारों को इस ढंग से निर्मित किया गया है कि उनमें से किसी एक से भी सभी द्वारों तथा सीढ़ियों का सुन्दर दृश्य देखा जा सकता है। इनमें वर्षा के जल के निस्सरण के लिए मार्ग बने हुए हैं।

मंदिर के विभिन्न मंजिलों एवं स्तूपों को बुद्ध की जिन मूर्तियों से अलंकृत किया गया है, उनमें से अधिकांश बुद्ध के दैनिक जीवन के चित्र हैं अथवा उनके पूर्व जीवन के कथानक हैं। कुछ मूर्तियों के नीचे लेख भी है। सबसे निचले गलियारे की ऊपरी पंक्ति में बौद्ध ग्रंथ ललितविस्तर के अनुसार बुद्ध का जीवन अंकित है। कहीं-कहीं यह चित्रण पुनः दिव्यावदान, आर्यसूर की जातकमाला तथा गण्डव्यूह से उद्धृत है। ये सभी चित्रण बुद्ध के सारनाथ में धर्मचक्र प्रवर्त्तन तक का वृत्तांत बतलाती है। इनकी कला का स्रोत भारत ही था पर स्थानीय कलाकारों ने भी इनके निर्माण में अपनी बुद्धि और कुशलता का परिचय दिया। गैलरियो के अलंकरण के साथ इनमें सुन्दर मूर्तियों की एक क्रमबद्ध शृंखला का स्थापन बोरोबुदूर की विशिष्टता है।[5] इन मूर्तियों की संख्या लगभग पंद्रह सौ है। इन्हें और इनके भावों को बौद्ध साहित्य के अध्ययन के उपरांत ही समझा जा सकता है।[6] जहाँ तक मूर्तिकला की श्रेष्ठता का प्रश्न है कलाकार ने अपनी कला की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया है जो अकल्पनीय है।

यह स्पष्ट है कि बोरोबुदूर का यह महान स्तूप मूलरूप से बौद्ध धर्म और उसके दर्शन की पृष्ठभूमि में बना। इसके निर्माण की तिथि लगभग 8वीं शताब्दी ई. का अंतिम भाग निर्धारित की जाती है।[7] डॉ. स्टूटरहाइम की दृष्टि में बोरोबुदूर स्तूप की नौ मंजिले ध्यान की विभिन्न स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। दार्शनिक पृष्ठभूमि में उन्होंने बोरोबुदूर को 'उच्च विहार' या 'उच्च आदर्शों का विहार' माना है।[8] वास्तव में नीचे का भाग मंदिर के आकार का है और ऊपरी भाग बौद्ध स्तूप है। यह भी कहा जाता है कि इन स्तूपों का निर्माण 'महापरिनिव्वाणसुत्त' और दिव्यावदान के अनुसार ही हुआ। कलाकार ने यहाँ पर स्तूप की एक नई अवधारणा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्तूप गवाक्षों से भरा है और प्रत्येक गवाक्ष को ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा से अलंकृत कर उसे पवित्र एवं पूजित किया गया है। निश्चित रूप से इन स्तूपों को सुन्दर रूप देने में गवाक्षों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें अवस्थित बुद्ध की मूर्ति को दर्शन करने के अनुरूप व्यवस्थित किया गया है। गवाक्ष एक क्रम से बनाए गए हैं। एक दूसरे को अलग करने हेतु की गई व्यवस्था भी अलंकृत है। इस अलंकरण में पुरुष और नारी के चित्र दृष्टव्य हैं। प्रत्येक वीथी के द्वार को काल-मकर से अलंकृत किया गया है।

गैलरियों का निर्माण भी एक निश्चित किंतु व्यवस्थित कला-शैली में किया गया है। ये गैलरियाँ मेहराबदार बनायी गई है। विभिन्न तलों (मंजिलों) पर निर्मित दीवार विस्तृत और क्षैतिजीय हैं। इसके ऊपर कई निकास हैं जिन्हें पुष्प गुच्छाओं एवं मालाओं से अलंकृत किया गया है।

 ISSN 0976-0849

अलग-अलग मंजिलों पर गैलरियों को अलग-अलग किंतु आकर्षक ढंग से बनाया गया है। पहली गैलरी बराबर है जबकि अन्य भिन्न प्रकार की हैं। इनके ऊपर की गई निकास में भी एकरूपता नहीं है। लेकिन ये स्तूपों के सौंदर्यीकरण में सहायक हैं। ये बहुत अधिक अलंकृत हैं।

मुख्य स्तूप दो कमल की आकृति पर बना दीखता है। इसकी ऊँचाई लगभग 23 फीट है। ऐसा लगता है कि मानों दो कमल पुष्पों की गद्दी पर इसे अवस्थित कर दिया गया है। आधार तल से पुष्प के गुच्छे नीचे की ओर लटकते दीखते है। मुख्य स्तूप की भव्यता देखते ही बनती है। दूर से देखने पर मुख्य स्तूप का चौकोर रूप स्पष्ट दृष्टव्य है जिसके नीचे एक के बाद एक निचला तल भिन्न-भिन्न अनेक छोटे-छोटे सुन्दर स्तूपों से अलंकृत है। ऊपर का स्तूप ऊपरी स्तर पर अष्टभुजी है और नीचे तल में चतुष्कोणीय है। निर्माण की रचना पर नेपाल और तिब्बती स्तूप निर्माण शैली का भी प्रभाव दीखता है। केन्द्रीय मुख्य स्तूप अन्दर से बंद है। सम्पूर्ण स्तूप तीन छतरियों तथा अलंकरणों से अलंकृत है।

गैलरियों का स्थापत्य एवं नक्काशी बोरोबुदुर की अपनी विशिष्टता है। पूरे मंदिर में ग्यारह स्तरीय स्थापत्य क्रम है। बोरोबुदूर का पूरा आधार प्रस्तर निर्मित है। पहली गैलरी में दीवारों की दो श्रेणियाँ है तथा दो जंगले है। ऊपर की तीन गैलरियाँ क्रमशः एक दीवार तथा एक जंगला से युक्त है। जहाँ तक बोरोबुदूर के स्थ्यापत्य की सुन्दरता का प्रश्न है, अवर्णनीय है। डॉ. क्रोम ने अपने दो विशाल ग्रंथों में बोरोबुदूर की कलात्मक विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला है। बोरोबुदूर के इस सुन्दरतम स्थापत्य में जावा के जन-जीवन की झांकी को भी देखा जा सकता है। इतना ही नहीं इन चित्रणों से स्वर्ग के सुख और नरक के नारकीय जीवन के दार्शनिक पक्ष पर भी प्रकाश पड़ता है। ऐसा लगता है कि जावा के लोग भारतीय जीवन दर्शन से अवगत थे और उन्हें स्वर्ग नरक की धारणा का आभास था।

दार्शनिक दृष्टि से बोरोबुदूर की निर्माण शैली पर बौद्ध दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दीखता है। डॉ. क्रोम के अनुसार बोरोबुदूर की शिल्प कला से कर्म के सिद्धान्त पर भी प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार यह मान्य है कि बौद्ध दर्शन के गूढ़ रहस्यों को उद्घोषित करते हुए वहाँ के लोगों के द्वारा अपनाए गए धर्म की महत्ता पर भी प्रकाश डालता है।[9] सच्चाई यह है कि सातवीं शताब्दी ई. तक दक्षिण पूर्व एशिया के बड़े भूभाग में बौद्ध धर्म ने पूर्ण रूप से अपना स्थान बना लिया था। गुणवर्मन की कथा से ज्ञात होता है कि पाँचवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म ने जावा में प्रवेश कर लिया था।[10] गुणवर्मन के प्रभाव से जावा की राजमाता ने सर्वप्रथम बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी। बौद्ध भिक्षु के रूप में गुणवर्मन की प्रसिद्धि जावा तक ही सीमित नहीं रह सकी अपितु इसकी कीर्त्ति चीन में भी फैली।[11] आठवीं शताब्दी से बौद्ध धार्मिक क्षेत्र में महायान मत की प्रधानता हो गयी जिसके प्रचार प्रसार में जावा के

शैलेन्द्र वंशीय सम्राटों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। ईसा की 8वीं शताब्दी में यहाँ धर्मपाल, ग्यारहवीं शताब्दी ई. में अतिश दीपंकर नामक बौद्ध आचार्य यहाँ आए। इनके आने से यहाँ बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में काफी बल मिला।[12] शैलेन्द्र शासकों के संरक्षण में ही इस कलात्मक बौद्ध मंदिर का निर्माण संभव हो सका। मंदिर के साज सजावट में गैलरियों को विशेष आकर्षक बनाया गया। इन पर की गई शिल्पकलाएँ पूर्णतया धर्म ग्रन्थों से प्रभावित हैं। अत: इनका दार्शनिक चिन्तन धर्म ग्रन्थों के अभाव में संभव नहीं है। लेकिन, भागवत दृष्टव्य हैं। उदाहरणार्थ– प्रथम गैलरी के दो क्रम में गौतम बुद्ध की जीवन से संबंधित शिल्प तथा अन्य गैलरियों एवं उनके गवाक्षों में जातक, इनमें से 135 जातक माला पर आश्रित शिल्प एवं दिव्यावदान आदि पर आश्रित भागवत शिल्प अंकित है। तीसरी गैलरी में मैत्रयी बोधिसत्व अंकित है। सच्चाई है कि जावा की बौद्ध शिल्प कला बौद्ध मंदिरों के फलकों पर अंकित जातक कथाओं, बुद्ध की जीवनी तथा स्वतंत्र रूप से बुद्ध और बोधित्व, तारा, प्रज्ञापारमिता, पंचक और हरीती इत्यादि मूर्तियों के रूप मे विकसित हुई। इनमें बोरोबुदूर में बुद्ध की पद्मासन में बैठे धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा की मूर्ति सुन्दर, सौम्य और शांतिमय अवस्था का प्रतीक तो है ही, शिल्प का उद्भूत उदाहरण है।[13]

बोरोबुदूर में फलकों तथा स्तम्भों के बीच में जातकों एवं 'ललितविस्तर' से उद्धृत कथाएँ चित्रित हैं। ये सब बुद्ध के सारनाथ में धर्मचक्र-प्रवर्तन तक का वृत्तांत बताती हैं। ये चित्र इतने अधिक हैं कि यदि इन्हें एक साथ लगा दिए जाये तो इनकी लम्बाई साढ़े तीन मील तक की हो जाती है।[14]

यह स्पष्ट है कि बोरोबुदूर के निर्माण में स्थापत्य, शिल्प और मूर्तिकला का सम्मिश्रण भारतीय जावानी कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है साथ ही यहाँ के सामाजिक और धार्मिक जीवन, जिसपर ब्राह्मण धर्म एवं बौद्ध धर्म का प्रभाव था, को उद्घोषित करता है। निश्चिय ही डॉ. आर.सी. मजुमदार के अनुसार यह विश्व की अनूठी रचना है। इसका कलात्मक स्वरूप स्पष्ट है तथा बौद्ध दर्शन के विविध पक्षों को उजागर करता है।[15]

पाद टिप्पणी

1. महाजनक जातक (539), संख जातक (442), सुस्सोंदी (360), सुप्पारक जातक (463) आदि।
2. Majumdar, R.C., Colonies in the Far East, Hassell Street Press, London, 1971, PP 99-110, Hindu colonies pp. 99-110. Hindu colonists brought with them not only traditions and technique of developed Indian art but also probably actual specimens of Indian sculpture and architecture.
3. तत्रैव, पृष्ठ 105
4. कुमार स्वामी, ए.के., हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, एडवर्न गोल्डस्टीन प्रेस, लंदन, 1927 ई., पृष्ठ 204
5. मजुमदार, आर.सी.-हिन्दू सिविलिजेशन इन सुवर्णद्वीप, लाइफ स्पैन पब्लिशर, बैंकाक, 1964 ई., पृष्ठ

106-07

6. तत्रैव, पृष्ठ 107

7. कुमार स्वामी, ए.के., हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, तत्रैव, 1927 ई., पृष्ठ 205.

8. पुरी, बैजनाथ, सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन हिन्दी भवन, लखनऊ 1962 ई., पृष्ठ 424-25

9. "There is on the base of the Borobudur a text sculptured..... regular sequence the working of the karman, the law of cause and effect as it is manifested in re-incarnation in heaven and hell." Krom, Borabudur, Vol. I.P. 61.

10. उपाध्याय, विद्यानंद, दक्षिण पूर्व एशिया का राजनैतिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1987 ई., पृष्ठ 48

11. तत्रैव, पृष्ठ 48

12. कर्न, मैनुअल ऑफ बुद्धिज्म, पृष्ठ 130, आर.सी. मजुमदार, पृष्ठ 117

13. पुरी, बैजनाथ, सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, तत्रैव, पृष्ठ 432

14. तत्रैव, पृष्ठ 433

15. मजुमदार, आर.सी., सुवर्ण द्वीप, ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1986 ई., पृष्ठ 119 - "The artistic coneption of Barabudur is thus transparent and sublime, and gives a vivid expression to the most abstract and profound philosophy of the Buddhists".

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 97-100

प्राचीन भारत के समाज में उत्सव का स्वरूप एवं कौमुदी महोत्सव : एक अध्ययन

डॉ. प्रतिमा मिश्र*

सारांशः भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही मनोरंजन और आमोद प्रमोद का विशिष्ट स्थान रहा है। मनुष्य के स्वस्थ शरीर और मन के लिए मनोरंजन अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न प्रकार के खेलकूद, आखेट, घुड़दौड़ आदि मनोरंजक खेल प्राचीन समाज में प्रचलित थे। पूर्व वैदिक युग के लोगों का जीवन अत्यन्त सुखी और समृद्ध था। आमोद प्रमोद के लिए वे 'समन' और उत्सव का आयोजन किया करते थे। संगीत में भी समान रुचि रखते थे। नृत्य, गान और वाद्य के माध्यम से सभी स्त्री-पुरुष रंजन करते थे। ऋग्वेद काल के लोग मल्लयुद्ध के साथ-साथ घुड़दौड़ और रथदौड़ में भी सम्मिलित होते थे। उत्तर वैदिक काल में आकर मनोविनोद का जीवन और विकसित हुआ। आखेट, घुड़दौड़ और रथदौड़ उनके जीवन के प्रधान अंग बन गये थे। कालान्तर में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोरंजन के साधन समाज में उपलब्ध होते गये, जिनका समाज के लोग अपनी रूचि के अनुसार अनुगमन करते थे तथा अपने को सर्वथा स्वस्थ और स्फूर्तिपूर्ण बनाये रखते थे। समाज के ऐसे आयोजनों में अभिजात और धनिक वर्ग के अतिरिक्त साधारण जनता भी सम्मिलित हुआ करती थी।

बीजशब्दः उत्सव, समाज, मनोरंजन, प्रथा, ऋतु, पर्व, पालि ग्रन्थ, अर्थशास्त्र, संस्कृति।

सामाजिक जीवन में उत्सवों की व्यापकता एवं स्वरूप-

अति प्राचीन युग से मनुष्य के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में विभिन्न उत्सवों का बड़ा महत्व रहा है। भारतीय साहित्य में वैदिक युग से ही उत्सवों के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। वैदिक-वाङ्मय में उपलब्ध एतद्विषयक सामग्री से विदित होता है कि भारतीय आर्य बड़े उत्सव-प्रेमी थे और वे समय-समय पर आनन्द मनाने के लिए उत्सव-समारोहों का आयोजन किया करते थे।[1]

*पी.डी.एफ. फॉर वोमेन्स (यू.जी.सी.), बौद्ध अध्ययन विभाग, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा (सम विश्वविद्यालय), (अधिनस्थ संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)

 ISSN 0976-0849

बौद्ध-पिटकों तथा जैन-सूत्रों से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में बड़ी धूम-धाम से धार्मिक एवं लौकिक उत्सव मनाये जाते थे। जैन-सूत्रों से ज्ञात होता है कि उन दिनों लोग विभिन्न देवताओं, जैसे-इन्द्र, स्कन्द, रूद्र, मुकुन्द आदि की पूजा तथा यक्ष, नाग, स्तूप, मंदिर, वृक्ष, नदी, सरोवर इत्यादि की पूजा के लिए समय-समय पर समारोहों का आयोजन आदि किया करते थे। पालि-पिटक में उत्सव मनाने के लिए एकत्र जनसमूह के लिए समज्ज शब्द प्रयुक्त हुआ है जो पाणिनि के समज्जा के रूपान्तर है। समज्जा का अर्थ है– वह स्थान जहाँ एकत्र होते हैं। चुल्लवग्ग में गिरज्जसमज्ज का उल्लेख आया है जो राजगृह में किसी पहाड़ी पर मनाया गया उत्सव था। यह संभवतः धार्मिक उत्सव था तभी तो उसे पहाड़ी पर मनाया गया। हो सकता है जनधारणा के अनुसार उस पहाड़ी को किसी देवता का वासस्थान माना जाता होगा। इस उत्सव के वर्णन में यह भी कहा गया है कि राज्य के उच्च पदाधिकारियों को भी आमंत्रित कर उनके लिए विशेष आसन की व्यवस्था की गयी थी।[2]

पालि-निकाय से ज्ञात होता हे कि उन दिनों मनाये जाने वाले महोत्सवों का स्वरूप कई दिनों तक चलने वाले मेलों जैसा हो गया था। इन मेलों में खेल-तमाशे देखने के लिए लोग बड़ी संख्या में जमा हो जाते थे। दीघ-निकाय के अनुसार दर्शकों को मनोरंजन के अनेक कार्यक्रमों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता था, जैसे- नृत्य, गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घड़ा पर तबला बजाना, समूहगान, लोहे की गोली का खेल, बाँस का खेल, घोपन (उस समय का एक खेल जिसे चांडाल दिखाया करते थे), हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, महिष-युद्ध, वृषभ-युद्ध, बकरों का युद्ध, भेड़ों का युद्ध, मुर्गों की लड़ाई, मुष्टि-युद्ध, कुश्ती, मार-पीट के खेल, सेना और लड़ाई की चालें इत्यादि। मेले में नट और ऐंद्रजालिक के नृत्य तथा खेल बड़े ही मनोरंजन हुआ करते थे– लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे। नटों के खेल साहसिक तथा खतरनाक हुआ करते थे– वे रज्जू-नृत्य करते और भालों के ऊपर छलाँग मारते जिसे देखकर दर्शकों को रोमांच हो जाता। कभी-कभी तो भाले पर गिर जाने से नट की मृत्यु ही हो जाती थी। सँपेरों के खेल भी दर्शनीय होते थे। शंख फूँकने वाले (शंख-धमक) तथा भेरीदवाक वातावरण को संगीतमय बना देते थे। लोग मस्ती में आ जाते और माला, इत्र, विलेपन का खुलकर उपयोग करते, मद्यपान, माँस और मछली का जी भर सेवन करते थे। जैन-सूत्रों के अनुसार उत्सवों में प्रमुखता रहती थी-भोजन, मद्यपान और विलासिता के कर्मो की।[3]

कौमुदी-महोत्सव -

अधिकांश हिन्दू-पर्व ऋतु से सम्बद्ध हैं– बसन्त, वर्षा और शीत से तीन प्रमुख पत्रों का उद्‌भव हुआ जिन्हें चार्तुमास्य कहा गया। वसन्त, वर्षा और शरद ऋतुओं का आगमन कृषि-प्रधान भारतीय आर्य-जाति के लिए नयी आशा, उमंग एवं सक्रियता का प्रतीक बन गया। उन्होंने आरम्भ में यज्ञ-समारोह द्वारा इनका समुचित स्वागत सत्कार किया जो कालान्तर में प्रसिद्ध पर्व बन गये।

चार्तुमास्य समारोह, आषाढ़ तथा कार्तिक मास में पूर्णिमा के दिन मनाये जाते थे। वर्षा का अवसान और शरद के आगमन का काल भारतीय कृषक-समुदाय के लिए आनन्ददायक रहा है। जब कृषक एक ओर पकते धान के खेतों में पूर्ण अन्नपूर्णा धरती का दर्शन करता है और दूसरी ओर निरभ्र आकाश पर दृष्टिपात करता है, तो उसका हृदय पुलकित हो उठता है। अतएव कार्तिक-पूर्णिमा के दिन जो चार्तुमास्य मनाया जाता था वह अत्यन्त उल्लासमय हो गया। पालि-निकाय में इस पर्व की संज्ञा मिलती है-कौमुदी अथवा कत्तिका।[4]

कौमुदी-महोत्सव का रूप भी मेला जैसा हो गया था और इसे लोग सात दिनों तक आनन्दोल्लास के साथ मनाया करते थे। इस महोत्सव की सूचना भी नगरवासियों को भेरी-घोष द्वारा दे दी जाती थी। यह प्रसिद्ध पर्व अभी तक हिन्दू-समाज में प्रचलित है, यद्यपि इसका रूपान्तर हो गया है। हिन्दू-धर्म में कात्तिक-पूर्णिमा का ही नहीं, सम्पूर्ण कार्तिक मास का माहात्मय है। शरद-पूर्णिमा को सारी रात जागरण की प्रथा है, तो कहीं पतितपावनी भागीरथी के जल में अवगाहन द्वारा मन-शरीर को पवित्र करने का महत्व है। सोनपुर का प्रसिद्ध मेला कार्तिक मास में लगता है और पूर्णिमा को हरिहर क्षेत्र में स्नान का महत्व है, जिससे प्रतीत होता है कि यह मेला भी कौमुदी-महोत्सव का रूपान्तर है।[5]

पालि-निकाय के अनुसार लोग निश्चित तिथि को शालवन में जाते और शाल-पुष्प तोड़कर तथा अन्य क्रीड़ाओं द्वारा खुशियाँ मनाते। इस उत्सव का नाम पड़ा-शालभिञ्जका, जिसका शाब्दिक अर्थ है शाल-पुष्पों को तोड़ना। पणिनि के अनुसार यह उत्सव प्राच्य-भारत में प्रचलित हुआ। डॉ. वॉगेल (Vogel) के मत में मगध तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र में ही शाल-भञ्जिकोत्सव विशेष रूप से मनाया जाता था। जातक निदान-कथा में शाल-भञ्जिका का इस प्रकार वर्णन किया गया है- 'कपिलवस्तु और देवदह' के मध्य एक पवित्र शालवन है जिसपर दोनों नगरों का अधिकार है। उसे लुम्बिनीवन कहते हैं। उस समय सभी शाल-वृक्ष नीचे से ऊपर तक पूर्ण-विकसित पुष्पों से लदे थे। शाल-वृक्ष की शाखाओं में भ्रमरगुंजन कर रहे थे, विभिन्न प्रकार के पक्षी मधुर कूजन करते हुए फुदक रहे थे।

अनेक जातक कथाओं में सुरानक्षत्र नाम के एक उत्सव का वर्णन मिलता है। सुरानक्षत्र के दिन स्त्री-पुरुष सभी जी भर कर मद्यपान करते और नाचते गाते थे। अनियन्त्रित मद्यपान के कारण ही इस उत्सव का ऐसा नाम पड़ा। एक जातक में सुरानक्षत्र का इस प्रकार वर्णन उपलब्ध होता है- एक बार राजगृह में सुरानक्षत्र मनाया गया। उस दिन सभी ने खूब मद्यपान किया, मांस खाया, लोगों ने उत्तम वस्त्र धारण किया और नृत्य में भाग लिया। बाजार में मद्य-मांस की पर्याप्त बिक्री हुई।[6]

हस्तिमंगल (हत्थिमंगल) समारोह राजप्रासाद के प्रांगण में मनाया जाता था, अतः यह राजवैभव का द्योतक था। इससे मुख्यतः समाज के अभिजातपर्व का मनोविनोद होता। यह समारोह

 ISSN 0976-0849

वस्तुतः हाथियों की शोभायात्रा अथवा उनका व्यायाम था। सुजीम-जातक (163) में हस्तिमंगल का वर्णन मिलता है जिसके अनुसार इसे प्रतिवर्ष राजांगण मनाया करते थे। एक दिन ब्राह्मणों ने राजा के निकट जाकर निवेदन किया– 'हे महाराज, हस्तिमंगल का शुभ दिन सन्निकट है अतः उत्सव का आयोजन होना चाहिए।' तदनुसार हस्तिमंगल का आयोजन किया गया।[7] काम-जातक (467) में कर्षणोत्सव का उल्लेख मिलता है। पालि-निकाय के अनुसार यह उत्सव प्रतिवर्ष सोल्लास मनाया जाता था। इस समारोह की प्रमुख बात यह थी कि उस दिन हल जोतने का काम राजा करता था। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है जहाँ अन्नापूर्णा धरतीमाता की पूजा अति प्राचीन काल से होती रही है। धरतीमाता की छाती पर हल चलाकर ही मनुष्य अन्न उपजाता है, अतः इस कार्य को पवित्र माना गया[8] तथा भारतीय समाज इस अवसर को भी एक उत्सव के रूप में मनाता आ रहा है।

संदर्भ सूची

1. महावग्ग, 8/1/2, अनु. राहुल सांकृत्यायन, ब्रह्मचारी देवप्रिय प्रकाशन, वाराणसी, 1935 ई., पृष्ठ 391
2. तत्रैव, 8/1/3
3. तत्रैव, 6/30/2; 6/30/5
4. तत्रैव, 6/30/1
5. तत्रैव, 8/1/4
6. कणवेर जातक, (318), संपा. लामा तिपुन, सोनबंग पब्लिकेशन, नोम्ह पेन्ह, कम्बोडिया, 1953 ई., पृष्ठ 113
7. सुलसा जातक, (419)
8. तक्कारिच जातक, (481), संपा. ई. बी. कावेल, लूज़ेक एण्ड कम्पनी, लंदन, 1957 ई., पृष्ठ 124

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 101-103

भारतीय संगीत के प्रचार प्रसार में संगीत शिक्षा प्रणाली

दीप्ति गुप्ता*

सारांशः वर्तमान युग में राष्ट्र और समाज के विकास के लिए शिक्षा को आवश्यक माना गया है। संपूर्ण समाज के शिक्षित होने से राष्ट्र उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता है। इसी कारण शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए जिससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रदर्शित हो सके। वर्तमान उच्च संगीत शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है, कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद विद्यार्थी उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो गया है। वह धनोपार्जन के योग्य तो हो जाता है, उसे उपाधि तो प्राप्त हो जाती है, परंतु वह योग्य शिक्षक, कलाकार आदि नहीं बन पाता। विद्यार्थी वर्षभर बड़े पाठ्यक्रम, परीक्षा, अधिक अंक और उपाधि के तनाव में ही रह जाता है, उसे संगीत साधना का ध्यान ही नहीं रहता। प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में संगीत शिक्षा प्रणाली के क्रियान्वयन के विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

बीजशब्दः प्राचीन, संगीत, उच्च, शिक्षा, परंपरा, गुरु, शिक्षा, प्रणाली, संगीत, साधना, शिक्षा इत्यादि।

प्रस्तावनाः

संगीत शिक्षा भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही चली आ रही है, यहां तक की संगीत में बिना गुरु के संगीत शिक्षा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। भारतीय संगीत गुरुकुल पद्धति के द्वारा विकसित पल्लवित और समृद्ध हुआ है, आगे चलकर घराना पद्धति की सीमाओं और मनोवैज्ञानिक तथा अनेक सामाजिक, राजनैतिक कारणो से संगीत की संस्था शिक्षण पद्धति की ओर विकसित हुआ। इसके शिक्षक के इतिहास को देखने से इस शिक्षक प्रणाली का बदलता ऐतिहासिक स्वरूप स्पष्ट होता है। वर्तमान संगीत शिक्षक प्रणाली में तीन प्रकार प्रचलित है प्रथमतः गुरु शिष्य परंपरा, द्वितीय निजी संस्थानों में और तृतीय विश्वविद्यालय संगीत शिक्षा।

वर्तमान में वैसे तो उच्च शिक्षा जगत में सभी विषयों का स्तर गिरा है, परंतु संगीत शिक्षक

*बी.एड्. विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूषड़, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

के क्षेत्र में प्रदर्शन कला होने के नाते कुछ अधिक दिखाई दे रहा है। संगीत की बारीकियां जो सिर्फ गुरु के सान्निध्य में ही बैठकर सीखी जा सकती हैं, वे इतने कम समय में सिर्फ कक्षा में बैठकर नहीं सीखी जा सकती। अतः धीरे-धीरे संगीत का स्तर गिरने लगा। गुरुकुल पद्धति से सीखकर जिस उच्च कोटि का कलाकार तैयार होता था वैसे कलाकार आजकल बहुत कम दिखाई देते हैं। संगीत की उच्च शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए यह आवश्यक है, कि योग्य विद्यार्थियों का ही चयन किया जाए। किसी योग्य गुरु से तीन-चार वर्षों तक संगीत सीखे बिना, उच्चतर, माध्यमिक स्तर पर संगीत सीखे बिना स्नातक स्तर पर छात्र-छात्राओं को संगीत विषय चुनने की पात्रता नहीं होनी चाहिए। स्नातकोत्तर स्तर पर विद्यार्थियों के प्रवेश के लिए कड़े नियम बनाए जाएं जिससे योग्य कलाकारों का निर्माण हो।

संगीत के बिना कोई भी शिक्षक प्रणाली अधूरी है। सृजनात्मक व रचनात्मक के विकास के लिए शिक्षा में संगीत का होना आवश्यक है। प्राचीन काल की शिक्षा में साधनों, विषयों व उपविषयों का अभाव था लेकिन संगीत विषयों को अनिवार्य रूप से सिखाया जाता रहा। जीवन में कलाओं का एक विशेष महत्व है। ठीक उसी तरह संगीत के बिना जीवन अधूरा है। बिना संगीत विषय के पूर्ण शिक्षण को कैसे स्वीकार किया जा सकता है। मानवीय अर्थों, मूल्यों, भावनाओं, अभिव्यक्तियों व संवेगों को समझने के लिए संगीत के माध्यम से मानवीय श्रृंगार होना ही चाहिए, अन्यथा संगीतविहीन शिक्षा तो संस्कारहीन शिक्षा ही है। संगीत शिक्षा को आकर्षक बनाने के साथ यह प्रयास बेरोजगारी को दूर करने में भी सर्वाधिक सार्थक हो सकते हैं। यह तभी संभव हो सकता है, जब प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च, उच्चतर पाठशालाओं में सुबह की प्रार्थना सभा की सुरमय शुरुआत होना प्रत्येक पाठशाला की आवश्यकता हो। स्कूलों के अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रतियोगिताएं, वार्षिक पारितोषिक वितरण समारोह व अन्य सृजनात्मक व रचनात्मक कार्यक्रम बिना संगीत के पूर्ण नहीं होते। अपनी संस्कृति, लोकगीत, लोकवाद्यों, रीति-रिवाज व जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कारों को समझने के लिए संगीत शिक्षा अति आवश्यक है।

वर्तमान समय मे संगीत शिक्षण के उद्देश्यों में अंतर आ रहे हैं। गुरु शिष्य में जहां लक्ष्य माप का निर्माण होता था, वही विद्यालयीन संगीत शिक्षा में लक्ष्य संगीत की समझ वाले रसिक जुड़ाव का निर्माण हो गया है। ऐसा नहीं है कि विद्यालयों की स्थापना के पीछे केवल इतना ही उद्देश्य था, विद्यालय संगीत शिक्षण पद्धति की स्थापना के समय भी विद्यालयों द्वारा गुनि कलाकारों, गुरुओं सूचनाओं की निर्मिती का ही उद्देश्य था, परंतु जैसे-जैसे संगीत की शिक्षा पद्धति में आया रूपांतर वैसे ही विद्यालयों में दी जाने वाली संगीत की शिक्षा के स्तर संगीत कला को अपने अस्तित्व की पहचान बनाए रखने के लिए लगातार जूझना पड़ रहा है। आज विश्व में कंप्यूटर और इंटरनेट के कारण लोगों की समझ बहुत तीक्ष्ण और तारीक हो चुकी है। दुनिया का कोई संगीत ऐसा नहीं है,

जिसके माध्यम से सुन ना जा सके। आज जब कोई संगीतज्ञ (जीवित या मृत) की बात की जाती है तो उसका गायन या वादन यूट्यूब से तुरंत सुना जा सकता है।

संगीत एक कला है, अतः इसका शिक्षण भी श्रेष्ठ गुरुओं द्वारा गुनी शिष्यों को देना आवश्यक है, वह भी पूर्ण समर्पण व प्रेम के साथ। अगर किसी को संगीतकार बनना है तो किसी अच्छे गुरु से कुछ साल तक शिक्षण लेकर उचित रीति से उपकरण की जरूरत होती है, आज देश भर में कई ऐसी संस्थाएं व स्कूल है, उच्च शिक्षक, किताब या अन्य ऐसे साधन जिससे ज्ञान प्राप्त हो सकता है शिक्षार्थी द्वारा स्वर लोक ताल के विषय का विस्तृत ज्ञान दिया जाता है, जिससे शिक्षार्थी अपनी क्षमतानुसार संगीत की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। अब संगीत के लिए एक सुविचारि शिक्षा नीति का होना परम आवश्यक है। यह बहुत दुखद तत्व है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी हमारे संगीत शिक्षा की कोई नीति नहीं है। जबकि देश में सर्वोच्च सम्मान 'भारतरत्न' से अलंकृत संगीतज्ञ भी संगीत से हैं।

निष्कर्षः

वर्तमान कला की परिस्थितियों आवश्यकताओं के अनुरूप अब एक ऐसी सुसंगठित पद्धति की आवश्यकता है जो कि गुरुकुल और घरानों की विशेषताओं पर आधारित हो, जो शिक्षण संबंधी नए विकास को समेटती हो, जो नए प्रयोगों की छूट दे, और जो शास्त्रीय परंपराओं की लुप्त विधाओं की पुनः रचना को प्रोत्साहित करें तथा इन गुणों को अपनाते हुए संगीत शिक्षा को विश्वविद्यालय शिक्षा के लाभ और सुविधाएं प्राप्त हो। जिससे शिक्षित कलाकार का निर्माण हो सके। वर्तमान समय में जब संगीत की उच्च शिक्षा को अन्य विषयों के समान ही मान्यता प्राप्त है तो यह अत्यंत आवश्यक है कि इसके क्रियात्मक एवं रचनात्मक पक्ष की सीमा को ध्यान में रखकर प्राचीन वैयक्तिक शिक्षण, दोनों के श्रेष्ठ तत्व उपलब्ध कर समन्वित किया जाए, ताकि व्यवहारिक दृष्टि से गुणवत्ता के साथ ही यह हमारी परंपरा को भी समृद्ध कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. शर्मा, प्रोफेसर स्वतंत्र, भारतीय संगीत ऐतिहासिक विश्लेषण, अनुभव पब्लिकेशन हाउस, इलाहाबाद, 2004 ई.
2. चौबे, डॉ. सुनील कुमार, हमारा आधुनिक संगीत, अवध पब्लिकेशन हाउस, लखनऊ, 2005 ई.
3. सक्सेना, डॉ. मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली उसका वर्तमान स्तर, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1990 ई.
4. शोध पत्र, प्राचीन एवं नवीन संगीत शिक्षा प्रणाली, प्रतिमा गुप्ता, फतेहपुर, उत्तर प्रदेश
5. इंटरनेट, विकीपीडिया
6. पाण्डेय, रामशकल, भारतीय शिक्षा में समसामयिक समस्याएं, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2004 ई.
7. विभिन्न पत्र-पत्रिकाएं

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 104-108

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भारतीय संस्कृति

विभा सिंह*

सारांशः भारतीय संस्कृति किसी न किसी रूप में अति प्राचीन काल से भारतीय समाज को प्रभावित करती रही है। संस्कृत और संस्कृति दोनों ही शब्द 'संस्कार' से बने हैं। संस्कार का अर्थ– कृत्यों की पूर्ति करना। एक मनुष्य सामाजिक जीवन में विभिन्न प्रकार के संस्कार संपन्न करता है। अतः संस्कृति का अर्थ हुआ विभिन्न संस्कारों द्वारा सामूहिक जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करना। छात्रों में एक सामाजिक भाव की संस्कृति पनपने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय और अन्य संस्थाएं विचार पूर्वक अपनी संस्कृति एवं विरासत को प्रसारित करती हैं। भारतीय शिक्षा की विकास यात्रा में स्वतंत्र भारत में शिक्षा के द्वारा संस्कृति को प्रसारित करने में विभिन्न आयोगों, शिक्षा नीतियों में सिफारिश और सुझाव दिए गए हैं। इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय संस्कृति, भाषाएं, संगीत, कला, हस्तशिल्प, विज्ञान, मानविकी आदि को प्रोत्साहित करने के लिए स्थानीय कलाकारों एवं कुशल व्यक्तियों को अतिथि शिक्षक के रूप में नियुक्त किए जाने का सुझाव दिया गया है। उच्चतर शिक्षा संस्थानों में कार्यक्रमों को द्विभाषित रूप में चलाने और निजी प्रशिक्षण संस्थानों को प्रोत्साहित किए जाने का मार्गदर्शन दिया गया है। इसके अतिरिक्त संग्रहालय, प्रशासन, पुरातत्त्व, कलाकृति संरक्षण, ग्राफिक डिजाइन एवं वेब डिजाइन के लिए कार्यक्रम और डिग्रियों का सृजन किए जाने पर बल दिया गया है। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय संस्कृति कला साहित्य को पुनर्स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करने वाली है।

बीजशब्दः मानविकी, उत्कृष्ट, पुरातात्विक, लुप्तप्राय, प्रासंगिक, बहुभाषिकता, इंटरप्रिटेशन, पांडुलिपि।

उद्देश्यः

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत 3 साल से 18 साल तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के अंतर्गत रखा गया है। 34 वर्ष पश्चात इस नई शिक्षा नीति का उद्देश्य

*सहायक आचार्य, बी.एड्. विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है। इसका लक्ष्य 2025 तक पूर्व प्राथमिक शिक्षा 3 से 6 वर्ष की आयु सीमा को सार्वभौमिक बनाना है। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति पर भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों जिनमें एसडी जी4 शामिल है, के संयोजन में शिक्षा व्यवस्था उसके नियमन और गवर्नेस सहित सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमता के विकास पर जोर देती है। यह नीति इस सिद्धांत पर आधारित है कि शिक्षा में न केवल साक्षरता और संख्या ज्ञान जैसी बुनियादी क्षमताओं के साथ-साथ उत्तर ही तार्किक और समस्या समाधान संबंधी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए,बल्कि नैतिक सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का विकास होना आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति ज्ञान का समृद्ध भंडार है जो हजारों वर्षों में विकसित हुआ है और यहां की कला, साहित्य, कृतियों, प्रथाओं, परंपराओं, भाषाई अभिव्यक्तिओं, कलाकृतियों, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों के स्थलों इत्यादि में यह परिलक्षित होता हुआ दिखता है। भारत में भ्रमण, भारतीय अतिथि सत्कार का अनुभव लेना, भारत के खूबसूरत हस्तशिल्प एवं हाथ से बने कपड़ों को खरीदना भारत के प्राचीन साहित्य को पढ़ना, योग एवं ध्यान का अभ्यास करना, भारतीय दर्शनशास्त्र से प्रेरित होना भारत के अनुपम त्योहारों में भाग लेना, भारत के संगीत एवं कला की सराहना करना और भारतीय फिल्मों को देखना आदि ऐसे कुछ आयाम है जिसके माध्यम से दुनियाभर के करोड़ों लोग प्रतिदिन इस सांस्कृतिक विरासत में सम्मिलित होते हैं, इसका आनंद उठाते हैं और लाभ प्राप्त करते हैं।

संस्कृति के संवर्धन में भारतीय शिक्षा नीतियों एवं आयोगों के प्रयासः

संस्कृति के संवर्धन हेतु भारतीय शिक्षा आयोग एवं विविध शिक्षा नीतियों ने प्रयास किए हैं। यदि हम भारतीय शिक्षा के विकास यात्र को संक्षेप में समझने का प्रयास करें तो इसका आरंभ राधाकृष्णन आयोग से होता है जहाँ जीवन जीने की सहज क्षमता मूल्यों का विकास तथा सांस्कृतिक विरासत के उत्थान की बात कही गई। मुदालियर आयोग 1992-93 ने पाठ्यक्रम में संस्कृत को उचित स्थान देने का सुझाव दिया। साथ ही मानव के व्यक्तित्व विकास की सभी संभावनाओं पर विचार करके उसके अनुसार कार्य करना तथा उसे एक अच्छे नागरिक बनने का प्रशिक्षण देने का भी सुझाव दिया। इस आयोग ने त्रिभाषा सूत्र का समर्थन किया तथा माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा मातृभाषा में देने का सुझाव दिया जिसे हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में परिलक्षित होते हुए देखते हैं। इसी प्रकार कोठारी आयोग ने सांस्कृतिक विरासत के ज्ञान के विकास एवं मूल्यांकन के लिए भाषाओं साहित्य भारतीय इतिहास, धर्म एवं दर्शन के शिक्षण की समुचित व्यवस्था का प्रस्ताव दिया।

 ISSN 0976-0849

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में मूल्य की शिक्षा को महत्व दिया गया। इस नीति ने त्रिभाषा सूत्र क्रियान्वयन संबंधी प्रावधान दिए, जिसमें हिंदी, अंग्रेजी और एक आधुनिक भारतीय भाषा जिसमें दक्षिण भारत की भाषा को वरीयता प्रदान की। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की शिक्षा नीतियों में भाषा और सांस्कृतिक विरासत के विकास हेतु सुझाव दिए गए हैं। उसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाओं कला और संस्कृति के संवर्धन में विस्तार से अपने गौरवशाली सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं उत्कृष्टता के लिए सुझाव दिए हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 "अतुल्य! भारत" की संकल्पना के साथ देश की विविधता, कला, साहित्य, परंपराओं, भाषाई अभिव्यक्ति, कलाकृतियों, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों के स्थलों में परिलक्षित होती हुई दिखती है। इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी कक्षा 5 तक की शिक्षा में मातृभाषा स्थानीय क्षेत्रीय भाषा को अध्यापन के माध्यम के रूप में अपनाने पर बल दिया गया है। साथ ही इस नीति में मातृभाषा को कक्षा 8 और आगे की शिक्षा के लिए प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है। स्कूली और उच्च शिक्षा में छात्रों के लिए संस्कृत और अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं का विकल्प उपलब्ध होगा परंतु किसी भी छात्र पर भाषा के चुनाव की कोई बाध्यता नहीं होगी।

हेडिंग-संस्कृति का अर्थ है-'अच्छी स्थिति', 'सुधारना' एवं 'शोधन करना'। अंग्रेजी में इसे कल्चर (culture) शब्द से सम्बोधित किया जाता है जो लैटिन भाषा के कलचुरा से निकला है। अंग्रेजी के शब्द कल्चर का अर्थ है– 'उपजना' या 'पनपना'। इसी आधार पर मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए भी संस्कृति शब्द का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत और संस्कृति दोनों ही शब्द संस्कार से बने हैं। एक मनुष्य सामाजिक जीवन में भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कार संपन्न करता है। अतः संस्कृति का अर्थ हुआ– विभिन्न संस्कारों द्वारा सामूहिक जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करना। प्रारंभिक मानवशास्त्री लेंडीस ने लिखा है कि "संस्कृति वह दुनिया है जिसमें की एक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक निवास करता है, चलता फिरता है और अपने अस्तित्व को बनाए रखता है"। श्री मैलिनोवस्की के अनुसार, "संस्कृति प्राप्त आवश्यकताओं की एक व्यवस्था तथा उद्देश्यमूलक क्रियाओं की एक संगठित व्यवस्था है।" संस्कृति का धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, संगीत आदि से घनिष्ठ संबंध होता है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान में भारत के प्राचीन विश्वविद्यालयों की भूमिका सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। उन्होंने बड़ी संख्या में विद्वानों और छात्रों को आकर्षित किया। नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला, विक्रमशिला और ओदन्तपुरी विश्वविद्यालयों का उल्लेख आवश्यक है, जहां के शिक्षक और छात्र धर्म और विद्या के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का विदेशों तक में प्रसार किया।

भारतीय भाषाएं, कला एवं संस्कृति (राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के परिप्रेक्ष्य में) -

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारतीय भाषाएं, जो निसंदेह रूप से कला एवं संस्कृति से अटूट रूप

से जुड़ी हुई है, उनकी उपेक्षा पर चिंता व्यक्त किया गया है। पिछले 50 वर्षों में 220 भाषाओं को हमने खो दिया है। यूनेस्को ने 197 भारतीय भाषाओं को 'लुप्तप्राय' घोषित किया है। इसलिए भाषाओं को अधिक व्यापक, जीवंत और प्रासंगिक बनाए रखने के लिए सभी स्कूली स्तरों पर संगीत, कला और कौशलों पर बल देने तथा बहुभाषिकता को प्रोत्साहित करने के लिए त्रिभाषा फार्मूला के क्रियान्वयन पर जोर दिया गया है। उच्चतर शिक्षा में मानविकी, विज्ञान, कला, हस्तकला और खेलकूद को विकसित करने एवं उनका शिक्षण देने हेतु शिक्षकों एवं संकाय की उत्कृष्ट टीम का विकास करना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में इस बात पर जोर दिया गया है कि स्थानीय संगीत, कला, भाषा एवं हस्तशिल्प को प्रोत्साहित करने के लिए उत्कृष्ट स्थानीय कलाकार एवं हस्तशिल्प में कुशल व्यक्तियों को अतिथि शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाएगा जिससे क्षेत्रीय रोजगार भी बढ़ेगा और क्षेत्रीय कला भी विकसित होगी। इसके साथ ही उच्चतर शिक्षा संस्थानों में कार्यक्रमों को द्विभाषित रूप में चलाया जाएगा और इसके लिए निजी प्रशिक्षण संस्थानों को भी प्रोत्साहित किया जाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का जोर इस पर भी है कि उच्चतर शिक्षा व्यवस्था में अनुवाद और विवेचना, कला और संग्रहालय प्रशासन, पुरातत्व, कलाकृति संरक्षण, ग्राफिक डिजाइन एवं वेब डिजाइन के लिए कार्यक्रम और पाठ्यक्रमों का सृजन किया जाना चाहिए जिससे भावी पीढ़ी को कलात्मकता का प्रशिक्षण दिया जा सके और उसका विस्तार हो। कला, भाषा और मानविकी के क्षेत्रों में ऐसे कार्यक्रम बनाने से युवाओं को रोजगार के ज्यादा से ज्यादा अवसर मिलेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में कहा गया है कि भारत में अनुवाद एवं विवेचना के लिए इंस्टिटड्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन (आईआईटीआई) की स्थापना की जाएगी। संस्कृत भाषा को मुख्यधारा में लाने हेतु स्कूल और उच्चतर शिक्षा में त्रिभाषा फार्मूला के तहत एक विकल्प के रूप में प्रयुक्त किया जाएगा। 4 वर्षीय बहु विषयक बीएड डिग्री के द्वारा मिशन मोड में पूरे देश के संस्कृत शिक्षकों को बड़ी संख्या में व्यवसायिक शिक्षा प्रदान की जाएगी। इसी तरह सभी शास्त्रीय भाषा और साहित्य का अध्ययन करने वाले संस्थानों और विश्वविद्यालयों का विस्तार किया जाना चाहिए। उन हजारों पांडुलिपियों को इकट्ठा करने, संरक्षित करने, अनुवाद करने और उनके अध्ययन तथा पाली, फारसी एवं प्राकृत भाषा के राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किया जाना चाहिए। भारतीय भाषाओं को संरक्षित और बढ़ावा देने में प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्थानीय कला एवं संस्कृति का आधारित प्लेटफार्म पोर्टल विकिपीडिया के माध्यम से दस्तावेज करण किया जाना चाहिए। स्थानीय मान या उचित व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय भाषा और संस्कृति के अध्ययन के लिए सभी आयु के लोगों के लिए छात्रवृत्ति की की स्थापना की जाएगी। विभिन्न श्रेणियों में उत्कृष्ट कविता के लिए पुरस्कार की स्थापना जैसे कार्यक्रमों को प्रोत्साहन के कदम उठाए जाएंगे। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय परंपरा और दर्शन सदा सर्वोच्च माननीय लक्ष्य माना जाता है। इस नीति

 ISSN 0976-0849

के क्रियान्वयन की नई नीति के अंतर्गत दो प्रमुख साधनों पर विशेष कार्य करने की आवश्यकता है– पहला केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड का सशक्तिकरण और दूसरा वित्तपोषण सभी के लिए वह अन्य एवं गुणवत्ता पूर्वक शिक्षा। इन सभी बातों का समावेश भारत की समृद्ध विविधता और संस्कृति के प्रति सम्मान बनाए रखते हुए यहां की अद्वितीय कला, भाषा और ज्ञान परंपराओं के बारे में ज्ञानवान बनाना राष्ट्र गौरव बढ़ाने की दृष्टि से अति आवश्यक है।

निष्कर्ष:

के. कस्तूरीरंगन समिति द्वारा डिजाइन की गई भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 शिक्षार्थियों को राष्ट्र के समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से अवगत कराने के साथ–साथ राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने वाली है। हमारी संस्कृति हमारी भाषाओं में समाहित हैं। साहित्य, संगीत और कलाएँ उसे भिन्न–भिन्न रूपों में अभिव्यक्त करती हैं। इस शिक्षा नीति में भारत वर्ष की महत्वपूर्ण भाषाओं की ऑडियो और विडियो के माध्यम से संरक्षित करने का, उनकी पांडुलिपियों को प्रकाशित करने का, उनके संरक्षण का, इन भाषाओं को बोलने वाले समाजों के साथ तालमेल बनाते उन्हें प्रोत्साहित करने की संकल्पना विद्यमान है। समस्त भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत को विशेष आदर, संरक्षण और संवर्धन के प्रावधान किए गए हैं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता ही कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक ऐतिहासिक नीति सिद्ध होगी, इससे भारतीय भाषाओं के सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त होगा। भारतीय भाषाएँ सशक्त होंगी तो सही मायनों में नया भारत सशक्त भारत बनेगा। भारतीय भाषाओं के सशक्तिकरण से ही भारतवर्ष की सांस्कृतिक विविधता के अनेक आयाम जन–जन तक पहुँचेंगे। एक भारत, श्रेष्ठ भारत का आधार भाषाओं के सशक्तिकरण से ही संभव है।

संदर्भ सूची

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ई., मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
- Muller, Max, 1882. Contribution of the Science of Mythology. Life span research foundation, Germany
- Malinowski, Bronislaw, 1926. Myths in Primitive Psychology. British library cataloging in publications data.
- श्रीनिवास, एम.एन., भारतीय समाज संरचना, 2006 ई., पृष्ठ 147
- राव, एस.आर., शिपिंग इन एशियाई इंडिया : इंडियाज कंट्रीब्यूशन टू वर्ड थॉट एंड कल्चर

वेब लिंक–

https:/hi.m.wikipedia.org>wiki

*https:/study.com>learn>lesson

*National council of Education Research

https:/ncert.nic.in>khsy104

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 109-125

मध्य प्रदेश के जनजातीय समुदाय और नगरीय समुदाय के वेल-बीइंग का तुलनात्मक अध्ययन

प्रज्ञा मिश्र*, डॉ. प्रज्ञेश कुमार मिश्र एवं डॉ. ललित कुमार मिश्र*****

सारांशः मध्य प्रदेश भारतीय उपमहाद्वीप का एक ऐसा राज्य है, जो प्राकृतिक वातावरण और समृद्ध संस्कृति का परिचायक है। मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले में स्थित अमरकण्टक एक आकर्षक, हरा-भरा परिक्षेत्र है जो जनजातीय समुदायों से घिरा हुआ है। यह एक जनजातीय बाहुल्य क्षेत्र है। अमरकण्टक और उसके आस-पास बसने वाली जनजातियाँ आधुनिक समाज से अलग और विशेष हैं। सीमित संसाधनों और विभिन्न प्राकृतिक विषमताओं से भरे इन जनजातीय समुदायों का जीवन चुनौतीपूर्ण है। जनजातीय समुदाय अपनी संस्कृति और जीवनशैली को पीढ़ियों से संग्रहित करती आ रही हैं। विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी यहाँ के जनजातीय समुदायों में संतुष्टि का स्तर अत्यंत संतोषजनक है। इन जनजातीय समुदायों के वेल-बीइंग की स्थिति का नगरीय समुदाय के लोगों के वेल-बीइंग से तुलना करने के उद्देश्य से 30 जनजातीय समुदाय तथा 30 नगरीय समुदाय के लोगों पर अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार आयोजित किया गया। साक्षात्कार से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर जनजातीय लोगों के वेल-बीइंग से संबंधित कुछ कारकों (जनजातीय प्रतीक, धार्मिक संस्कार, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, समृद्ध संस्कृति, सामुदायिक जुड़ाव, न्यूनतमकरण तथा प्रकृति के समीप) की पहचान की गई, जिससे जनजातीय समुदाय के लोगों का वेल-बीइंग सकारात्मक ढंग से प्रभावित होता है, जबकि नगरीय समुदाय के लोगों में संतुष्टि का स्तर जनजातीय समुदाय के लोगों के संतुष्टि के स्तर की तुलना में निम्न पाया गया। प्रस्तुत शोधपत्र में वेल-बीइंग को परिभाषित करते हुए जनजातीय समुदाय तथा नगरीय समुदाय के वेल-बीइंग को प्रभावित करने वाले कारकों तथा दोनों के बीच में अन्तर का सविस्तार विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्दः वेल-बीइंग, संतुष्टि, संस्कृति, जनजातीय समुदाय, नगरीय समुदाय।

*शोध छात्र, मनोविज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकण्टक
**सहायक आचार्य, मनोविज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकण्टक
***सह आचार्य, मनोविज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकण्टक

 ISSN 0976-0849

प्रस्तावना:

आधुनिक युग में संतुष्टि प्राप्त करने और सकारात्मक आयामों पर ध्यान देने की नितांत आवश्यकता है। खुशी और प्रसन्नता तब होती है जब हम अपनी प्रासंगिकताओं को पूरा करते हैं, जैसे कि मनचाहा व्यवसाय करना, धनोपार्जन करना, पदोन्नति प्राप्त करना, बेटे को रोजगार मिलना या बेटी की शादी करना आदि। इसके विपरीत, जब हमारे कार्य मनोचित्त के अनुरूप नहीं होते, तो दु:ख और निराशा की स्थिति उत्पन्न होती है। हम अक्सर अपने आस-पास हो रही घटनाओं पर ध्यान नहीं देते जिससे हमारा दृष्टिकोण सीमित और संकुचित हो जाता है। आज के कृत्रिम युग में अपने भावनाओं को समझने के लिए भी कृत्रिम बुद्धि (Artificial Intelligence) की सहायता लेनी पड़ रही है। अपने संबंधों को हम सोशल नेटवर्किंग साइट्स जैसे व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम और अन्य माध्यमों के जरिए जोड़ने लगे हैं। इस तरह के माहौल में, वेल-बीइंग और प्रसन्नता जैसे भावों को समझना थोड़ा कठिन होता जा रहा है। आज के युग में, विदेश यात्र करना, महंगे कपड़े पहनना और भौतिक संसाधनों का उपयोग करना प्रसन्नता का स्रोत होता जा रहा है जिसे पाने के लिए लोग बैंकों से लोन लेने से भी हिचक नहीं रहे हैं, इस खुशी को लंबे समय तक बनाए रखने के लिए तथा आनंद की प्राप्ति के लिए विलासिता के चक्रव्यूह में जकड़ते जा रहे हैं।

एक पुरानी कहावत है, जो आज के युग में नितांत प्रसंगिक है– 'कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूँढत बन माहि।' इसका अर्थ है कि पूर्णता और खुशी हमारे अन्दर ही होती है, लेकिन हम उसे बाहरी वस्तुओं में ढूंढ़ने की कोशिश करते हैं। खुशी और प्रसन्नता दो महत्त्वपूर्ण अवधारणाएं हैं जो एक सुखमय जीवन की मूलभूत चरम अवस्थाएं हैं। यह दोनों मनुष्य की आंतरिक भावनाओं को निर्दिष्ट करते हैं, जो हमारे अन्तर्मन से उत्पन्न होता है और पूर्णत: हमारे जीवन के मूल्यांकन पर आधारित होता है। आधुनिक युग में आत्मसिद्धि की प्राप्ति के लिए हार्दिकता (Heartfulness), ध्यान, और अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं, जिसका उद्देश्य स्वयं को अपने अन्तर्मन से जोड़ना है तथा अपने सकारात्मक भावों को दैनिक जीवन में समझने का प्रयत्न करना है। Well-Being एक ऐसा व्यापक शब्द है, जो खुशी और संतुष्टि से संबंधित है। वास्तविक खुशी तब मिलती है जब हम जीवन के प्रति सकारात्मक ख्रष्टिकोण रखते हैं, जीवन को अर्थपूर्ण बनाते हैं, गुणवत्तापूर्ण समय बिताते हैं और अपने नकारात्मक विचारों का प्रबंधन करते हैं। Well-Being एक व्यक्तिपरक भावनात्मक स्थिति है जिसमें सकारात्मक भावनाएं तथा कल्याण की भावनाएं निहित होती हैं। वेल-बीइंग और प्रसन्नता एक दूसरे के पूरक हैं, जिसे मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक घटकों के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है।

मानसिक वेलबीइंग (Mental well-being): व्यक्तित्व को बेहतर बनाने में मानसिक वेल-बीइंग का महत्त्वपूर्ण योगदान है। मानसिक वेल-बीइंग केवल मनोविकारों की अनुपस्थिति ही

नहीं है अपितु जीवन में लचीलापन, संतुष्टि और पूर्णता का भी पर्याय है। इसमें व्यक्ति की मानसिक स्थिति, आत्मविश्वास, स्वस्थ मनोवृत्ति, तनाव का स्तर, चिंता और चिंता से मुक्ति जैसे मानसिक पहलू सम्मिलित होते हैं (Beiser, 1974)। मानसिक रूप से सबल होने पर हम स्वयं का सही मूल्यांकन कर सकते हैं तथा नकारात्मक वातावरण के संपर्क में आने पर उसका सकारात्मक ढंग से प्रबंधन कर पाते हैं।

आध्यात्मिक वेल-बीइंग (Spiritual well-being) : आध्यात्मिक वेल-बीइंग व्यक्ति के आध्यात्मिक/उत्कृष्ट विश्वासों और प्रथाओं के संबंध में एक उद्देश्यपूर्ण और आंतरिक शान्ति की अनुभूति को संदर्भित करता है। इसमें व्यक्ति के जीवन के आध्यात्मिक पहलुओं का पोषण और विकास सम्मिलित होता है, जिसमें धार्मिक विश्वास, व्यक्तिगत मूल्य, नैतिक सिद्धांत और जीवन के अर्थ या उद्देश्य की भावनाएं अंतर्निहित होती हैं। आध्यात्मिक वेल-बीइंग व्यक्ति के आत्मिक विकास, मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पण, आंतरिक शांति इत्यादि को संकल्पित करता है। जीवन में मूल्यों और अर्थ की खोज एक आजीवन प्रक्रिया है। आध्यात्म हमें जीवन के सत्य और सार्थक अर्थ को समझने का मार्ग प्रशस्त करता है। आध्यात्मिक वेल-बीइंग एक व्यक्तिगत अनुभव है जो किसी विशेष धर्म या आध्यात्मिक परंपरा से सर्वथा मुक्त होता है और व्यक्ति को चैतन्य और पूर्ण बनाने हेतु सक्षम होता है। योग, संगीत, प्रकृति, कला और संस्कृति के द्वारा हम अपने आध्यात्मिक वेल-बीइंग को समृद्ध बना सकते हैं।

सामाजिक वेल-बीइंग (Social well-being) : सामाजिक वेल-बीइंग का तात्पर्य किसी व्यक्ति के संबंधों तथा सामाजिक अन्तर्क्रिया की गुणवत्ता से है। सहायतापरक व्यवहार, समाज में स्वीकृति की भावना, सामुदायिक, सहभागिता, सकारात्मक सामाजिक गतिविधियाँ, समरसता और सामाजिक समृद्धि सामाजिक वेल-बीइंग के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। अपने समुदाय के लिए प्रेम, चिंता और स्नेह सामाजिक वेल-बीइंग का एक हिस्सा है। दूसरों का सम्मान करना और अपने समाज में लोगों से सकारात्मक संबंध विकसित करना हमारे सामाजिक कल्याण को सशक्त बनाता है।

मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग (Psychological well-being) : मानसिक रूप से स्वस्थ होने के साथ-साथ अपने जीवन के संदर्भ में सकारात्मक प्रत्यक्षीकरण करना ही मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग है। मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग किसी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य और उसके भावनात्मक क्रियाकलापों की समग्र स्थिति को संदर्भित करता है, जिसमें व्यक्ति की भावनाएं, व्यवहार, विचार, जीवन की संतुष्टि तथा अपने जीवन के प्रति आशान्वित होना सम्मिलित है। नकारात्मक भावों को समझना और सही दिशा में प्रबंधन करना, आगे आने वाले प्रतिकूल परिस्तिथियों में भी मानसिक रूप से सबल रहना, संवगों पर नियंत्रण रखना मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग की भावना को दर्शाता है। मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि लोग सकारात्मक मानसिक स्थिति

 ISSN 0976-0849

में रहें, अपनी समस्याओं तथा तनाव का प्रबंधन करें और अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में खुशी का अनुभव करें।

मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग दो प्रकार का होता हैं: हेडोनिक (Hedonic) और यूडेमोनिक (Eudaimonic)। हेडोनिक वेल-बीइंग वस्तुत: आत्मपरक भावनाओं से संबंधित होता है, जिसमें 2 घटक सम्मिलित हैं: पहला- भावनात्मक घटक और दूसरा- संज्ञानात्मक घटक। कोई व्यक्ति प्रसन्नता का अनुभव तभी करता है, जब व्यक्ति की सकारात्मक भावनाएं और उसकी संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं अपने उच्चतम स्तर पर हों (Carruthers & Hood, 2004)। यूडेमोनिक वेल-बीइंग एक आत्मपरक अनुभव है जिसमें व्यक्ति मानवीय उत्कृष्टता की खोज में सदाचार का जीवन जीता है। इस तरह से प्राप्त असाधारण अनुभवों में आत्मसिद्धि, व्यक्तिगत अभिव्यक्ति और जीवन शक्ति सम्मिलित होती है (Huta & Waterman 2014)।

मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग के मॉडल (Models of Psychological well-being) : मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग एक जटिल और बहुआयामी अवधारणा है। इसे समझने तथा इसका मूल्यांकन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न मॉडल प्रस्तावित किया है। मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग के कुछ प्रसिद्ध मॉडल निम्नांकित हैं।

1. **डेनिअर का आत्मपरक वेल-बिंग का त्रिपक्षीय मॉडल (Diener's Tripartite Model of Subjective Well-Being):** डेनियर के आत्मपरक वेल-बीइंग का त्रिपक्षीय मॉडल को आत्मपरक वेल-बीइंग मॉडल भी कहा जाता है (Diener, 1984)। डेनियर का त्रिपक्षीय मॉडल मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग का अत्यंत स्वीकृत मॉडल है, जो व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत वेल-बीइंग से जुड़े अनुभवों पर केंद्रित है (Busseri, 2011)। डेनियर द्वारा विकसित इस त्रिपक्षीय मॉडल में व्यक्तिपरक वेल-बीइंग के तीन कारक सम्मिलित हैं:

1. बार-बार आनंद की अनुभूति होना
2. कभी-कभार नकारात्मक भावना
3. संज्ञानात्मक मूल्यांकन

त्रिपक्षीय मॉडल आत्मपरक वेल-बीइंग के तीन घटकों का संयोजन है (Tov & Diener, 2013)। उच्च स्तर की जीवन संतुष्टि, सकारात्मक भाव के लगातार अनुभव और नकारात्मक भाव की न्यूनता व्यक्ति के व्यक्तिपरक वेल-बीइंग को उत्कृष्ट बनाता है (Schimmack, 2008)। आत्मपरक वेल-बीइंग इस विचार पर आधारित है कि, प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के बारे में कैसे सोचता और महसूस करता है (Diener & Suh, 1999)।

2. **PERMA मॉडल (PERMA Model) :** अब्राहम मैस्लो के आत्मसिद्धि का संप्रत्यय PERMA मॉडल का पूर्वाभास है, जो एक समृद्ध व्यक्ति की विशेषताओं और वेल-बीइंग को रेखांकित करता है (Madeson, 2017)। Martin Seligman (2012) ने PERMA मॉडल के अंतर्गत वेल-बीइंग के 5 महत्त्वपूर्ण घटकों का उल्लेख किया है (सकारात्मक भावना, जुड़ाव, रिश्ते, अर्थ और उपलब्धि)। Seligman (2012-2018) के PERMA मॉडल में हेडोनिक (Hedonic) और यूडेमोनिक (Eudaimonic) दोनों घटक सम्मिलित हैं, जो इसे अन्य मॉडलों से अलग करता है (Rusk & Waters, 2015)। Kern व साथियों (2014) ने अपने अध्ययन में PERMA के प्रत्येक घटक और शारीरिक स्वास्थ्य, नौकरी संतुष्टि (Job Satisfaction), जीवन संतुष्टि (Life Satisfaction) और संगठनात्मक प्रतिबद्धता (Organisational commitment) के मध्य उच्च स्तर का धनात्मक सहसंबंध पाया। Seligman (2012) के अनुसार, वेल-बीइंग के इन पांच घटकों का उपयोग हम स्वयं के वेल-बीइंग को समझने के लिए करते हैं। PERMA के 5 घटक निम्नांकित हैं:

P: सकारात्मक भावनाएं (Positive Emotions): सकारात्मक भावनाओं में खुशी, कृतज्ञता, शांति, रुचि, प्रसन्नता, प्रेम, आशा और कई अन्य धनात्मक भावनाओं का मिश्रण होता है जो गहन और आनंददायक होता है। यह भावनाएँ हमारी चेतनता को बढ़ाती हैं और हमारी आंतरिक शक्ति का निर्माण करती हैं।

E: जुड़ाव (Engagement): यह मस्तिष्क की सर्वोच्च स्तर पर कार्य करने की क्षमता के लिए प्रयोग किया जाने वाला शब्द है। व्यक्ति कोई भी कार्य करते हुए पूरी तन्मयता से कार्य को सम्पादित करता है और कार्य के प्रति जुड़ाव महसूस करता है।

R: सम्बन्ध (Relationship): समाज में अन्य लोगों से हमारे अच्छे सम्बन्ध हमें सदैव मानसिक बल प्रदान करते हैं। ऐसे स्वास्थ्यपूर्ण सम्बन्ध रखने वाले लोग अपने जीवन में अधिक प्रसन्न होते हैं तथा संतुष्टि का अनुभव करते हैं।

M: अर्थ (Meaning): अर्थ का आशय है, जीवन में उद्देश्य की भावना। जब व्यक्ति का जीवन में कोई उद्देश्य होता है, और वह उसको पूर्ण करने के लिए प्रयासरत रहता है, तो यह भावना उसके वेल-बीइंग को मजबूत बनाती है।

A: उपलब्धि (Accomplishment): अपने कार्य पर गौरवान्वित महसूस करना तथा उपलब्धि प्राप्त करना।

3. **छह-कारक मॉडल (Six Factor Model):** मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग का छह-कारक मॉडल Carol Ryff (1989) द्वारा विकसित किया गया है। यह मॉडल केवल खुशी महसूस

 ISSN 0976-0849

करने पर आधारित नहीं है, बल्कि अरस्तू के एथिक्स पर भी आधारित है, "जहाँ जीवन का लक्ष्य अच्छा महसूस करना नहीं है, बल्कि सदाचार से जीना है।" Ryff (1989) ने प्रस्तुत मॉडल में छह कारकों का उल्लेख किया है, जो व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग, संतुष्टि और प्रसन्नता के स्तर को ऊंचा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उक्त छह कारक निम्नांकित हैं-

a. **आत्म स्वीकृति (Self Acceptance)** - अपनी कमजोरियों को स्वयं पहचानना और स्वीकार करना, साथ ही अपनी आंतरिक शक्तियों के प्रति भी भिज्ञ रहना, आत्म-स्वीकृति की भावना को प्रकट करता है।

b. **व्यक्तिगत विकास (Personal Growth)** - अपने विकास के बारे में चिंतन करना, नवीन मार्ग द्वारा भावनात्मक बुद्धिमत्ता तथा उत्पादकता को विकसित करना हमारे वेल-बीइंग और हैप्पीनेस को सही दिशा प्रदान करता है।

c. **जीवन का उद्देश्य (Purpose in life)** - जीवन के लिए उद्देश्यहीनता अनेक नकारात्मक विचारों को जन्म देती है। जीवन का एक लक्ष्य होना चाहिए और संपूर्ण रूप से यह ज्ञात होना चाहिए कि उस लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

d. **पर्यावरणीय निपुणता (Environmental mastery)** - पर्यावरणीय निपुणता में व्यक्ति अपने आसपास के वातावरण में हो रहे बदलाव में उचित रूप से ढल कर स्वयं को समायोजित कर लेता है।

e. **स्वायत्तता (Autonomy)** - जब विचारों की स्वतंत्रता हो और किसी प्रकार के दबाव के बिना उन्हें व्यक्त करने की क्षमता हो, उसे स्वायत्तता कहा जाता है। स्वायत्तता में निपुण व्यक्ति अपने किये गए व्यवहारों को नियंत्रित कर पाता है साथ ही उसमें व्यवहार के उचित मूल्यांकन कर लेने की क्षमता भी होती है।

f. **सकारात्मक संबंध (Positive relation)** - वेल-बीइंग का यह आयाम दूसरों से संबंधों के बारे में बताता है। प्रेम और सहानुभूति की भावना का सम्मिश्रण संबंधों को मजबूती प्रदान करता है। वैज्ञानिक रूप से यह पाया गया कि सामाजिक संबंधों में अलगाव एवं अकेलापन अनेक बीमारियों को आमंत्रण देता है। मजबूत भावनात्मक संबंध हैप्पीनेस के स्तर को बनाये रखने में सहायता प्रदान करते हैं।

मध्य प्रदेश के जनजातीय समाज में वेल-बीइंग:

भारतवर्ष का वह हिस्सा जो आज भी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पा

रहा है, फिर भी अपनी संतुष्टि और प्रसन्नता की एक अलग परिभाषा लिख रहा है, जिसे मध्य प्रदेश का Untouched Tribal Belt कहा जाता है। मध्य प्रदेश क्षेत्रफल के आधार पर भारत का सबसे बड़ा राज्य है, जो 308.245 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में अपनी अनूठी संस्कृति और सभ्यता को समावेशित किए हुए है। यदि मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले में बसे गांवों पर नजर डालें तो ज्ञात होता है कि इन गांवों में बसा जनजातीय समाज आज के वैज्ञानिक युग से बिल्कुल अछूता है। अमरकंटक के आसपास के क्षेत्र में लालपुर, लंका टोला, उमरगुहान, हिरना छापर, गर्जन बीजा जैसे गाँवों का उल्लेख मानचित्र पर पाना बहुधा कठिन होगा। गर्जन बीजा, लंका टोला जैसे स्थान मुख्य सड़क से 45-50 किमी अंदर हैं। टूटे और कच्चे रास्तों पर चल कर जाना अत्यंत दुर्गम है, यहाँ बिजली नहीं है। विषमताओं से भरे उनके जीवन में कठिन परिस्थितियों और अनेक प्रकार की परेशानियों का संगम देखने को मिलता है। औषधि, मौसम अनुकूल वस्त्र, शिक्षा, बिजली जैसी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी यहाँ दुर्लभ है। ऐसी कठिन और विपरीत परिस्थितियों में भी जनजातीय समुदाय के लोग भली-भांति अपना एवं अपने समुदाय का भरण पोषण करते हैं।

इन क्षेत्रों में जीवन के अपने एक अलग मायने हैं, जहाँ मानसिकता, संवेदनशीलता, और समरसता के माध्यम से संतुष्टि और खुशी की अनुभूति की जाती है। यहाँ के आदिवासी समुदायों की जीवनशैली, सामाजिक संबंध, प्रकृति से सम्बन्धित जीवनधारा और आत्म-प्रतिष्ठा के माध्यम से इन आदिवासी लोगों की वेल-बीइंग का मापन किया जा सकता है। इस क्षेत्र में खुशहाली का आशय गहनता, सम्पूर्णता, सामरिकता, और समृद्धि के साथ जुड़ा हुआ है, जो अन्य क्षेत्रों से सर्वथा भिन्न है। यहाँ के आदिवासी समुदायों का जीवन अपनी परंपरागत संगठन और मूल्यों पर आधारित है, जो उन्हें संतुष्ट, समृद्ध और अपनी खुशहाली के प्रति अनुकरणीय बनाता है। इन जनजातियों के संतुष्टिपूर्ण जीवन की व्याख्या उपरोक्त वर्णित वेल-बीइंग के मॉडल से नहीं किया जा सकता है।

जनजातीय परिवेश में आनंद और खुशी का ऐसा मिश्रण देखने को मिलता है जो उनके जीवन में संतुष्टि और प्रेम के रूप में दृष्टिगोचर होता है। जनजातीय समाज के लोग अपनी सांस्कृतिक धरोहर को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित करते हुए अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का ह्रास नहीं होने देते। ये मुख्यतः प्रकृति से जुड़ा समाज है, जो यह मानता है कि प्रकृति ही ईश्वर है। भूकंप, बाढ़, आंधी, अतिशय जल वर्षा इत्यादि प्रकृति के क्रोध के प्रतिफल हैं, प्रकृति को प्रसन्न रखने के लिए वे प्रायः लोकगीत और नृत्य द्वारा माँ प्रकृति की सेवा करते रहते हैं। उत्सव, नृत्य और उल्लास से परिपूर्ण जनजातीय समाज अपनी कठिन परिस्थितियों को सहज करना भली-भांति जानते हैं। खुशी और संतुष्टि से परिपूर्ण इनका जीवन एक महायोगी के समान समाज के लिए निरंतर प्रेरणा स्रोत का कार्य कर रहा है।

मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले में स्थित अमरकंटक एक धार्मिक स्थल है, जो प्रमुख तीर्थ

 ISSN 0976-0849

स्थल के रूप में ख्याति प्राप्त है। इस क्षेत्र में जनजातीय समाज व्यापक रूप से पाया जाता है। यहाँ हिरनाछापर, लंका टोला, ताली, दोनिया, गर्जन वीजा, बैग चक जैसे प्रमुख जनजातीय क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रें में बैगा, सहरिया, पनिका और गोंड जैसी मुख्य जनजातियाँ निवास करती हैं।

बैगा जनजाति : बैगा जनजाति का इतिहास सबसे पुराना है। बैगा जनजाति को पांड्या या पुजारी के रूप में स्वीकार किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि ईश्वर ने सबसे पहले नानगा बैगा और नानगा बैगिन को बनाया। एक अन्य मान्यता के अनुसार ईश्वर ने बैगा जनजाति को पृथ्वी के रक्षार्थ पैदा किया। इस जनजाति का मुख्य धर्म हिंदू धर्म है और वे अपने धार्मिक आदान-प्रदान, पूजा-पाठ और अन्य सांस्कृतिक परंपराओं को मान्यता देते हैं। बैगा को Medicinal man के रूप में जाना जाता है। जंगलों में पाई जाने वाली अनेक वनस्पतियों और औषधियों के बारे में बैगा जनजाति को संपूर्ण ज्ञान है जिसके आधार पर वे सदियों से अनेक रोगों का निवारण करते आ रहे हैं।

सहरिया जनजाति : सहरिया जनजाति का संबंध द्रविड़ समुदाय से है। सहरिया जनजाति को रामायण के पात्र शबरी का वंशज माना गया है। सहरिया का अर्थ है 'बाघ का साथी।' यह जंगली जानवरों के सहचर होते है। सहरिया जनजाति के लोग अपनी परंपरागत आदिवासी संस्कृति को बहुत महत्त्व देते हैं। वे अपने लोक गीतों, नृत्य, कथाएं और जीवनशैली के लिए प्रसिद्ध हैं। सहरिया जनजाति अपने आप को प्रथम आदिवासी मानते हैं तथा उनके समूह में अन्य जनजातीय समुदाय की भांति गौरव और स्वाभिमान परिलक्षित होता है। प्रायः यह समुदाय अपने आपको अन्य लोगों से अलग रखना पसंद करते हैं।

पनिका जनजाति : पनिका मुख्यतः पारंपरिक बुनकार हैं जो कपड़ा बुनते हैं और कृषि का कार्य करते हैं। यह समुदाय अपनी ईमानदारी, प्रतिबद्धता और बहादुरी के लिए जाने जाते हैं। यह जनजाति सूरज, चंद्र, नदी, वृक्ष, पृथ्वी की पूजा करते हैं और मांगलिक अवसरों पर नृत्य और संगीत के माध्यम से माँ प्रकृति की आराधना करते हैं।

गोंड जनजाति : गोंड जनजाति सबसे बड़े जनजातीय समुदायों में से एक है। द्रविड़ समुदाय से सम्बद्ध यह जनजाति जंगलों, नदियों के किनारे अथवा घाटियों में निवास करती हैं। गोंड जनजाति के लोगों में नृत्य कला, लोकगीत, शृंगार और भिन्न भिन्न प्रकार के नाटक का बहुत प्रचलन है। कर्मा, रीना, सुआ गीत, ददरिया, ऋग इत्यादि लोकगीत विभिन्न त्योहारों पर गाए जाते हैं। जनजातीय समाज का इतिहास उनकी विभिन्न क्षेत्रों में कलाएं ज्ञान प्रणाली अनुष्ठान यह सब उनके पर्यावरण से गहराई से जुड़े होने का प्रमाण देते हैं।

जनजातीय समाज के लोग एकजुट समुदाय के रूप में जंगलों में निवास करते हैं, जिसमें समान वंश, भाषा और संस्कृति का पारस्परिक समावेश होता है और वह अपनी संतुष्टि व खुशी के

लिए स्वयं को जिम्मेदार मानते हैं। एक अध्ययन में आन्तरिक नियन्त्रण की स्थिति व वेल-बीइंग के मध्य उच्च सहसम्बन्ध पाया गया (Spector और साथी, 2001), जिससे यह प्रतीत होता है कि जनजातीय समुदाय के लोग अपनी संतुष्टि व खुशी के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानते हैं। अन्य अध्ययनों में Self-efficacy का भी वेल-बीइंग के साथ धनात्मक सहसंबंध पाया गया है (Singh & Udainiya, 2009)।

आन्तरिक नियन्त्रण स्थिति तथा अवसाद के बीच नकारात्मक संबंध पाया गया है (Lester, 1992; Young, 1992)। ये अपनी और अपने आने वाले जीवन की परिस्थितियों पर नियंत्रण रखने का प्रयास करते हैं तथा अपनी संस्कृति तथा सभ्यता को बचाने का हर संभव प्रयास करते हैं। यह समाज अपने आप को प्रकृति और भूमि से जुड़ा हुआ पाता है। आपसी सामंजस्य व समझदारी तथा एक दूसरे का साथ देना इनकी संस्कृति की मूलभूत कड़ी है। जनजातीय समुदाय के लोगों की खुशी और संतुष्टि उच्चतम स्तर पर है। इस अध्ययन के दौरान उक्त जनजातीय समुदाय के मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग तथा हैप्पीनेस को विस्तार से समझने के लिए एक पायलट अध्ययन पर आधारित अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार का आयोजन किया गया। कुल 30 जनजातीय लोगों के आंकड़ों को एकत्रित किया गया तथा सभी आंकड़ों की रिकॉर्डिंग और पुनर्लेखन कर उसका विश्लेषण किया गया। विश्लेषण में जनजातीय समुदाय के वेल-बीइंग से जुड़े कुछ महत्त्वपूर्ण कारकों की पहचान की गयी, जो जनजातीय समाज के वेल-बीइंग के उच्च स्तर को निरूपित करता है। ये कारक निम्नलिखित हैं–

a. जनजातीय प्रतीक
b. धार्मिक संस्कार
c. सामाजिक-आर्थिक स्थिति
d. समृद्ध संस्कृति
e. समुदायिक जुड़ाव
f. न्यूनतमकरण
g. प्रकृति का सामीप्य

जनजातीय समुदाय में वेल बीइंग को प्रभावित करने वाले कारकः

a. **जनजातीय प्रतीक :** जनजातीय समाज में जनजातीय प्रतीक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जनजातीय प्रतीक उनकी ऐतिहासिक परंपरा और सांस्कृतिक विरासत को परिलक्षित करता है। इन प्रतीकों का उपयोग जनजातीय समुदाय की पहचान, गर्व और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए किया जाता है। इन प्रतीकों में गोदना (टैटू) अत्यधिक प्रचलित है। गोदना का

 ISSN 0976-0849

शाब्दिक अर्थ है चुभाना। इस प्रथा में सुई द्वारा शरीर के हिस्से को बार-बार चुभाकर काले या नीले रंग की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। गोदना प्रथा जनजातीय समाज के बैगा समाज में सर्वाधिक प्रचलित है। ये लोग प्रकृति से संबंधित पैटर्न यथा– अग्नि, फूल, रथ, पेड़, मुर्गा एवं मुर्गी के जोड़े इत्यादि को को अपने शरीर गुदवाते हैं। जनजातीय समाज में गोदना को सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है।

जनजातीय समाज की मान्यता है कि हमारे कर्म इस संसार में रह जाते हैं और मरणोपरांत शरीर पर गुदा हुआ यह प्रतीक साथ जाता है। इस समाज में गोदना जाति-सूचक और गहने का पर्याय माना जाता है। गोदना गुदवाते समय ये ईश्वर का आह्वान करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि जीवन में खुशहाली बनी रहे, जीवन में हमसे कोई भूल ना हो एवं हम सदैव भलाई के मार्ग पर चलते रहें। जनजातीय समुदाय गोदना में राम का नाम भी लिखवाते हैं। ऐसी मान्यता है कि यह भगवान राम का हस्ताक्षर है। इस प्रथा का प्रारंभ सामुदायिकता की भावना और अपने कुनबे की पहचान के लिए किया गया था (Chaturvedi, 2019)। गोदना जैसे जनजातीय प्रतीकों के कारण इस समुदाय के लोग अपने व्यवहार को सरल एवं सकारात्मक रखते हैं।

b. धार्मिक संस्कार : जनजातीय समुदाय का अपना विशिष्ट धार्मिक संस्कार है, जो उनके रहन-सहन, आचार-विचार, आदतों और धार्मिक अनुष्ठानों से परिलक्षित होता है। ये वन्य जीवों और प्रकृति को पूजते हैं। हरियाली अमावस्या, नवा खाई, अनाज बोने का धार्मिक संस्कार, दसगात, बिदरी पूजा, मड़ई पूजा इत्यादि सभी संस्कारों से जनजातीय समुदाय एक जुट होकर सभी नियमों का पालन करते हैं। अपने संस्कारों से जुड़े रहने के कारण मानसिक रूप से सबल बनते हैं (Moreira & Almeida, 2006)। धर्म और संस्कारों का पालन जीवन में संतुष्टि स्तर को बढ़ावा देता है। धर्म में आस्था रखने से जीवन की संतुष्टि में वृद्धि होती है (Poloma & Pendleton, 1990)। Hunsberger (1985) ने अपने अध्ययन में पाया कि धर्म में मजबूत आस्था रखने वाले लोगों में संतुष्टि का स्तर बहुत अधिक होता है। धर्म से जुड़ने के कारण अवसाद आत्महत्या की भावनाओं से मुक्ति मिलती है (Suzuki एवं साथी, 2006)। Chamberlain & Zika (1992) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह परिणाम प्राप्त किया कि धार्मिक सहभागिता से सकारात्मक भावनाओं को मजबूती मिलती है तथा धार्मिक विश्वास के कारण वेल-बीइंग और सकारात्मक भावनाओं के बीच धनात्मक संबंध पाया जाता है। उक्त अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि धार्मिक संस्कार के माध्यम से जनजातीय समुदाय के वेलबीइंग के स्तर में उन्नति परिलक्षित होती है।

c. **सामाजिक आर्थिक स्थिति :** जनजातीय समुदाय के सभी व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति लगभग एक समान होने के कारण लोग सामूहिक समानता का अनुभव करते हैं। समुदाय के सभी लोग अपने सुख-दु:ख को एक दूसरे से साझा करते हैं तथा उसे समझने में सक्षम होते हैं। उनकी आय का प्रमुख स्रोत कृषि और पशुपालन ही है। उच्च आय और निम्न आय का अंतर जनजातीय समुदाय में नहीं पाया जाता है। सामान्यत: यह पाया गया है कि समय-समय पर बढ़ती आय और उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वेल-बीइंग की भावना को सकारात्मक ढंग से प्रभावित करती है (Kaplan et.al., 2008)। Livingston et.al. (2022) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि लोगों के बीच भेदभाव, सामाजिक संबंध, रोजगार, आस-पास का वातावरण और धन की कमी जैसे कारक वेल-बीइंग को स्थापित करने के महत्त्वपूर्ण कारक हैं। यद्यपि उपर्युक्त अध्ययन यह दर्शाते हैं कि उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति के लोगों की वेल-बीइंग का स्तर उच्च होता है तथापि जनजातीय समुदाय इसका अपवाद है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इनके समुदाय के सभी लोगों की आर्थिक स्थिति एक जैसी होती है तथा सामाजिक और आर्थिक स्थिति को उन्नत बनाने की प्रतिस्पर्धा भी इनमें नहीं होती। इनमें सहकारिता की भावना प्रबल तथा प्रतिस्पर्धा की भावना नगण्य होती है। ये कम संसाधनों में ही संतुष्ट रहते हैं। यही कारण है कि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के होने के बावजूद भी जनजातीय समुदाय के लोगों के वेल-बीइंग का स्तर उच्च होता है।

d. **समृद्ध संस्कृति :** जनजातीय समुदायों में प्रकृति का संरक्षण उनकी संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। जनजातीय समुदायों में पृथ्वी की पूजा मांगलिक अवसरों पर सबसे पहले की जाती है। इसके अतिरिक्त उन्हें शिव शंकर, नागदेव, गो माता, वाघ देवता, गनसम देव आदि की पूजा करनी होती है। उनकी मान्यता है कि ये देवताएं जंगली जीवों से उनकी सुरक्षा करेंगे। संस्कृति से जुड़ाव, तथा अपने दुखों को ईश्वर के सहारे छोड़ देना, उनको निश्चित और संतुष्ट बनाता है (Ellison, 1991)। जनजातियों की संस्कृति में स्थानीय मूल्य, सामाजिक न्याय और प्रकृति से संबंधित ज्ञान और सूचना सम्मिलित है। जनजातियों की समृद्ध संस्कृति उनके अपने जीवन शैली, आदिवासी जीवनधारा, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचानी जाने वाली परंपराएं और उनकी सामाजिक एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया को दर्शाती है। यही समृद्ध संस्कृति जनजातियों के वेल-बीइंग के स्तर को ऊंचा करती है। Ye et.al., (2015) ने भी अपने अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि समृद्ध संस्कृति वेल-बीइंग और हैप्पीनेस का एक महत्त्वपूर्ण कारक है।

e. **सामुदायिक जुड़ाव :** जनजातीय समुदाय के लोग अक्सर सामुदायिक रूप से जीवन व्यतीत

 ISSN 0976-0849

करते हैं। सामुदायिक जुड़ाव जनजातीय समुदायों को उनकी समस्याओं, आवश्यकताओं, और विकास के मुद्दों को साझा करने का माध्यम प्रदान करता है। सामुदायिक जुड़ाव जनजातीय समुदाय को संरक्षित रखने तथा संवर्धित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जनजातीय समाज में लोग सुख और दु:ख के अवसरों पर एक दूसरे के साथ खड़े रहते हैं। इस साझेदारी के कारण लोगों की वेल-बीइंग के स्तर में वृद्धि होती है। वे एक दूसरे को समान समझते हैं जिससे इनमें आपसी सहयोग, समरसता और आपसी समझ की भावना विकसित होती है। सहकारिता और सामाजिक समर्थन (social support) वेल-बीइंग को प्रभावित तथा निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है (Josefsson, 2011)।

f. **न्यूनतमकरण :** न्यूनतमकरण का अर्थ होता है किसी वस्तु को उसके न्यूनतम या आवश्यकता के अनुरूप मात्रा में संग्रहित करना, अर्थात जीवन से अनावश्यक तत्त्वों को हटाकर उसे सरल और संक्षेपित करना, अपनी आवश्यकताओं को समझना और उसी के अनुरूप संग्रह करना। वस्तुत: न्यूनतमकरण वेल-बीइंग के स्तर को धनात्मक रूप से प्रभावित करता है (Hook et.al., 2023)। Elwin (1939) के अनुसार "बैगा का घर बहुत छोटा होता है, लेकिन यह अक्सर काफी आरामदायक होता है और हमेशा साफ-सुथरा रहता है। घर का ज्यादातर सामान छत से लटका रहता है और लगातार आग के धुएं से तैलीय और काला हो जाता है।"

जनजातीय समुदाय आवश्यक वस्तुओं के संग्रह पर विश्वास रखते है तथा आवश्यकता से अधिक मात्रा में संचय नहीं करते। कुछ NGO के लोग यदि इन्हें वस्त्र वितरित करते हैं तो बहुत संकोच करते हुए ये केवल एक ही वस्त्र का चयन करते हैं और यदि उन्हें और वस्त्र लेने को प्रेरित किया जाता है तो लेने से इनकार कर देते हैं। वस्तुओं का अनावश्यक संग्रह इन्हें धनार्जन के दबाव से दूर रखता है। परिणामत: ये धनोपार्जन से जुड़े प्रतिबल से भी बचे रहते हैं।

g. **प्रकृति का सामीप्य :** जनजातीय लोग प्राय: जंगल और जमीन से जुड़े होते हैं। पेड़ों से इनका लगाव रहता है। यह पेड़ पर लगे सभी फलों को नहीं खाते। ऐसी मान्यता है कि फल पर अधिकार पेड़ का है, हमारा नहीं। यदि सभी फल तोड़ लिए जाएंगे तो उनकी वंशावली आगे कैसे बढ़ेगी और नए पौधे कैसे उगेंगे। यह समाज प्राकृतिक विधि से बीजों का संरक्षण करते हैं और अपने वातावरण को कोई नुकसान नहीं पहुँचाते। वातावरण को समृद्ध रखना भी वेल-बीइंग को प्रभावित करता है। भौतिक वातावरण जैसे अधिक शोर, भीड़-भाड़ से भरी सड़कें, पेड़ पौधों का अभाव, अपराध का डर इत्यादि का मनोवैज्ञानिक वेल-बीइंग पर विपरीत प्रभाव पड़ता है (Guite et.al., 2006)। बैगा जनजाति का मानना है की पृथ्वी

हमारी माता है और उसे बार-बार जोतना नहीं चाहिए। प्रकृति का संरक्षण और संवर्धन हमारे मानसिक स्वास्थ्य को सकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है (Mental health and nature report, 2021)। प्रकृति से जुड़ाव व्यक्ति के संज्ञानात्मक क्षमता को विकसित करता है, जो वेल-बीइंग का एक प्रमुख घटक है (Berman et.al., 2008)।

जनजातीय समुदाय के वेल-बीइंग से संबंधित धनात्मक कारकों की पहचान हो जाने पर शोध में उन कारकों का पता लगाना भी हमारा अभीष्ट है जो नगरीय समुदाय के वेल-बीइंग को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इस उद्देश्य से वाराणसी और दिल्ली शहर के 30 व्यक्तियों से टेलीफोन की सहायता से साक्षात्कार किया गया और उनसे उनके जीवन के संतुष्टि और प्रसन्नता में बाधा उत्पन्न करने वाले कारकों की चर्चा की गयी। साक्षात्कार से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर नगरीय समुदाय के वेल-बीइंग को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान की गयी, जिसका वर्णन निम्नलिखित है।

शहरीकरण व्यवस्था में वेल बीइंग को प्रभावित करने वाले कारक

a. **जनसंख्या वृद्धि :** शहरीकरण में जनसंख्या एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। बढ़ती हुई जनसंख्या न केवल अनेक चुनौतियों को पैदा करती है, अपितु मानसिक स्थिति पर भी अपना प्रभाव डालती है। जनसंख्या की वृद्धि के परिणामस्वरूप हर क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है। जनसाधारण को उनकी क्षमता के अनुरूप रोजगार मिलना नितांत कठिन हो रहा है। इससे तनाव स्तर में वृद्धि, मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव तथा वेल-बीइंग पर विपरीत प्रभाव देखने को मिल रहा है। समाज में अपनी स्थिति को दूसरों से बेहतर बनाने की प्रतिस्पर्धा तनाव की स्थिति पैदा कर रही है। परिणामत: तनाव की स्थिति का परिवार और समाज की ओर स्थानांतरण हो रहा है। इसके साथ ही शहरीकरण में उच्च जनसंख्या वातावरण पर भी दबाव डालती है। रोजगार के लिए ज्यादा लोगों का शहर में आना, वाहनों के उपयोग की वृद्धि, इंफ्रास्ट्रक्चर के तनाव, ऊर्जा और पानी के संकट आदि से अनेक समस्याएं पैदा हो रही हैं। इससे शहरवासियों को अधिकतम सुविधाएं प्राप्त करने में भी असमर्थता महसूस हो रही है, जो उनके खुशहाल जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

b. **सामाजिक-आर्थिक स्थिति :** शहरी परिवेश के लोगों में सामाजिक और आर्थिक स्तर पर असमानता पायी जाती है। इसके कारण, धन, संपत्ति, सामाजिक स्थान, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएं और आर्थिक अवसरों के बीच भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। सभी वर्ग की अपनी अपनी प्राथमिकताएँ और समस्याएँ हैं। एक वर्ग दूसरे के समस्याओं को न तो समझ पता है ना ही साझा कर पाता है। निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्ति के वेल-बीइंग पर

 ISSN 0976-0849

उसकी स्थिति का ज्यादा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

c. **वस्तुओं का संग्रह :** आधुनिक समय में वैज्ञानिक उपकरण हमारे दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। इन उपकरणों का उपयोग करना, वस्तुओं को संग्रहित करना और अधिक से अधिक तकनीकी उपकरणों का प्रयोग करना हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। भौतिक वस्तुओं के प्रयोग से प्रथम द्रष्टया सुविधाएं तो प्राप्त हो जाती हैं, परंतु उनकी व्यवस्था कर पाना सभी के लिए संभव नहीं होता। निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोगों के लिए भौतिक संसाधनों की प्रयोग सदैव चुनौतीपूर्ण होता है। दूसरों को भौतिक संसाधनों का प्रयोग करते देखकर उनमें हीन भावना उत्पन्न होती है, जो नि:संदेह वेल-बीइंग को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। भौतिक संसाधनों का प्रयोग व्यक्ति को शारीरिक रूप से कमजोर तथा निर्भर बना देती है। उदाहरण के लिए स्वभाविक मस्तिष्क के कार्य को डिजिटल सिस्टमों द्वारा करने से मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव हो रहा है और इसके परिणामस्वरूप तनाव की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

d. **शिक्षा :** शहर की भाग दौड़ भरी जिंदगी में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा धनोपार्जन के अत्यधिक दबाव के कारण व्यक्ति तनाव महसूस करता है। इसे पूरा करने का एक प्रभावी तरीका शिक्षा है। यही एक सुगम मार्ग है जो अधिक धनोपार्जन का द्योतक बन सकता है। परंतु शिक्षा प्राप्त करना आज के युग में खर्चीला भी है और विद्यार्थी को इसके लिए अपनी क्षमता से अधिक निष्पादन करने का अनावश्यक दबाव भी झेलना पड़ता है। ऐसे दबाव के कारण समकालीन समय में विद्यार्थियों द्वारा आत्महत्या के प्रयास की दर भी बढ़ी है। शिक्षा का दबाव और रोजगार की सीमित संभावनाओं का संयोग मानसिक स्वास्थ्य पर अपना बुरा प्रभाव डाल रहा है साथ ही मानसिक लोलुपता भी तनाव की स्थिति को पैदा कर रही है।

निष्कर्ष -

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अपनी स्थिति का आकलन करने पर पता चलता है कि जीवन के मूलभूत आवश्यकताओं के अर्थ या महत्त्व हमने बदल दिए हैं। हमारी मूलभूत आवश्यकताओं की सूची के प्रथम खंड में संतुष्टि, प्रेम, आनंद और खुशी का स्थान होना चाहिए। इन सभी भावनाओं की कमी में शहरीकरण का आधुनिक वैज्ञानिक युग वेल-बीइंग की कसौटी पर एक चुनौती का सामना कर रहा है। नगरीय समुदाय के लोगों की वेल-बीइंग में विभिन्न आयाम शामिल हैं, जिनमें स्वस्थ भौतिक वातावरण, मजबूत सामाजिक बुनियादी संरचना, आर्थिक अवसर, स्वास्थ्य सुरक्षा और साझेदारीपूर्ण शासन शामिल है। जनजातीय समुदाय के लोग वनों में साधारण जीवन व्यतीत करते हैं

और उन्हें अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, फिर भी वे अपने जीवन में खुश और संतुष्ट हैं। ये जनजातीय समुदाय आधुनिक समाज की चमक से दूर रहकर अपने जीवन को संयमित बनाए हुए है। उनके पास जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने का ज्ञान है। अपनी संस्कृति, सांस्कृतिक धरोहरों, परंपराओं आदि का पालन कर सामूहिकता एवं परस्पर सहयोग की भावना, प्रकृति का सामीप्य, लोभ, मोह और लालच से दूर, केवल सीमित आवश्यकताओं का संग्रह उन्हें जीवन में वास्तविक सुख प्रदान करता है, जिससे वे वास्तविक मानवीय मूल्यों से अपने जीवन को निखारते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भौतिक वस्तुओं की विविधता है और इसे पाने के लिए लोग नए-नए आयामों की प्राप्ति के लिए प्रयासरत हैं; अपने सामाजिक-आर्थिक अवस्था से उच्च अवस्था में जाने को लालायित हैं। इस अंधी दौड़ में हम जीवन के मूल मर्म वेल-बीइंग और हैप्पीनेस को खोते जा रहे हैं। आज आवश्यकता है कि हम जनजातीय समाज के लोगों से सुख और संतुष्टि भरा जीवन जीने की कला को सीखें; न कि भौतिक चकाचौंध को सुख का पर्याय समझ कर छद्म मूल्यांकन कर वास्तविक वेल-बीइंग से विमुख हो जाएं।

संदर्भ ग्रंथ:

Beiser, M. (1974). Components and Correlates of Mental Well-Being. *Journal of Health and Social Behavior*, *15*(4), 320–327. https://doi.org/10.2307/2137092

Berman, M. G., Jonides, J., & Kaplan, S. (2008). The cognitive benefits of interacting with nature. *Psychological Science*, *19*(12), 1207-1212. https://doi.org/10.1111/j.1467-9280.2008.02225.x

Busseri, M. A., & Sadava, S. W. (2011). A review of the tripartite structure of subjective well-being: Implications for conceptualization, operationalization, analysis, and synthesis. *Personality and Social Psychology Review*, *15*(3), 290-314. https://doi.org/10.1177/1088868310391271

Carruthers, C., & Hood, C. (2004). The Power of the Positive: Leisure & Well-Being. *Therapeutic Recreation Journal*, *38*(2), 225-245.

Chamberlain, K., & Zika, S. (1992). Religiosity, meaning in life, and psychological well-being. In J. F. Schumaker (Ed), *Religion and mental health* (pp. 138-148). New York: Oxford Press.

Chaturvedi, A. K. (2019). The social role of tattooing in Chhattisgarh. Retrieved from web on 12-06-2023 https://www.sahapedia.org/chatataisagadha-maen-gaodanaa-parathaa-social-role-tattooing-chhattisgarh

Diener, E. (1984). Subjective well-being. *Psychological Bulletin*, *95*(3), 542-575. https://psycnet.apa.org/doi/10.1037/0033-2909.95.3.542

Diener, E., & Suh, E. M. (1999). National differences in subjective well-being . In D. Kahneman, E. Diener, & N. Schwarz (Eds.), *Well-being: The foundations of hedonic psychology* (pp. 434-450). New York, NY: Russell Sage.

Ellison, C. G. (1991). Religious involvement and subjective well-being. *Journal of Health and Social Behavior*, *32*(1), 80-99. https://doi.org/10.2307/2136801

Elvin, V. (1939). *The Baiga.* London: John Murray. Retrieved from web https://indianculture.gov.in/ebooks/baiga-0

Guite, H. F., Clark, C., & Ackrill, G. (2006). The impact of the physical and urban environment on mental well-being. *Public health*, *120*(12), 1117-1126. https://doi.org/10.1016/j.puhe.2006.10.005

Hook, J. N., Hodge, A. S., Zhang, H., Van Tongeren, D. R., & Davis, D. E. (2023). Minimalism, voluntary simplicity, and well-being: A systematic review of the empirical literature. *The Journal of Positive Psychology*, *18*(1), 130-141. https://doi.org/10.1080/17439760.2021.1991450

Hunsberger, B. (1985). Religion, age, life satisfaction, and perceived sources of religiousness: A study of older persons. *Journal of Gerontology*, *40*(5), 615-620. https://doi.org/10.1093/geronj/40.5.615

Huta, V., & Waterman, A. S. (2014). Eudaimonia and its distinction from hedonia: Developing a classification and terminology for understanding conceptual and operational definitions. *Journal of Happiness Studies, 15*(6), 1425–1456.

Investigating Locus of Control, Self Efficacy and Wellbeing - The relationships between all items across 3 instruments for a single item scale. Quality Improvement Fund Bid – Final report. Retrieve from web, https://analysisfunction.civilservice.gov.uk/wp-content/uploads/2013/02/Janis-Scallon-report.pdf

Kaplan, G. A., Shema, S. J., & Leite, C. M. A. (2008). Socioeconomic determinants of psychological well-being: the role of income, income change, and income sources during the course of 29 years. *Annals of Epidemiology*, *18*(7), 531-537. https://doi.org/10.1016/j.annepidem.2008.03.006

Josefsson, K., Cloninger, C. R., Hintsanen, M., Jokela, M., Pulkki-Råback, L., & Keltikangas-Järvinen, L. (2011). Associations of personality profiles with various aspects of well-being: a population-based study. *Journal of Affective Disorders*, *133*(1-2), 265-273. https://doi.org/10.1016/j.jad.2011.03.023

Kern, M., Waters, L., Alder, A., & White, M. (2014). Assessing employee wellbeing in schools using a multifaceted approach: Associations with physical health, life satisfaction and professional thriving. *Psychology, 5*(6), 500–513. http://dx.doi.org/10.4236/psych.2014.56060

Lester, D. (1992). The emotions profile index and locus of control. *Perceptual and Motor Skills*, *75*(2), 530-530. https://doi.org/10.2466/pms.1992.75.2.530

Livingston, V., Jackson-Nevels, B., & Reddy, V. V. (2022). Social, Cultural, and Economic Determinants of Well-Being. Encyclopedia 2022, 2, 1183–1199.

Madeson, M. (2017). Seligman's PERMA+ Model Explained: A Theory of Wellbeing. Retrieved from web, https://positivepsychology.com/perma-model/#comment-list

Moreira-Almeida, A., Lotufo Neto, F., & Koenig, H. G. (2006). Religiousness and mental health: a review. *Brazilian Journal of Psychiatry*, *28*(3), 242-250. https://doi.org/10.1590/S1516-44462006005000006

Poloma, M. M., & Pendleton, B. F. (1990). Religious domains and general well-being. *Social Indicators Research*, *22*, 255-276. https://doi.org/10.1007/BF00301101

Rusk, R. D., & Waters, L. (2015). A psycho-social system approach to well-being: Empirically deriving the five domains of positive functioning. *The Journal of Positive Psychology*, *10*(2), 141-152. https://doi.org/10.1080/17439760.2014.920409

Ryff, C. D. (1989). Happiness is everything, or is it? Explorations on the meaning of psychological well-being. *Journal of Personality and Social Psychology, 57*(6), 1069–1081. https://doi.org/10.1037/0022-3514.57.6.1069

Schimmack, U. (2008). The structure of subjective well-being. In M. Eid & R. J. Larsen (Eds.), *The science of subjective wellbeing* (pp. 97-123). New York, NY: Guilford.

Seligman, M. (2018). PERMA and the building blocks of well-being. *The Journal of Positive Psychology*, *13*(4), 333-335. https://doi.org/10.1080/17439760.2018.1437466

Seligman, M. E. (2012). *Flourish: A visionary new understanding of happiness and well-being*. Atria Paperback.

Singh, B., & Udainiya, R. (2009). Self-efficacy and well-being of adolescents. *Journal of the Indian Academy of Applied Psychology, 35*(2), 227–232.

Spector, P. E., Cooper, C. L., Sanchez, J. I., O'Driscoll, M., Sparks, K., Bernin, P., ... & Yu, S. (2001). Do national levels of individualism and internal locus of control relate to well being: an ecological level international study. *Journal of Organizational Behavior: The International Journal of Industrial, Occupational and Organizational Psychology and Behavior*, *22*(8), 815-832.

Suzuki, L. A., Alexander, C. M., Lin, P. Y., & Duffy, K. M. (2006). Psychopathology in the schools: Multicultural factors that impact assessment and intervention. *Psychology in the Schools*, *43*(4), 429-438. https://doi.org/10.1002/pits.20157

Tov, W., & Diener, E. (2013). Subjective well-being. Retrieved from web, https://ink.library.smu.edu.sg/soss_research/1395

Ye, D., Ng, Y. K., & Lian, Y. (2015). Culture and happiness. *Social Indicators Research*, *123*, 519-547. https://doi.org/10.1007/s11205-014-0747-y

Young, T. J. (1992) Locus of control and self-reported psychopathology among Native Americans. *Social Behaviour and Personality, 20*(4), 235-236.

Author Details:

1. Smt. Pragya Mishra, Research Scholar, Department of Psychology, Indira Gandhi National Tribal University Amarkantak (MP), Email: pragya.igntu@gmail.com

2. Dr. Pragyesh Kumar Mishra, Assistant Professor (Supervisor of Mrs Pragya Mishra and Corresponding Author), Department of Psychology, Indira Gandhi National Tribal University Amarkantak (MP), Email: pragyesh.mishra@igntu.ac.in; Ph: +918840198103

3. Dr. Lalit Kumar Mishra, Associate Professor, Department of Psychology, Indira Gandhi National Tribal University Amarkantak (MP), Email: lalit.mishra@igntu.ac.in; Ph: +917389966630

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 126-131

भक्तिकाल की सामाजिक उपादेयता

डॉ. अखण्ड प्रताप सिंह*

सारांश- प्रस्तुत लेख भक्तिकाल की सामाजिक उपादेयता पर केन्द्रित है। भक्ति काव्य को हिंदी कविता का स्वर्ण युग माना जाता है, जिसका सीधा तात्पर्य है कि इस कालखंड में रचनात्मक क्षमता अपने श्रेष्ठतम रूप में है। भक्ति काव्य हिंदी समाज की चेतना का दस्तावेज है। कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, मीरा, रसखान इस युग के श्रेष्ठ कवि हैं। इसका सीधा और सरल अर्थ यह है कि यहां हिंदू, मुसलमान, ब्राह्मण, दलित, पुरुष, स्त्री समाज के सभी वर्गों का यह साझा रचना कर्म है। लोक चेतना का एक परिणाम लोक भाषाओं के बढ़ते महत्व में लक्षित हुआ और वे मनोभावों तथा हृदय उद्‌गारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगी। इन रचनाकर्मों को प्रस्तुत लेख में विधिवत वर्णन किया गया है।

बीज शब्द- भक्तिकाल, भारतवर्ष, राष्ट्र, भारतीय चिंतन धारा, वैदिक काल

प्रस्तावना-

हिंदी जीवन की व्यापक समरसता का अन्यतम प्रमाण है हिंदी का भक्ति काव्य। भक्ति काव्य हिंदी समाज की अनेक रूढ़ियों के बावजूद भी उसकी प्रबल जीवनी शक्ति का गतिशील और उज्जवल साक्ष्य है। सन् 1318 ई. से 1643 ई. तक का समय भक्तिकाल का माना जाता है। इस कालखंड में समूचे भारतवर्ष में भक्ति आंदोलन का प्रभाव रहा है। हिंदी साहित्य में ही नहीं, भारत वर्ष के इतिहास में भी भक्ति आंदोलन का विशेष महत्व है। हिंदी साहित्य में पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल कहने का सबसे बड़ा कारण यही था। भक्तिकाल में लोक जागृति का योगदान सुलभ रहा। अनुभव का आश्रय लेकर भक्ति साहित्य से श्रमण संस्कृति को बल और बढ़ावा मिला। व्यक्ति के उत्कर्ष के लिए आध्यात्मिक चेतना का सहारा लिया। लोक चेतना का एक परिणाम लोक भाषाओं के बढ़ते महत्व में लक्षित हुआ और वे मनोभावों तथा हृदय के उद्‌गारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगी। भक्तिकाल में सामाजिक, पारिवारिक एकता एवं रूढ़ि विरोध के माध्यम से जनमानस में जागृत पैदा करने का कार्य किया, जिसका व्यापक असर समाज पर पड़ता है। संभवतः इसी कारण

*सहायक आचार्य-हिन्दी, शहीद बंधू सिंह डिग्री कॉलेज, करमहा, सरदार नगर, गोरखपुर

भक्ति काव्य को जागरण काल भी कहा जाता है। आचार्यों ने जिस काव्य को राष्ट्र की शिराओं में रक्त संचार वाहक माना है तथा निम्न वर्ग को आत्मविश्वास से ओतप्रोत करने का स्रोत माना है। जो लोक जागरण का माध्यम बना। उसकी भूमिका का सांगोपांग मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है।

भक्ति की भावधारा का उदय-

भारतीय समाज के लिए जड़ता एवं ठहराव तथा विस्फोट के काल में 14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक लगातार बह रही भक्ति धारा एक आंदोलन का स्वरूप प्राप्त करती है। न ही यह धारा इस्लाम के प्रभाव के कारण आई और न ही बिजली की कौंध की तरह अस्तित्व में आती है, यह काव्य धारा भारतीय चिंतन धारा का सतत विकास है। उसकी जड़े सदियों पूर्व भारतीय संस्कारों, नीतियों एवं मूल्यों में व्याप्त है। वैदिक काल से लेकर 14वीं शताब्दी तक भारतीय मनीषा ने सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में न जाने कितने उतार-चढ़ाव का सामना किया एवं समय-समय पर समाज को नियंत्रित करने वाली शक्तियों में निरंतर परिवर्तन होता रहा जिसके परिणाम स्वरूप धर्म आध्यात्मिक आंदोलन के रूप में स्थापित हुआ। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति के उद्‌भव के संदर्भ में लिखा है कि "मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की यह भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में और फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में। असल बात यह है कि जिस बात को ग्रियर्सन ने बिजली की चमक के समान फैल जाना लिखा है वह ऐसा नहीं है उसके लिए सैकड़ों वर्षो से मेघ खंड एकत्र हो रहे थे।"[1]

भक्तिकाल की सामाजिक प्रासंगिकता-

भक्तिकाल के विश्लेषण से यह तथ्य ज्ञात होता है कि यह वह प्रथम स्थिति थी जब भारतीय समाज का आधार भूमि इतनी विशुद्ध हो चुकी है कि जाति, संप्रदाय, धर्म एवं अन्य सामाजिक भेद बहुत पीछे छूट गये। जैसा कि मुक्तिबोध का मानना है कि प्रथम बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए। प्रथम बार युगों-युगों से दमन और शोषण की शिकार जनता अभिजात वर्ग के सामने सिर उठा कर खड़ी हो सकी। भक्तिकाल की मूल चिंता आध्यात्मिक है। इसके बावजूद अगर वह हमें किसी कारण सर्वाधिक प्रभावित प्रेरित तथा आकर्षण के केंद्र में बना हुआ है तो वह अपनी सामाजिक दृष्टि के कारण। इस युग के संतो और भक्तों की आध्यात्मिक चिंता आकाशीय नहीं वरन भारतीय जीवन से ही उपजी है और इसी पर प्रतिष्ठित है।

भक्तिकाल को दो भागों में विभक्त किया गया है, प्रथम निर्गुण भक्ति धारा जिसे दो भागों में पहला संत काव्य धारा या ज्ञानाश्रयी शाखा, सूफी काव्य धारा या प्रेमाश्रयी शाखा दूसरा सगुण भक्ति इसके भी दो भाग हैं- कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा। इन चारों शाखाओं का विश्लेषण करने पर उसकी सामाजिक प्रासंगिकता को जाना जा सकता है।

 ISSN 0976-0849

भक्तिकाल के संत काव्य धारा की क्रांति चेतना का निर्माण बुद्ध, महावीर जैसे महापुरुषों के विचारों की परिणत की देन है। बुद्ध, महावीर आज महापुरुषों ने जिस विचार क्रांति का आरंभ किया था उसकी भावात्मक निष्पत्ति संत काव्य धारा में ही होती है। संत काव्य धारा में पहले समाज नियामक इसी विस्फोट स्थिति की तरफ ले जा रही थी जहां रोज अभिजात एवं सामंती समाज को खुली चुनौती मिल सके। कबीर, नानक, रैदास का ब्रह्म तमाम पारस्परिक धार्मिक मान्यताओं से ऊपर है और क्योंकि वह घट-घट में व्याप्त है। इसीलिए ब्रह्म साधकों के लिए ईश्वर के न्याय सत्य और ऐश्वर्य की सत्ता के अद्‌भुत मानवीय सत्ता की परिकल्पना सहज साध्य हो जाती है। कबीर का उद्‌घोष एक तरीके से सामान्य जड़ता पर प्रहार करता है। कबीरपंथी ज्ञान वालों पर करारा व्यंग करते हैं और समाज को उलझन से छुटकारा दिलाने का आत्मविश्वास भी प्रकट करते हैं-

"मेरा तेरा मनवा कैसे एक होई रे!
मैं कहता हौं आखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता सुरझावन हारी,
तू राख्यो अरुझाइ रे!"[2]

संत काव्य धारा ऐसे समाज की कल्पना करती है जिसमें धार्मिक रूढ़ि, परंपरागत अंधविश्वास, जातिगत, संप्रदायगत भेद एवं नाना प्रकार के कर्मकांडों के लिए कोई जगह नहीं है, जो समाज अपने अनुभव में अपनी संवेदना में ईमानदार है, श्रम शील है।

प्रवृत्ति में निवृत्ति वह समाज इन संतों के लिए काम्य है।

"पांड़े बूझि पियहू तुम पानी
जिहिं मिटिया के घर मह बैठे ता मह सिस्टस मानी
छपनकोटि जादव जहं भींजे मुनिजनन सहस अठासी
पैग पैग पैगम्बर गाड़ें सो सब सरि भौं माटी।"[3]

संत काव्य में अनुभूति की प्रमाणिकता अधिक है। संतों के खंडन में पीड़ित मानवता का आक्रोश है। समाज में ऊंच-नीच की भावना तथा वर्ण व्यवस्था का सबल विरोध करने वाले संतों ने हरिजन की श्रेष्ठतम जाति की प्रतिष्ठा की। जितने स्त्री-पुरुष हैं वह सब ईश्वर के रूप में, सारा जगत एक ही तत्वों से निर्मित है तो उसमें भेदभाव कैसा। पारस्परिक मतभेदों को समाप्त कर बिखरी हुई मानवता को जोड़ने का कार्य संतों द्वारा किया गया।

निर्गुण भक्ति की दूसरी शाखा सूफी काव्य प्रेमाख्यानक काव्य के नाम से जानी जाती है।

सूफियों ने प्रेम की एक ऐसी रसगंगा प्रवाहित की जिसमें हिंदू-मुस्लिम, शिक्षित-अशिक्षित, ऊंच-नीच सभी अवगाहन करके तृप्त हो गए। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "इन साधक कवियों ने अलौकिक प्रेम के बहाने उसे प्रेम तत्व का आभास दिया। जो प्रियतम ईश्वर से मिलने वाला है। प्रेम कहानियों का विषय तो वही साधारण होता था अर्थात किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी की अलौकिक सौंदर्य की बातें सुनकर प्रेम में पागल होना और घर बार छोड़कर निकल पड़ना तथा अनेक कष्ट और आपत्तियां झेल कर अंत में उस राजकुमारी को प्राप्त करना पर प्रेम की पीर की जो व्यंजना होती है और वह ऐसी विश्व व्यापक रूप में होती है कि वह प्रेम के इस लोक से परे दिखाई पड़ती है।"[4]

सूफी काव्य की जो धर्म ही जमीन है उसका सामाजिक मूल्यांकन अनिवार्यता है और उसके काव्य को प्रामाणिक रूप से खोलता है। आचार्य शिव कुमार मिश्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी ने जायसी के धर्मनिरपेक्ष दृष्टि को सराहा है। वस्तुतः सच्ची रचना शीलता की साक्ष्य, कथ्य की लोकधर्मी जमीन से मिल जाता है। जिस सामंती संस्कृति में नारी विजय की वस्तु थी और उसे पाने के लिए बड़े-बड़े युद्ध हुआ करते थे, उसे जायसी खुदा का दर्जा देते हैं और उसे पाने के लिए रत्न सेन राजसी वैभव त्याग कर जोगिया बाना धारण कर लेता है। जैसी अपनी कथा के इर्द-गिर्द समूचे भारतीय समाज की रीति-नीति, परंपरा, नैतिक मूल्य का चित्रण ऐसे करते हैं कि कथ्य के माध्यम से ही संप्रेषित होने वाला लोक समारोह बड़ी सरसता के साथ यहां की प्रकृति की जमीन को ज्ञापित करने लगता है।

भक्तिकाल की दूसरी काव्यधारा सगुण भक्ति धारा में कृष्ण भक्ति शाखा में कृष्ण भक्त कवियों द्वारा कृष्ण के सुरक्षा एवं क्रांतिधर्मी चरित्र का उद्घाटन मिलता है। सूर के काव्य में कृष्ण वह चरित्र है जो अपने समय के सामंती और अभिजात्य को घोषित चुनौती देता है। जिस कालखंड में मातृत्व गर्हित हो चला था। नारियां हरमो की वस्तु बन चुकी थी और विलासिता के कारण राजाओं का ध्यान अपनी प्रजा की तरफ एकदम नहीं जाता था, उस कालखंड में सूरदास अपनी ईमानदारी एवं चरम संवेदनशील रचना शीलता का साक्ष्य देते हुए यशोदा जैसी मां की प्रतिष्ठा करते हैं।

"जशोदा हरि पालने झुलावै
हलारावै दुलाराइ मल्हावैं जोइ सोई कछु गावैं।।"[5]

शिशु को ब्रह्म रूप में चित्रित कर सूरदास मानवीय संवेदना के कोमल तंतु पर उंगली रखते हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में भक्ति, काव्य और संगीत का ऐसा संगोपांग चित्रण है जिसके प्रवाह में व्यापक धार्मिक असहिष्णुता के उस कठिन समय के बीच जीने की चाह बनी रहने दी। आचार्य शुक्ल ने लिखा भी है कि "कृष्ण उपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी।"[6]

 ISSN 0976-0849

सगुण भक्ति की दूसरी शाखा राम भक्तों की है। राम काव्य परंपरा को आगे बढ़ाने वाले महत्वपूर्ण कवियों में रामानंद के बाद अग्रदास, ईश्वरदास, गोस्वामी तुलसीदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान, लालदास, का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। राम भक्त कवियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की शील शक्ति एवं सौन्दर्य से मंडित अलौकिक व्यक्तित्व के विविध रूपों का चित्रण किया। राम भक्त कवियों की मूल भावना लोकमंगल और समाज कल्याण से प्रेरित है, इनके राम दुखी जनों के रक्षक और उद्धारक हैं अत्याचारियों तथा आसुरी शक्तियों के संहारक हैं, तुलसी अपनी रचना का उद्देश्य ही गंगा के समान सबका कल्याण करना मानते हैं–

"कीरति भनिति भूति भलि सोई
सुरसर सम सबकह हित होई।"[7]

लोकमंगल की भावना के कारण ही तुलसी ब्राह्मण और शूद्र को गले मिलवाते हैं–

"रामसखा बरबस ऋषि भेंटा
जनिमहि लुटत सनेह समेटा।"[8]

राम भक्ति काव्य में हर क्षेत्र में एक प्रकार की मर्यादा, आदर्श और नैतिकता विद्यमान है, पिता, पुत्र, मां, पति-पत्नी, भाई, सेवक, राजा, प्रजा सभी की गतिविधियां मर्यादा और आदर्श से प्रेरित हैं।

तुलसीदास की रचनाओं में तत्कालीन समाज का बहुत ही सजीव और यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है। उस समाज की वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था की अभिशाप तुलसी ने स्वयं भोगे थे, इसलिए वे अपने आक्रोश को चुनौतीपूर्ण ढंग से व्यक्त कर सकें–

"धूत कहो अवधूत कहो रजपूत कहो जुलहा कहो कोऊ
काहू की बेटी सोबेटा नव्याहब काहू के जातिबिगार नसोऊ
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को जाको रुचे से कहै कछुओऊ
मांगिके खैबू मसीद के सोइबोलेबे के एक न देबेको दोऊ।"[9]

उपसंहार

भक्तिकाल का कवि समाज एवं सामाजिक अनुभूतियों से जुड़े यथार्थ को प्रकट करते हैं। इन कवियों में वर्ण्य– विषय वस्तु अलग-अलग हो सकते हैं लेकिन वे समाज को संपृक्त रखने में विश्वास रखते हैं। उनकी रचनाओं से समाज में एक ऐसी चेतना का संचार होता है, जिससे समाज सीख कर समरस और लोकतांत्रिक बन सकता है। भक्तिकालीन कवियों सूर, तुलसी, कबीर, जायसी, मीरा और रसखान में जिस तरीके से प्रेमतत्व, मानव कल्याण, असहिष्णुता, जातीयता का विरोध स्पष्ट

रूप से दिखाई देता है, वह समाज के लिए स्पृहणीय है। इस कालखंड में व्यापक मानवीय संवेदना के साथ व्यवस्थाओं को चुनौती देने का भी एक स्वर है, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए एक तरीके का संदेश है। भक्तिकाल के रहस्यवादी कवियों ने लोक जागरण में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। इन कवियों ने मनुष्य में ब्रह्म सत्ता का साक्षात्कार करके मानव धर्म का मार्ग ही प्रशस्त किया, वही जायसी सूफी हो ना हो वह कवि अवश्य हैं, वह प्रेम के कवि हैं और धर्मनिरपेक्ष मानसिकता के कवि हैं। कृष्ण भक्ति काव्य जहां गृहस्थ धर्म का काव्य है वही राम भक्ति शील, शौर्य और सौन्दर्य का काव्य है, साथ ही साथ पारिवारिक मर्यादा को उजागर करता है। इसलिए हम कह सकते हैं की भक्तिकाल की सामाजिक उपादेयता दिग दिगंतर रहेगी और आने वाली पीढ़ियां उससे सीख कर लाभान्वित होंगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, 22वाँ संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018 ई., पृष्ठ 59
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर (27वाँ संस्करण), राजकमल प्रकाशन, 2020 ई., पृष्ठ 134
3. तत्रैव, पृष्ठ 242
4. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारणी सभा (प्रथम संस्करण), 1929 ई., पृष्ठ 50
5. वर्मा, धीरेंद्र (संपादक), सूरसागर सटीक, लोक भारती प्रकाशन (प्रथम संस्करण), 2019 ई., पृष्ठ 50
6. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, भ्रमरगीत सार, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1926 ई., पृष्ठ–भूमिका
7. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1998 ई., पृष्ठ 38
8. तत्रैव, पृष्ठ 241
9. तुलसीदास, कवितावली, कान्हा पब्लिकेशन, आगरा, 1998 ई., पृष्ठ 145

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 132-140

समावेशी विकास और उसके आयाम

डॉ. हनुमान प्रसाद उपाध्याय*

सारांशः भारत लंबे समय से सतत विकास के पथ पर आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा है तथा इसके मूल तत्व को अपनी नीतियों में सम्मिलित करता आ रहा है। यह नीतियां मुद्दों के चाहे किसी भी पहलू से संबंधित हों लेकिन बेहतर रणनीति तथा व्यापक व्यवस्था द्वारा सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयास लगातार चलता रहा है। प्रत्येक व्यक्ति तथा समाज की वर्तमान आवश्यकताओं के साथ उनके भविष्य की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना सतत विकास है। भारत जैसे देश में सतत विकास के लक्ष्य की प्राप्ति के निर्णय निर्माण में व्यापक जन भागीदारी तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को मूलभूत आधार माना जाता है। अतः सामाजिक समानता के साथ पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में समाज तथा व्यक्तियों की पारस्परिक भागीदारी, सहयोग तथा योगदान की विशेष आवश्यकता है। तभी सतत विकास के लक्ष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है।

बीजशब्दः पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधन, तकनीकी विकास, मानवीय गतिविधियाँ, आर्थिक विकास, मानव विकास सूचकांक।

प्रस्तावना

मानव एक जिज्ञासु एवं महत्वाकांक्षी प्राणी है। अपनी इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण वह नित नई ऊँचाइयों को छूता रहा है, अर्थात विकास पथ पर आगे बढ़ता रहा है। आर्थिक विकास का अन्तिम तथा मूल उद्देश्य मानव विकास व समाज का कल्याण अधिकतम करना है। पर अधिकतम कल्याण की प्राप्ति तभी संभव है जब विकास से उत्पन्न फल का सभी में समान वितरण हो। सैद्धान्तिक शब्दों में विकास से प्राप्त सीमान्त लाभ सबके लिए समान हो। समावेशी विकास की अवधारणा मूलतः इसी पर आधारित है। यह विकास की ऐसी रणनीति है जो सभी को विशेषकर गरीब व वंचित वर्गों को विकास की मुख्य धारा में जोड़ने से संबंधित है।[1]

आर्थिक वृद्धि तथा विकास पूर्व प्रचलित अवधारणाएं है, जिसमें आर्थिक वृद्धि (Economic

*अध्यक्ष-समाजशास्त्र विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूषण, गोरखपुर

Growth) विकास का परिमाणात्मक (Quantitative) पहलू है, जिसे जी.एन.पी., जी.डी.पी. या प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि के आधार पर मापा जाता है तथा आर्थिक विकास (Economic Development) विकास का गुणात्मक (Qualitative) पहलू है, जिसे जीवन की गुणवता में होने वाले सुधार के आधार पर मापा जाता है। इसका सबसे विश्वसनीय माप मानव विकास सूचकांक (HDI) है। वहीं पर समावेशी विकास विकास का वितरणात्मक (Distributive) पहलू है, जो न केवल ऊँची वृद्धि दर (उच्च उत्पादन) तथा जीवन की गुणवत्ता में सुधार (उच्च HDI) से संबंधित है बल्कि समाज का एक बड़ा वर्ग जो गरीब व आवश्यक आवश्यकताओं की संतुष्टि से वंचित है, उन्हें लाभान्वित करने से भी संबंधित है।[2]

अर्थ व परिभाषा–

समावेशी विकास एक बहुत ही व्यापक अवधारणा है जिसमें समाज के सभी वर्गों,[1] सभी क्षेत्रों [2] तथा सभी घटकों की विकास में भागीदारी सुनिश्चित होती है। इस प्रकार विकास की मुख्य धारा में सबको जोड़ना अर्थात 'सबका साथ सबका विकास' जैसे आदर्श की पूर्ति करना ही समावेशी विकास कहलाता है।[3] संक्षेप में–

समावेशी विकास = सभी वर्गों + सभी क्षेत्रों + सभी घटकों का विकास में भागीदारी

समोवशी विकास के अर्थ को और स्पष्ट करने के लिये इसे 3 भागों में बाँटा जा सकता है–

1. आर्थिक समावेशीकरण (Economic Inclusion) जिसे समावेशी अर्थतन्त्र या अर्थव्यवस्था भी कह सकते हैं।
2. राजनैतिक समावेशीकरण (Political Inclusion) जिसे समावेशी लोकतन्त्र भी कहते हैं।
3. सामाजिक या सांस्कृतिक समावेशीकरण (Cultural Inclusion) जिसे समावेशी समाज या साझी संस्कृति भी कह सकते हैं।

समावेशी अर्थतन्त्र से तात्पर्य ऐसी अर्थव्यवस्था से है जिसमें आर्थिक विषमता न हो। आर्थिक विषमता के मुख्यत: 4 घटक हैं–

i) भुखमरी (Hunger)
ii) कुपोषण (Malnutrition)
iii) गरीबी (Poverty)
iv) बेरोजगारी (Unemplomeny)

इनका अभाव ही आर्थिक समावेशीकरण कहलाता है क्योंकि जब आवश्यक संसाधनों की सब तक पहुँच हो जाती है. जैसे-रोटी, कपड़ा, मकान, पढ़ाई, दवाई निश्चित रूप से आर्थिक

 ISSN 0976-0849

समावेशीकरण हो जाता है अर्थात समावेशी अर्थव्यवस्था तब हम कहेंगे जब आवश्यक संसाधनों तक सबकी पहुँच हो जाती है।[4] आर्थिक समावेशीकरण में ही वित्तीय समावेशीकरण (Financial Inclusion) भी समाहित है। RBI (रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया) के अनुसार "वित्तीय समावेशन से अभिप्राय अल्प आय तथा कमजोर वर्ग के उस बड़े समूह को जो सामान्य रूप से प्रचलित बैंकिंग प्रणाली से बैंकिंग सेवा तथा लाभ प्राप्त करने से वंचित रह जाता है वहनीय लागत पर बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध कराना है।" राजनैतिक समावेशीकरण से तात्पर्य जब शासन में सभी वर्गों मुख्यत कमजोर (SC/ST/OBC/अल्पसंख्यक) व वंचित वर्गों (महिलाओं व दिव्यांगों) की भी भगीदारी हो। अर्थात शासन-सत्ता में जब सबकी पहुँच होती है तथा सभी को भागीदारी प्राप्त होती है तो उसे ही राजनैतिक समावेशीकरण या समावेशी लोकतन्त्र कहा जाता है।[5]

सामाजिक समावेशीकरण या समावेशी समाज से तात्पर्य जब सामाजिक प्रतिष्ठा में सबकी भागीदारी हो, सम्मान का समान बँटवारा हो, सम्मान तक सबकी समान पहुँच हो और सामाजिक भेदभाव समाप्त हो जाय तो उसे समावेशी समाज की संज्ञा दी जाती है। सामाजिक समावेशन यह अपेक्षा रखता है कि समाज के अन्तिम व्यक्ति को समाज में वही दर्जा प्राप्त हो, जो "प्रथम व्यक्ति" को प्राप्त है।

इस प्रकार जब उक्त तीनों को मिला दिया जाता है तो उसे समावेशी विकास की संज्ञा दी जाती है अर्थात समावेशी अर्थतन्त्र, समावेशी लोकतन्त्र तथा समावेशी समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति हो जाना समावेशी विकास है।[6]

विकास का परिदृश्य

विकास-शब्द के अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग अर्थ होते हैं। इसका मतलब किसी व्यक्ति का शारीरिक या मानसिक विकास हो सकता है। किसी शोधकर्ता के लिए किसी अवधारणा या सिद्धांत का विकास या किसी नृत्य निर्देशक के लिए विषयवस्तु विकसित करना हो सकता है। एक राष्ट्र के संदर्भ में विकास का दृष्टिकोण व्यापक है। इसका मतलब देश की अर्थव्यवस्था से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों में सुधार, आम आदमी की रोजमर्रा की जिंदगी को प्रभावित करने वाले मुद्दे का समाधान, बाल विकास, लैंगिक न्याय आदि है। इसके लिए समावेशी विकास आवश्यक है। युवा किसी भी देश का भविष्य है और उनका सशक्तिकरण देश के विकास के लिए जरूरी है। भारत के पास आज जनांकिक लाभांश का फायदा भी है और इस ताकत का उपयोग किया जाना चाहिए, ताकि देश आगे बढ़ सके। युवाओं के लिए शिक्षा, कौशल विकास, रोजगार और स्वरोजगार के अवसर पैदा करने वाली नीतियाँ और कार्यक्रम मौजूदा वक्त की जरूरत है।[7] लैंगिक न्याय सुनिश्चित करना और प्राथमिकता के स्तर पर महिलाओं का सशक्तिकरण भी देश के विकास

में एक अहम पहलू है।

सुशासन के लिए समावेशी विकास

संयुक्त राष्ट्र में सुशासन के आठ स्तंभ बताए हैं। ये हैं सहमति आधारित, जवाबदेह, पारदर्शी, उत्तरदाई, समान और समावेशी, प्रभावशाली और कुशल, कानून सम्मत शासन और समुचित भागीदारी। सतत विकास लक्ष्यों में भी लक्ष्य-16 सीधे इससे जुड़ा माना जा सकता है क्योंकि यह प्रशासन, समावेशन, भागीदारी, अधिकारों और सुरक्षा में सुधार के लिए समर्पित है।[8]

न्यायिक सुधार

प्रशासन में सुधार की अवधारणा मुख्य रूप से प्रशासनिक व्यवस्था, कानूनी न्यायिक प्रणाली तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने में सुधरों से जुड़ी है। देश के सामाजिक आर्थिक ताने-बाने में बदलाव, सेवाओं की आपूर्ति के नए तंत्रों के विकास और विभिन्न अदालतों में 2 करोड़ 70 लाख से अधिक लंबित मामलों को देखते हुए प्रशासनिक सुधारों पर तत्काल विशेष ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

युवाओं का सतत और समावेशी विकास

भारतीय युवा सामाजिक आर्थिक विकास और प्रौद्योगिकी नवाचार के लिए महत्वपूर्ण माध्यम उनकी सामूहिक ऊर्जा और दृष्टिकोण हमारे राष्ट्र के विकास का इंजन है। निजी क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र और नागरिक समाज की सामूहिक जिम्मेदारी होगी वे युवाओं के सभी वर्गों को विशेष रूप से हाशिए पर पड़े युवाओं, दिव्यांगों, ग्रामीण युवाओं और आदिवासियों के लिए शिक्षा कौशल विकास और उद्यमिता के एक समान अवसर पहुंचाने के लिए पर्याप्त कौशल और कार्यक्रम प्रदान करें।[9]

समावेशी विकास का औचित्य

समावेशी विकास समाज के लिए क्यों जरूरी है? इसके निम्न कारणों को संक्षेप में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. तार्किक आधार- Development by all profit for all (सबका साथ, सबका विकास) -

जब सभी लोग विकास में सहभागी होते हैं तो सबको फायदा होता है क्योंकि हर वर्ग एक दूसरे से पारस्परिक अन्तक्रिया करता है और उस अन्त:क्रिया का प्रभाव सब पर पड़ता है। जैसे जब हमारे शरीर के सभी अंगों का साथ होता है तभी पूरे शरीर का विकास होता है। उदाहरण के लिए, यदि शरीर का कोई एक अंग भी साथ न दे तो पूरे शरीर का संतुलित विकास संभव नहीं है। जैसे यदि आँख फूट जाय या कान बहरा हो जाय या पैर टूट जाय तो पूरे शरीर का संतुलन बिगड़ जाता

 ISSN 0976-0849

है उसी प्रकार यदि किसी अंग का आवश्यकता से अधिक विकास हो जाय। जैसे केवल पैर लम्बा हो जाय या तोंद निकल जाय, तो इसे रोग की संज्ञा दी जाती है और शरीर का संतुलन पुनः बिगड़ जाता है तथा विभिन्न तरह के विकार शरीर में पैदा होने लगते है। इसी प्रकार समाज के सभी वर्गों का जब तक समान विकास नहीं होता, समाज का सुचारू व संतुलित विकास संभव नहीं है। अतः तार्किक रूप से समावेशी विकास आवश्यक है।[10]

महान विचारक अरस्तू ने भी कहा है– "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के अन्य लोगों के साथ अन्तःक्रिया करता है जो समाज में नहीं रहता, वह या तो पशु है या देवता।" अरस्तू का यह कथन व्यक्ति की न केवल सामाजिक प्रवृत्ति को दर्शाता है बल्कि उनके पारस्परिक समतापूर्ण व्यवहार की ओर भी इंगित करता है। यदि कुछ लोग समाज के अन्य लोगों से स्वयं को अलग व उच्च समझने लगे तथा अन्य लोगों को समाज से वंचित करने का षडयन्त्र करने लगे तो समाज का विकास अवरूद्ध हो जाता है।[11]

2. नैतिक आधार- Development for all ethical rights for all -

नैतिक आधार पर भी सबका विकास आवश्यक है, क्योंकि सभी के विकास के साथ ही उच्चतम् मानवीय मूल्यों को प्राप्त किया जा सकता है। जब समाज में कुछ लोगों का विकास होता है तथा एक बड़ा समूह सर्वहारा वर्ग की श्रेणी में आ जाता है तो 'मरता क्या न करता' वाली कहावत चरितार्थ होती है और समाज में चोरी, डकैती, हत्या जैसी अनैतिक गतिविधियों जन्म लेती है, जिन्हें अशुभ (Evil) कहा जाता है। अतः अशुभ की समस्या के समाधान हेतु भी समावेशी विकास आवश्यक है।

3. आर्थिक आधार- Purchasing power for all market availability for all -

आर्थिक आधार पर समावेशी विकास से सभी के पास क्रयशक्ति होगी और बाजार तक सभी की पहुँच होगी, जिससे मानव गरिमामयी जीवन जी सकेंगे। इतना ही नहीं क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मानना है कि क्रयशक्ति यानी मांग (Demand) बढ़ने से बाजार का विस्तार होता है परिणामस्वरूप आर्थिक गतिविधियों व श्रम विभाजन की क्रिया संपन्न होती है, जिससे देश में उत्पादन, उत्पादकता, रोजगार व आय में भी वृद्धि होती है अर्थात आर्थिक तेजी (Boom) आती है अतः समावेशी विकास आवश्यक है।[12]

4. राजनैतिक आधार- Welfare state for all] resources for all -

राजनैतिक या संवैधानिक आधार पर समावेशी विकास इसलिए जरूरी क्योंकि कोई भी व्यवस्था तभी तक टिकी रहती है जब तक उसमें सभी वर्गों का योगदान होता है तथा शासन-प्रशासन

तक सभी की पहुँच होती है, अन्यथा लोगों में असंतोष जन्म लेता है तथा लोग उसके खिलाफ लग जाते है और राज्य की संप्रभुता को चुनौती मिलने लगती है। यदि भारतीय संविधान को देखें तो इसके प्रस्तावना व नीति-निदेशक तत्वों में समावेशी विकास की अवधारणा दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ- अनुच्छेद-38 कहता है कि राज्य कल्याणकारी होना चाहिए तथा अनुच्छेद-30 में स्पष्ट कहा गया है, संसाधनों तक सबकी पहुँच होनी चाहिए अर्थात संसाधनों का समतामूलक वितरण होना चाहिए। इसी प्रकार अनुच्छेद-46 कहता है, संसाधनों का गरीब व कमजोर वर्ग के हित में उपयोग होना चाहिए क्योंकि यदि ऐसा नहीं हुआ तो राज्य के साथ चुनौती बढ़ जायेगी और अलगाववाद, नक्सलवाद, क्षेत्रवाद, नस्लवाद, भाषावाद, चरमपन्थ इत्यादि बढ़ जायेगी और राज्य की सम्प्रभुता खतरे में पड़ जायेगी। इसीलिए समावेशी विकास मानव सभ्यता की जान है, मानव सभ्यता का गौरव है। अत: यदि सरकार समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर ले तो विकास टिकाऊ (sustainable) भी होगा।

5. असमान विकास- (Unequal Development)

कहा जाता है कि असमान विकास, विकास न करने के बराबर है (Unequal development is equal to no development) अर्थात ऐसा विकास जिसका लाभ लोगों (सभी वर्गों, क्षेत्रों व घटकों) को नहीं मिल पा रहा है, तो वह असमान विकास है और इससे कुछ लोग व कुछ क्षेत्र संवृद्धि के द्वीप बन जाते हैं। और बाकी क्षेत्र अभाव व चुनौतियों से जूझते रहते हैं। इससे कई तरह की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं और विकास दूसरी दिशा में गुड जाता है।[13]

जहाँ तक भारत की बात है तो यहाँ चारों तरफ इतना असमान विकास विद्यमान है कि एक देश में दो देश की स्थिति बन गई है– एक इण्डिया है तो दूसरा है भारत। भारत में पाये जाने वाले असमान विकास को निम्न 3 आधारों पर रेखांकित कर सकते हैं–

1. क्षेत्र के आधार पर (On the Basis of Area) इस आधार पर पाये जाने वाले असमान विकास को भी दो तरह से देखा जा सकता है-

   i) शहर व गाँव के बीच होने वाले विकास में अन्तर

   ii) राज्यों-राज्यों के बीच होने वाले विकास में अन्तर

गाँवों की अपेक्षा शहरों में विकास का स्तर उच्च है। शहरों में आधारभूत सुविधाएं जैसे बिजली, पानी, सड़कें, अस्पताल, स्कूल-कालेज, हवाई अडड्े, रेलवे स्टेशन इत्यादि की अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति है। जबकि गाँवों में इन सुविधाओं की न्यूनतम स्थिति है। शहरों में भी संवृद्धि इलाकों में सुविधाएं ज्यादा हैं और स्लम क्षेत्रों में सुविधाएं बेहद कम है।

 ISSN 0976-0849

अब राज्यों–राज्यों में देखें तो विकसित राज्यों जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, तमिलनाडु आदि में आधारभूत सुविधाएं व कल कारखाने ज्यादा हैं और अल्पविकसित राज्यों जैसे- बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखण्ड आदि में सुविधाए बहुत ही कम है। अतः भारत में समावेशी विकास अति आवश्यक है।[14]

2. वर्गों के आधार पर (On the basis of Class)-

इस आधार पर भी असमान विकास को स्पष्ट करने के लिए इसे दो भागों में बाँटा जा सकता है-

i) आर्थिक वर्ग के आधार पर (Economic class)

ii) सामाजिक वर्ग के आधार पर (Social class)

आर्थिक आधार पर भारत में 3 तरह के वर्ग पाये जाते हैं-

क) उच्च आर्थिक वर्ग

ख) मध्यम आर्थिक वर्ग

ग) निम्न आर्थिक वर्ग

उच्च तथा मध्यम वर्ग की तो संवृद्धि हो रही है। उच्च वर्ग की विकास में व्यापक भागीदारी है तथा मध्यम आय वर्ग की भी थोड़ी-बहुत विकास में हिस्सेदारी है किन्तु निम्न आर्थिक वर्ग की स्थिति हीनतर होती जा रही है।

असामाजिक वर्ग के आधार पर देखें तो समाज को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है-

क) जाति व धर्म के आधार पर

ख) लिंग के आधार पर

समाज में SC/ST/OBC तथा अल्पसंख्यक व कम संख्या वाले धार्मिक समूह का अपेक्षाकृत कम विकास हुआ है तथा पुरुषों व महिलाओं में महिलाओं की अपेक्षाकृत हीनतर स्थिति है।

3) अर्थव्यवस्था के घटकों के आधार पर (On the Basis fo Sector of Economy)

अर्थव्यवस्था के घटक के आधार पर इसे 3 भागों में बाँटा जा सकता है–

i) प्राथमिक क्षेत्र अर्थव्यवस्था

ii) द्वितीयक क्षेत्र अर्थव्यवस्था

iii) तृतीयक क्षेत्र अर्थव्यवस्था

प्राथमिक क्षेत्र में मुख्यत: कृषि, पशुपालन, वानिकी, मत्स्यन व खनन आते हैं। यह क्षेत्र अन्य दोनों क्षेत्रों की तुलना में पिछड़ा हुआ है। इसमें भी मत्स्यन वानिकी, खनन व पशुपालन फिर भी कुछ उन्मत: दशा में है जबकि कृषि यानी फसल उगाने की स्थिति काफी पिछड़ी व उपेक्षित है।[15]

द्वितीयक क्षेत्र में मुख्यत उद्योग आते हैं। उद्योगों को दो भाग में बाँटा जा सकता है- क) बड़े व भारी उद्योग; ख) कुटीर व लघु उद्योग। इनमें भारी व बड़े उद्योग तो विकसित हैं जबकि कुटीर, सूक्ष्म व लघु उद्योग उपेक्षित व पिछड़े हुए हैं।

तृतीयक यानी सेवा क्षेत्र को देखें तो इसे भी 3 भागों में बाँटा जा सकता है -

(क) कुशल श्रम

(ख) अर्द्ध कुशल श्रम

(ग) अकुशल श्रम

कुशल व अर्द्ध कुशल श्रम तो फिल्मी संवृद्धि के भागीदार बन पा रहे हैं तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया से जुड़ चुके है। किन्तु अकुशल श्रम आर्थिक विकास की प्रक्रिया से बिल्कुल ही नहीं जुड़ पाया है। इस प्रकार से देखा जाय तो भारत में असमान विकास की स्थिति विद्यमान है। इसे दूर कर समावेशी विकास नितान्त आवश्यक है।

संदर्भ सूची:

1. लाल, प्रो. एस.एन. तथा डॉ. एस.के. लाल, भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स इलाहाबाद, 2016 ई., पृष्ठ 327-332
2. International Jourtnal of Advanced Education and Research, volume 2, Issue 3 May 2017, pp. 282-283
3. सामाजिक समावेशन चुनौतियों एवं समाधान, जग्गूदान रतनू (पी-एच.डी.) शोधार्थी JNU, नई दिल्ली
4. समावेशी विकास, http:\\hi-m-wikipedia.org
5. लाल, प्रो. एस.एन., आर्थिक विकास तथा आयोजन, शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, 2000 ई., पृष्ठ 207-301
6. बसु, दुर्गा दास, भारत का संविधान एक परिचय आठवीं संस्करण, पुन: मुद्रण 2003 ई., पाचवा एण्ड कम्पनी, नागपुर, पृष्ठ 145-154 एवं 463
7. Gurusamy, S., Inclusive Growth in India, MJP Publishers Chennai, 2013
8. एन. जयपालन, भारतीय प्रशासन, खंड-1 अटलांटिक पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-2001 ई., पृष्ठ 6
9. सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट-2019 ई., पृष्ठ 9
10. सिंह, शिवबहाल, विकास का समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2010 ई., पृष्ठ 27

 ISSN 0976-0849

11. पी.एस., रामकृष्णन, इकोलॉजी एंड सस्टेनेबल डेवलपमेंट, नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली, 2001 ई., पृष्ठ 102
12. सतत विकास की ओर: अनिवार्यताएँ एवं परिप्रेक्ष्य, भारतीय लोक प्रशासन जर्नल, खंड- 39 नं. 3 जुलाई-सितंबर 1993 ई., पृष्ठ 12
13. मिश्रा, जे.पी., जनांकिकी, साहित्य भवन पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2021 ई., पृष्ठ 32
14. सुचिन्मथी, रचना, समसामयिक राजनीतिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2016 ई., पृष्ठ 29
15. योजना पत्रिका-2019 ई., पृष्ठ 10

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 141-149

अध्यापक की भूमिकाः राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में

डॉ. अनुभा श्रीवास्तव*

सारांशः भारत के विचारक, चिंतक, शिक्षक, लेखक और श्रेष्ठ प्रशासक के रूप में विख्यात महापुरुष चाणक्य ने शिक्षक समाज के संदर्भ में कहा था कि, 'शिक्षक गौरव घोषित तब होगा, जब ये राष्ट्र गौरवशाली होगा और ये राष्ट्र गौरवशाली तब होगा, जब ये राष्ट्र अपने जीवन मूल्यों एवं परम्पराओं का निर्वाह करने में सफल एवं सक्षम होगा और ये राष्ट्र सफल एवं सक्षम तब होगा, जब शिक्षक अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में सफल होगा और शिक्षक सफल तब कहा जायेगा, जब वह राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करने में सफल हो। यदि व्यक्ति राष्ट्रभाव से शून्य है, राष्ट्र भाव से हीन है, अपनी राष्ट्रीयता के प्रति सजग नही है तो ये शिक्षक की असफलता है।' महान शिक्षक चाणक्य के विचार को हृदय की गहराई से मंथन-चिंतन करने की जरूरत है। इस विचार में राष्ट्र निर्माण में शिक्षक की भूमिका को बहुत ही सुंदर ढंग से परिभाषित किया गया है और राष्ट्र के प्रति उसके उत्तरदायित्व को बताया गया है।[1] राष्ट्रीय एकता की भावना एक सच्चे समाज सेवक को राष्ट्र के उत्थान के लिए अपना सब कुछ अर्पित करने की प्रेरणा देती है। इस भावना से अभिभूत होकर एक सच्चा देश का सिपाही अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए हंसते-हंसते अपना बलिदान देने के लिए हमेशा तैयार रहता है। हमारा राष्ट्र भाषावाद, क्षेत्रवाद और संकीर्ण मानसिकता से प्रेरित होकर अपने देश की अखण्डता के लिए खतरा बना हुआ है। देश के निवासियों, राजनेताओं, समाज नेताओं को अपने देश की अखण्डता व एकता से पहले अपने नितान्त व्यक्तिगत स्वार्थ आने लगे हैं जो देश की राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा बनते जा रहे है। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को बनाए रखना आज की आवश्यकता बन गई है। हमारे शिक्षक वर्ग, समाज नेताओं व राजनेताओं को इसमें पूर्ण योगदान देना चाहिए और संकीर्णता की भावना को त्याग देना चाहिए, तभी देश की अखण्डता व एकता बनी रहेगी और खतरा दूर किया जा सकता है, क्योंकि आज संपूर्ण विश्व राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित है।

बीजशब्दः राष्ट्रीय एकता, अध्यापक, देश प्रेम, देश भक्ति, तकनीकी, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय भावना

*सहायक आचार्य, बी.एड्. विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

भूमिका:

आजकल प्रत्येक देश या राष्ट्र कई समस्याओं से जूझ रहा है जिसका मुख्य कारण विज्ञान व तकनीकी का दुरुपयोग है। समाज की सेवाओं के लिए ही विज्ञान व तकनीकी ने तरक्की की थी परन्तु इस उन्नति का दुरुपयोग होना शुरू हो गया है जिसके कारण सामाजिक मूल्यों का हनन हो रहा है। इंसानियत खत्म होना शुरू हो गई है। हर व्यक्ति स्वार्थ की भावना से कार्य कर रहा है। सच्चाई व ईमानदारी तो अब दूर की बात बन गई है। हर देश दूसरे देश को नीचा दिखाने में लगा है। इसी तरह हर मानव दूसरे मानव को नीचा दिखाना ही अपना कर्त्तव्य समझने लगा है। हर व्यक्ति का ईश्वर मानो सब कुछ पैसा ही बन गया है। देश में जमाखोरी, बेईमानी, झूठ आदि एक फैशन बन गया है।[2] विश्वभर में मानी जाने वाली भारतीय संस्कृति को मानव भूलता जा रहा है तथा दूसरी संस्कृति को बिना सोचे समझे अपनाता जा रहा है। पैसे के लिए इंसान अपनी मर्यादा को भी भूल रहा है जो राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के लिए खतरा बनता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति को यह समझना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य भी है कि वह राष्ट्र की अखण्डता को बनाये रखने में पूर्ण सहयोग करे और राष्ट्र को शक्तिशाली बनाये रखे। राष्ट्र को शक्तिशाली व पूर्ण विकसित राष्ट्र बनाने के लिए राष्ट्रीयता की भावना अति आवश्यक है। यह भावना शिक्षा के माध्यम से ही विकसित हो सकती है जिसमें शिक्षक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। राष्ट्रीय एकता से अभिप्राय देश प्रेम या देश भक्ति की भावना से है। जब किसी देश या राष्ट्र के निवासी धर्म, जाति, क्षेत्र व भाषा आदि की विभिन्नता को भूलकर केवल देश प्रेम या भक्ति की बात करते हैं, सोचते हैं तो उसे उस देश के निवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना कहा जाता है। दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता में देश भक्ति व देश प्रेम निहित होता है जो समस्त राष्ट्र को एक सूत्र में बांधती है। जब मानव जाति-पाति, धर्म, प्रान्तवाद व व्यक्ति हित को छोड़कर राष्ट्र को सर्वोच्च स्थान पर पहुंचाते हैं व राष्ट्र के लिए योगदान देते हैं तो यही राष्ट्रीयता व राष्ट्रीय भावना कहलाती है।[3] डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार, "यदि भारत को स्वतंत्र, संगठित एवं लोकतंत्रात्मक रहना है तो शिक्षा को एकता का प्रशिक्षण देना चाहिए, स्थानवाद को नहीं, प्रजातंत्र को शिक्षण देना चाहिए, अधिनायकवाद को नहीं।" डॉ. जे.एस. वेदी के अनुसार, "देश के विभिन्न राज्यों के व्यक्तियों की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषा विषयक विभिन्नताओं को वांछनीय सीमा के अन्तर्गत रखना और उनमें भारत की एकता का समावेश करना।" रास के अनुसार, "राष्ट्रीयता एक मानव प्रेरणा है जिससे प्रभावित होकर एक देश के रहने वाले आपस में एक दूसरे से एक राष्ट्र के नागरिक होने के नाते सद्भावना रखते हैं और मिलजुल कर राष्ट्र हित में कार्य करते हैं। ब्रूवेकर के अनुसार, "राष्ट्रीयता साधारण रूप से देश प्रेम की अपेक्षा देश भक्ति से अधिक व्यापक क्षेत्र की ओर संकेत करती है। राष्ट्रीयता में स्थान के सम्बन्ध् के अलावा प्रजाति, भाषा, इतिहास, संस्कृति और परम्पराओं

के भी सम्बन्ध् आ जाते हैं।"[4] संक्षेप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता से अभिप्राय राष्ट्र के विभिन्न ध्र्मों, भाषाओं, जातियों के हित में राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्र शक्ति की भावनाओं की एकता, राष्ट्रीय एकता है। राष्ट्रीय एकता में शिक्षक की भूमिका यह सच ही कहा गया है कि राष्ट्र को शक्तिशाली व पूर्ण आत्मनिर्भर बनाने के लिए राष्ट्रीयता की भावना अति आवश्यक है। परन्तु यह राष्ट्रीयता की भावना केवल शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक वर्ग ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

राष्ट्रीय एकता की भावना को जागृत करने के लिए शिक्षक या अध्यापक की निम्नलिखित भूमिका होनी चाहिए:

1. **पूर्ण आस्था:** अध्यापक की भावनात्मक व राष्ट्रीय एकता के लिए विचार एवं दर्शन में पूर्ण आस्था होनी चाहिए, तभी अपने विद्यार्थियों में इस भावना का विकास कर सकता है। शिक्षक ही इस भावना को बच्चों में विकसित करता है।

2. **राष्ट्रीय मूल्यों का विकास:** अध्यापक का जीवन अच्छे मूल्यों पर आधारित होता है। वही अच्छा अध्यापक कहलाता है जिसमें अच्छे मूल्य होते हैं और वही विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास करके राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करता है।

3. **उचित वातावरण तैयार करना:** अध्यापक स्कूल में एक अच्छा व उचित वातावरण तैयार करता है जिससे विद्यार्थियों में प्रेम व देश भक्ति विकसित होती है तथा घृणा व कुदृष्टिकोण की समाप्ति होती है।

4. **नैतिक कर्त्तव्य:** एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों को नैतिक कर्त्तव्यों का पाठ पढ़ाता है जिसके माध्यम से वह विद्यार्थियों के दिलों में देशभक्ति व देश प्रेम का दीपक जलाता है।

5. **आदर्श:** अध्यापक हमेशा अपने विद्यार्थियों के लिए एक आदर्श होता है। इसलिए अध्यापक को स्वयं एक आदर्श बनना चाहिए तथा विद्यार्थियों को आदर्श बनकर प्रेम भक्ति, स्नेह का पाठ पढ़ाना चाहिए। इस प्रकार शिक्षक वर्ग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और कर रहा है।[5]

6. **सामाजिक कुरीतियों का विरोध:** अध्यापक वर्ग सामाजिक कुरीतियों के द्वारा देश में होने वाले हानिकारक प्रभाव से अवगत करवाता है जिसे विद्यार्थियों को अच्छाई व बुराई का ज्ञान होता है व देश में इन कुरीतियों को दूर करने के लिए उन्हें प्रेरणा मिलती है जिसके कारण इनमें राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न होती है।

7. **जीवन दर्शन:** अध्यापक के जीवन दर्शन का विद्यार्थियों के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता

 ISSN 0976-0849

है। अध्यापक के जीवन दर्शन में राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीय एकता व भावनात्मक एकता की झलक दिखाई देनी चाहिए। बच्चों के ऊपर इस दर्शन का प्रभाव प्रेम व एकता के प्रभाव के रूप में दिखाई पड़ता है।

8. **भाषा नीति का विकासः** अध्यापक विद्यार्थियों में भाषा नीति का विकास करता है। भाषा नीति द्वारा अध्यापक अपने विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भाषा को प्रोत्साहित करके राष्ट्रीय प्रेम जागृत करता है।

9. **साहित्य का ज्ञानः** अध्यापक अपने विद्यार्थियों को साहित्य का ज्ञान कराता है तथा साहित्य की सहायता से ही राष्ट्रीय प्रेम व राष्ट्रीय भक्ति का बोध् विद्यार्थियों को कराता है।

10. **महत्त्वपूर्ण दिवसों को मनानाः** स्कूलों व कालेजों में महत्त्वपूर्ण दिवस जैसे– स्वतत्रंता दिवस, शहीदी दिवस, बाल दिवस, महावीर जयंती, ईद, दिवाली, होली, दशहरा, रविदास जयंती व शहीदी दिवसों का आयोजन किया जाता है जिसकी वजह से विद्यार्थियों में प्रेम, भाईचारा, एकता, आदम्यता, सहनशीलता आदि मूल्यों का विकास होता है जिसमें राष्ट्रीय एकता व राष्ट्रीय प्रेम को प्रोत्साहन मिलता है।

11. **संकीर्णता से ऊपर उठनाः** अध्यापक का जीवन उदार होना चाहिए तथा संकीर्णता का नामोनिशान अध्यापक के जीवन में नहीं होना चाहिए। उदार अध्यापक अपने विद्यार्थियों को उदार बनाते हैं। संकीर्णता को दूर करके, अच्छे विचारों से विद्यार्थियों के जीवन को शुद्ध बनाते हैं जिससे प्रेम व भाईचारे की भावना उत्पन्न होती है तथा राष्ट्रीय एकता व राष्ट्रीय प्रेम की भावना भी जागृत होती है।

12. **आलोचनात्मक दृष्टिकोण की समाप्तिः** अध्यापक का राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय भावनात्मक एकता के लिए विस्तृत दृष्टिकोण होना आवश्यक है। विस्तृत दृष्टिकोण वाले अध्यापक ही राष्ट्रीयता की भावना विद्यार्थियों में विकसित करते हैं। अध्यापक वर्ग बच्चों को राष्ट्रीय हित का पाठ पढ़ाकर ही राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करते हैं।

13. **मातृभाषाः** राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करने के लिए अति आवश्यक है कि अध्यापक मातृभाषा को महत्त्व देकर राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाए तथा इसके माध्यम से राष्ट्रभाषा को महत्त्व दें। इस प्रकार अध्यापक मातृभाषा के माध्यम से राष्ट्रीय भाषा को महत्त्व देकर, राष्ट्रीयता का पाठ बच्चों को पढ़ाता है।

14. **पाठय-सहायक क्रियाओं का आयोजनः** अध्यापक राष्ट्रीय एकता की भावना में सहायक पाठय-सहायक क्रियाओं का आयोजन करके राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करता है। इस प्रकार के आयोजन से राष्ट्रीयता पनपती है।

15. **उचित समन्वय:** राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास के लिए अध्यापक अपने पाठ्यक्रम में उचित समन्वय बनाए रखता है।

16. **सरकारी कार्यक्रमों का आयोजन:** अध्यापक वर्ग सरकारी कार्यक्रमों का आयोजन अपने स्कूलों में करता है जिससे विद्यार्थियों में प्रेम व सहयोग की भावना का विकास होता है जो राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करती है।

17. **विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान:** अध्यापक वर्ग विद्यार्थियों को विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान करवाता है जिससे भाईचारा, सहयोग, प्रेम, स्नेह, संगठन, आदर, सहनशीलता आदि मूल्यों का विकास होता है, साथ में धर्म निरपेक्षता का ज्ञान होता है। इससे अनेक जाति-पाति, धर्मों से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता का बोध् होता है और राष्ट्रीय प्रेम व भक्ति की भावना उत्पन्न होती है।

18. **सामाजिक व राष्ट्रीय सेवा:** अध्यापक विद्यार्थियों में सामाजिक व राष्ट्रीय सेवा की भावना का विकास करवाता है। राष्ट्रीय सेवा व सामाजिक सेवा से सम्बन्धित क्रियाओं का आयोजन करके उनको राष्ट्रीय सेवा व समाज सेवा के महत्त्व को समझाकर राष्ट्रीय एकता व प्रेम का पाठ पढ़ाता है।

19. **धार्मिक सहिष्णुता:** धार्मिक सहिष्णुता का पाठ केवल अध्यापक ही बच्चों को पढ़ा सकता है। धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाकर अध्यापक विद्यार्थियों को सभी धर्मों का आदर करना व अपनी इच्छा से किसी भी धर्म को अपना कर देश के हित को धर्म से ऊपर मानना आदि का उपदेश एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों को देता है। इससे विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावना की जागृति होती है तथा उसका विकास होता है।

20. **प्रण देना:** अध्यापक वर्ग विद्यार्थियों को बड़ों का आदर करना, भलाई करना, ईमानदारी रखना, सेवा की भावना रखना, छोटों से प्रेम करना, राष्ट्रीय हित को सर्वप्रथम उच्च स्तर प्रदान करना, भ्रष्टाचार के विरुद्ध, कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाना आदि का प्रण प्रदान करते हैं। इससे विद्यार्थियों में विस्तृत भावना का विकास और संकीर्णता का हनन होता इससे राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास होता है।

21. **देश प्रेम की भावना:** देश प्रेम की भावना का अपने विद्यार्थियों में विकास करना एक अच्छे अध्यापक का कर्त्तव्य है। अध्यापक को ही देश के निर्माता की संज्ञा दी गई है। अध्यापक अपने विद्यार्थियों में अपने व्यक्तित्व व क्रिया-कलापों द्वारा देश की आवाज पैदा करता है।

22. **महान पुरुषों की कहानियों द्वारा राष्ट्रीयता की भावना:** अध्यापक अपने विद्यार्थियों को महान पुरुषों, जैसे महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय, शहीद भगत सिंह, राजगुरु, तात्या टोपे,

 ISSN 0976-0849

लक्ष्मी बाई, सुखदेव, लाल बहादुर शास्त्री, सुभाषचन्द्र बोस आदि महान नायकों की कहानियों को सुनाकर देश भक्ति व देश प्रेम की भावना को जागृत करता है।

23. **उचित शिक्षाः** अध्यापक अपने विद्यार्थियों को बिना किसी जातिवाद, धर्मवाद, रंगभेद, सम्प्रदायों या राज्यों के भेदभाव को भूलकर उचित शिक्षा देकर व सभी के साथ मेल-मिलाप करने के बाद एकता का पाठ पढ़ा सकता है। उचित शिक्षा के माध्यम से ही अध्यापक विद्यार्थियों को एकता व देशप्रेम के सूत्र में बांध् सकता है।

24. **राष्ट्र गान व शपथः** अध्यापक प्रत्येक दिन स्कूल में पढ़ाई करने से पहले विद्यार्थियों को शपथ प्रदान करके राष्ट्र गान करवाता है। इससे विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न होती है।

25. **राष्ट्रीय त्यौहारः** अध्यापक वर्ग अपने स्कूल में लोहड़ी वसंत, तीज, दशहरा, दिवाली आदि का पूर्ण रूप से बड़ी धूमधाम के साथ आयोजन करते हैं तथा मनाते हैं। ये त्योहार बच्चों को और अन्य देशवासियों को आपसी भाईचारा, प्रेम, मान-सम्मान व आदर व सहयोग की भावना का संदेश देते हैं। इससे राष्ट्रीयता का एहसास होता है और राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास होता है।

26. **भाषण प्रतियोगिताः** अध्यापक वर्ग स्कूलों में भाषण प्रतियोगिता का आयोजन करते रहते हैं। उन विषयों पर भाषण प्रतियोगिता करवाते हैं जिनसे विद्यार्थियों को देश की संस्कृति, देश भक्तों का बलिदान, देश की मुसीबतों व कठिनाइयों, व देश के सहयोग आदि के बारे में ज्ञान मिलता है, इससे विद्यार्थियों में देश प्रेम व देश भक्ति का विकास होता है।

27. **खेलकूद प्रतियोगिताः** अध्यापक वर्ग स्कूलों में बच्चों को स्वस्थ रखने की दृष्टि से खेलकूद प्रतियोगिता का आयोजन करवाते रहते हैं तथा साथ में यही खेल राज्य स्तर तथा राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित किए जाते हैं, जिससे विद्यार्थियों के बीच परस्पर मेलजोल और आपसी सहयोग की भावना का विकास होता है। इससे विद्यार्थियों में राष्ट्रीय सहयोग व एकता की भावना का विकास होता है।

28. **अन्तर्राज्यीय भ्रमणः** विद्यालय में अध्यापक वर्ग अन्तर्राज्यीय भ्रमण का आयोजन करते हैं जिसमें बच्चे राज्यों में घूमते हैं तथा विभिन्न संस्कृतियों, रीति-रिवाजों, प्राकृतिक असमानताओं, राजनैतिक गतिविधियों व आर्थिक गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इससे उनमें विभिन्नता में एकता का एहसास होता है तथा राष्ट्रीय भावना का विकास होता है।

29. **देश के पहलुओं का ज्ञानः** देश में चल रही शिक्षा के पाठ्यक्रम में देश के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है जिसको हमारे अध्यापक वर्ग उदाहरण देकर समझाते हैं तथा साथ

में इसके महत्त्व को भी बताते हैं। इस कारण विद्यार्थी देश के हर पहलुओं की जानकारी हासिल करते हैं और उनमें देश के प्रति प्रेम व भक्ति की भावना उत्पन्न होती है।

30. **पुस्तकों की जांच:** अध्यापक वर्ग स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों की जांच करते हैं और उसके लिए सुझाव सरकार को देते हैं। सरकार का मुख्य उद्देश्य यह है कि स्कूलों व कालेजों में ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जाएं जिससे राष्ट्रीय एकता को बल मिले। अध्यापक वर्ग इस तरह जांच करके राष्ट्रीय एकता प्रदान करने वाली पुस्तकों को लिखते हैं और देश की अखण्डता को बनाये रखने के लिए सुझाव भी देते हैं। साथ में देश की अखण्डता व एकता को खतरे में डालने वाली पुस्तकों को पाठ्क्रम से हटाने के लिए सरकार को विनम्र प्रार्थना करते हैं।

सुझाव:

अध्यापक को राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाने के लिए और कार्य भी करने चाहिए जिनका विवरण निम्नवत् है:

1. बालकों को भारत के आर्थिक विकास का ज्ञान करवाना चाहिए।
2. राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध् में महान पुरुषों के जीवन पर भाषण करवाने चाहिए।
3. क्षेत्र भाषा के अतिरिक्त अध्यापक को राष्ट्रीय भाषा पर बल देना चाहिए।
4. बालकों को भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का वर्णन करवाना चाहिए।
5. पाठ्यक्रम में लोकगीतों और कहानियों को भी स्थान देना चाहिए।
6. बालकों में राष्ट्रीय चेतना का विकास करना चाहिए।
7. बालकों को विभिन्न क्षेत्र की सामाजिक दशाओं तथा विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान करवाना चाहिए।
8. बालकों को धर्म निरपेक्षता का पाठ पढ़ाना चाहिए।
9. विद्यार्थियों को महान नायकों के जीवन का परिचय देना चाहिए।
10. देश भक्ति व देश प्रेम कहानियां भारत के विभिन्न क्षेत्रों से चुनकर व लिखकर विद्यार्थियों को सुनानी चाहिए।
11. अध्यापक वर्ग को चाहिए कि विद्यार्थियों को सामाजिक जीवन की दशाओं का सरलतम ज्ञान देना चाहिए।

 ISSN 0976-0849

12. विद्यार्थियों को विभिन्न क्षेत्रों के साहित्य, भाषाओं तथा संस्कृतियों का तुलनात्मक गहन अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित करें तथा अवसर प्रदान करें।

13. विद्यार्थियों को उत्सवों का आयोजन करने व भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

14. विद्यार्थियों को राष्ट्रीय दिवसों को मनाने के लिए प्रेरित करना चाहिए तथा इनका महत्त्व उनको बताना चाहिए।

15. विद्यार्थियों को राष्ट्रीय पुष्प, राष्ट्रीय पक्षी, राष्ट्रीय चिह्न, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्र गान का ज्ञान करवाना चाहिए।

16. विद्यार्थियों को देश की भौगोलिक परिस्थितियों का ज्ञान करवाना चाहिए।

17. विद्यार्थियों को गोष्ठियों तथा समाचार गोष्ठियों का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए तथा इन गोष्ठियों का आयोजन समय-समय पर स्कूलों व कालेजों मे करवाना चाहिए।

18. विद्यार्थियों को यह बताना चाहिए कि राष्ट्र हित व्यक्ति हित से बड़ा है। इसलिए व्यक्तिगत हित का त्याग करना चाहिए।

19. देश की सेवा सर्वोत्तम सेवा है, यह पाठ विद्यार्थियों को पढ़ाना चाहिए।

20. विद्यार्थियों को सांस्कृतिक व सामाजिक उपलब्धियों का उचित मूल्यांकन करने का पाठ पढ़ाना चाहिए।

21. स्कूलों में सेमीनार, नाटक व प्रदर्शनियों का आयोजन करवाना चाहिए।[6]

निष्कर्ष:

हमारा देश क्षेत्रवाद, भाषावाद जैसी मानसिकता से प्रेरित होकर अपने देश की अखण्डता को तोड़ने में लगा है। इसका राजनैतिक ढांचा पूरी तरह इतना बदल चुका है कि राजनेताओं का अपने देश की अखण्डता व एकता से पहले अपने व्यक्तिगत स्वार्थ याद आने लगते हैं, जो राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा बनते जा रहे हैं। पहले तो सभी मिलकर स्वतंत्रता की मांग करते थे लेकिन अब एक राज्य दूसरे राज्य से लड़ रहा है। यह घटिया सोच भारत की अखण्डता के लिए सबसे बड़ा खतरा है।[7] आज तो देश की अखण्डता व एकता बनाए रखना अति आवश्यक है। इसकी अखण्डता व एकता को बनाए रखने के लिए व उसको दिनों-दिन विकास की राह पर लाने के लिए बालक व बालिकाओं, युवक व युवतियों को शिक्षा के माध्यम से शिक्षकों को राष्ट्रीयता की भावना जागृत व विकसित करनी होगी। इससे वे राष्ट्रीय हित को अपने व्यक्तिगत हित से ज्यादा व महत्त्वपूर्ण समझेंगे,

अर्थात राष्ट्रीय हित को महत्त्वपूर्ण स्थान देंगे। अंत में हम कह सकते हैं कि शिक्षा के माध्यम से, शिक्षक वर्ग जो राष्ट्रीय निर्माता कहलाते हैं, राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास देशवासियों में करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं जिससे वे बखूबी निभा सकते हैं।[8]

सन्दर्भ:

1. https://www.seervisamajsampurnbharat.com
2. बंगा, चमनलाल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, नंगल टाउन: पसरिया पब्लिकेशन, कोलकाता, 2004 ई., पृष्ठ 16
3. वर्मा, सरोजवाला, चोपड़ा, प्रियंका, विद्यालय प्रबन्धन, हितैशी पब्लिशर, नई दिल्ली, 2001 ई., पृष्ठ 39
4. गुप्ता, महावीर प्रसाद व वाजपेई प्रिमोद कुमार, शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, मार्डन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010 ई., पृष्ठ 91
5. मोनिका, सामाजिक अध्ययन का शिक्षण, मार्डन पब्लिशर, जालंधर, 2009 ई., पृष्ठ 29
6. वालिया, जे.एस., सामाजिक अध्ययन शिक्षण, पौदल पब्लिशर, जालंधर, 2004 ई., पृष्ठ 53
7. https:\\www.bharatdarshan.co.nz/magazine/literature/868/shikshak-hindi-alekh.html
8. https://www.punjabkesari.in/blogs/news/teachers-are-the-builders-of-the-nation-in-real-sense-1758102

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 150-156

क्रांति की अभंग गाथा: चौरी चौरा

डॉ. संदीप कुमार श्रीवास्तव*

सारांश: चौरी चौरा क्रांति स्वनामधन्य की जगह गुमनाम हुतात्माओं की महागाथा है जो दुर्भाग्य से विगत लगभग एक शताब्दी 1922 से 2021 की अवधि में विवादास्पद इतिहास के अंधकार में पड़ी है। निश्चित रूप से चौरी-चौरा की क्रांति की पृष्ठभूमि एक ओर जहाँ 1857 के महासमर की ऊर्जा है तो दूसरी और ब्रिटिश सत्ता के शोषण, दमन और उसकी कठपुतली बने जमींदारों के अत्याचार का प्रतिरोध भी है। भगदड़ के माहौल में उत्तेजित भीड़ में जुल्म, निर्मम, शोषण और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सभी प्रतीकों चाहे वह देशी हो या विदेशी सभी का प्रतिरोध ईंट, पत्थर, जलौनी डंडे आदि का प्रयोग कर सामान्य जन मानस ने गोली और बारूदों के जवाब में दिया, चौरी चौरा की जनता ने चार फरवरी 1922 को चौरी चौरा रेलवे स्टेशन और डाकघर पर तिरंगा लहराकर स्वतंत्र भारत को आजादी की पहली स्वास लेने का अवसर दिया था। चौरीचौरा ने ब्रिटिश सरकार की चैन छीनकर आजादी की साँसे कुछ घंटे ही बिताया, इसका इतिहास साक्षी है। 4 फरवरी 1922 को हुए चौरी चौरा क्रांति ने आजादी की दिशा और दशा को बदलने में महत्वपूर्ण रहा, वर्षों से असहयोग की परिपाटी और अंग्रेजों के अत्याचार को सहते-सहते जनता का आक्रोश अपनी हदों की सीमा को पार कर चुका था। जुल्म और अत्याचार की चिंगारी ने स्वंत्रता की बयार को हवा दे दिया जिसके बवंडर में अंग्रेजी सत्ता की नीव जड़ से उखड़ गयी। चौरी चौरा की अविस्मर्णीय अभंग गाथा ने स्वंत्रता आन्दोलन में चौरी चौरा को देखने की दृष्टि बदल दिया अपनी खोयी प्रतिष्ठा सम्मान को पाने में इस धरती और शहीदों स्वतंत्रता सेनानियों को लम्बी कानूनी दस्तावेजों से गुजरना पड़ा। शताब्दी वर्ष में भारतीय शहीदों, स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति सम्मान और श्रद्धा के भाव जयकारों से चौरी चौरा गुंजित होगा।

बीजशब्द: क्रांति, जननायक, स्वतंत्रता संघर्ष, जिला जेल, सेशनकोर्ट, मुकदमा, स्वयंसेवक, हुतात्मा, महागाथा, आन्दोलन, तानाशाही

*सह प्राध्यापक, बी.एड्. विभाग (दृश्य कला), महाराणा प्रताप स्नातोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

चौरीचौरा की जनक्रांतिः

चौरीचौरा क्रांति स्वतंत्रता आन्दोलन का अमिट और अभूतपूर्व घटना है। ब्रिटिश सरकार के जुल्म, तानाशाही रवैये, शोषण और अमानवीय अत्याचार के प्रति स्वयंसेवकों के संघर्ष की साहसिक अभंग गाथा का इतिहास चौरीचौरा क्रांति था। क्रांति के नायक अब्दुल्ला साई के जुझारू संघर्ष ने ब्रिटिश सरकार की नींव को कमजोर करना शुरू कर दिया था। अब्दुल्ला के नेतृत्व में गरीब किसान, खेतिहर मजदूर, बुनकर, जुलाहा, हिन्दू, मुस्लिम, केवट, भर, बरई, पासी, चमार, कहार, मल्लाह, कुर्मी, अहीर, बिन्द, तेली, लोहार, कोईरी, सैंथवार सभी सत्याग्रह आन्दोलन में एक चुटकी अन्नदान से शामिल हो गये थे।

01 फरवरी 1922 को चौरीचौरा में स्वयंसेवक भगवानदास और बद्री हरिजन ने गाँधी जी द्वारा चलाये जा रहे मद्यपान निषेध के प्रेरणारूप में यहाँ के बाजारों में खुलेआम शराब बिक्री का विरोध किया। अंग्रेजों के स्वामी भक्त एवं जालिम थाना प्रभारी गुप्तेश्वर सिंह ने दोनों स्वयंसेवकों पर जमकर डंडे बरसाया। स्वयंसेवकों की पिटाई से आक्रोशित क्षेत्र वासियों ने भारी संख्या में एकत्र होकर 04 फरवरी को जुलूस की शक्ल में थानेदार से जवाबदेही की मंशा से थाने की ओर कूच किया। थाने पर उस समय 6 कांस्टेबुल, 1 सब इंस्पेक्टर और 40 चौकीदार मौजूद थे, जो कि रायफल व कारतूस से लैश थे।

अंग्रेजी हुकूमत की शान में थानेदार गुप्तेश्वर सिंह ने शान्ति से लौट रही जुलूस पर अचानक गोलियों की बौछार करा दिया। आक्रोशित भीड़ ने 23 पुलिसकर्मियों को थाने में ही अग्नि की ज्वाला में स्वाहा कर दिया। वहीं सरकारी आँकड़े में पुलिस की गोली से मात्र जुलाहा नजर अली, खेलावन और भगवान तेली मारे गये, जबकि गैर सरकारी आँकड़ें में 26 गुमनाम स्वयंसेवक मारे गये। क्रांति की भयावहता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि सभी कांस्टेबुलों के पास 10-10 गोलियाँ थी तो सिर्फ 3 स्वयंसेवक कैसे शहीद हुए?

भगदड़ के माहौल में उत्तेजित भीड़ में जुल्म, निर्मम, शोषण और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सभी प्रतीकों चाहे वह देशी हो या विदेशी सभी को नेस्तनाबूत कर दिया। स्वयंसेवकों ने 04 फरवरी 1922 को ही रेलवे स्टेशन और पोस्ट ऑफिस पर तिरंगा फहरा दिया था। चौरीचौरा ने ब्रिटिश सरकारी की चैन छीनकर आजादी की साँसे कुछ घंटे ही बिताया, इसका इतिहास साक्षी है।

महात्मा गांधी की हठधर्मिता से क्रान्ति की आग ठंडी हो गयी और उन्होंने अहिंसा की डफली बजाकर चौरीचौरा से मुँह फेर लिया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन को रोककर सम्पूर्ण भारतवंशी राष्ट्रप्रेम की अनुशासन की हत्या कर दिया। चौरीचौरा क्रांति में ब्रिटिश सरकार ने 273 व्यक्तियों का चालान मुकदमें में दाखिल किया। इनमें से 56 व्यक्ति फरार थे, शेष पहले ही गिरफ्तार कर लिये

 ISSN 0976-0849

गये। सरकारी सेशन जज ने कुल 172 अभियुक्तों को फाँसी की सजा सुनायी। स्थानीय घटना ने वैश्विक स्तर पर ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला दिया था। इस प्रहार ने जहां एक ओर भारत में अहिंसात्मक आंदोलन का रुख बदला वहीं रातो रात वैश्विक स्तर पर अंग्रेजों के सत्ता व्यवस्था पर सवालिया निशान लगा दिया। तिलमिलाए अंग्रेजों ने तत्काल प्रभाव से स्थानीय जनता पर जुल्म और क्रूरता का तांडव मचाया। मासूम जनता पर केस दर्ज कर सलाखों के पीछे ढकेल दिया गया। देश की आजादी में असंख्य लोगों ने हिस्सा लिया। अपने प्राणों को नौछावर किया। बहुतों के नाम इतिहास के पन्नों पर दर्ज हुए तो असंख्य गुमनामी के अंधेरे में अनाम लुप्त हो गए। आज भी चौरी चौरा के थाने, शहीद स्मारक में इस क्रांति के संस्मरण लोगों के जहन में जिंदा है जिसे याद कर लोग सिहर उठते हैं। मूल थाने के परिसर से सटे हुए शहीद स्मारक में शहीदों के नाम खुदे हुए हैं, साथ ही बाकायदा इनकी साफ सफाई के लिए चौकीदार हैं, वहीं चौरी चौरा क्रांति के संस्मरण में रेलवे स्टेशन के पास में एक भव्य स्मारक बना है।

चौरी चौरा के जन आन्दोलन से जब देश का अभिजात्य वर्ग संकोच और सतर्कता बरत रहा था, तब सेशन कोर्ट गोरखपुर द्वारा 9 जनवरी 1923 को 172 किसानों को फांसी की सजा सुना देने पर दुनिया भर के लोग अंग्रेजो के खिलाफ उबल उठे। चौरी चौरा क्रांति में फुके गए धधकते थाने से उठते लौ ने वर्षों तक अंग्रेजों को बैचैन कर दिया जिसकी तपिश वर्षों तक महसूस करते हुए आजादी की धारा बदलने में चौरी चौरा ने आग में घी का काम किया। किसान आन्दोलन से शुरू हुआ ये आन्दोलन वर्षों से जमींदारों के द्वारा शोषित आम जन की आवाज और प्रतिरोध का स्वर था।

जमींदारों के उकसाने पर क्रूर थानेदार गुप्तेश्वर सिंह ने किसान भगवान अहीर पर चाबुक के इतने गहरे निशान दिये कि उसके जमे खून ने शांत किसानों के अन्दर का गुस्सा अपनी अंतिम सीमा तक पहुँचा दिया था। उसी जवाबदेही का उत्तर लेने के लिए किसानों का दल जुलूस के रूप में थाने की ओर बढ़ा पर अंग्रेजों की सत्ता की हनक और जमींदारों की शान का रौब थानेदार गुप्तेश्वर सिंह के सर पर सवार था। किसान सवाल जवाब करेंगे ये बात उसे नागवार लगी, उसने किसानों के जुलुस पर लाठी बरसाने के बाद एकाएक गोली चलाने का आदेश दे दिया। भीड़ का हिंसक होना परिस्थिति जन्य घटना थी।

प्रतिरोध के रूप में ईंट, पत्थर, जलौनी डंडे आदि ये सामान्य वस्तुओं का प्रयोग सामान्य जन मानस ने गोली और बारूदों के जवाब में दिया। चौरी चौरा की जनता ने चार फरवरी 1922 को चौरी चौरा रेलवे स्टेशन और डाकघर पर तिरंगा लहराकर स्वतंत्र भारत को आजादी का पहली स्वास लेने का अवसर दिया था। इस विद्रोह के नायकों में नजर अली, लाल मोहमद, भगवान अहीर, इन्द्रजीत कोइरी, श्यामसुंदर और एक चिमटे वाले संन्यासी मुख्य नेतृत्वकर्ता की भूमिका में थे। दस्तावेज बताते हैं कि लगभग हजारों की संख्या में किसानों और स्वयं सेवकों ने थाने की ओर रुख किया था।

घटना में दरोगा गुप्तेश्वर सहित 15 कांस्टेबल और 6 चौकीदारों सहित कुल 23 लोगों को चौरी चौरा क्रांति में स्वाहा कर दिया गया था। किसानों पर गोली चलाने वाले और चौरी चौरा क्रांति में मारे गए ब्रिटिश सिपाहियों की याद में फरवरी 1924 में पुराने थाने में संयुक्त प्रान्त के ले. गवर्नर सर विलियम मारिस द्वारा एक स्मारक बनाकर ब्रिटिश सत्ता की रस्म अदायगी की गई जो आज भी थाने के परिसर में स्थित है जिस पर सभी 23 ब्रिटिश सिपहसलारों के नाम खुदे हुए हैं। इस घटना में कुल 273 अभियुक्तों का चालान करके सूची कमिटिंग मजिस्ट्रेट को सौपी गई थी। कानूनी जिरह में 44 लोगों को तत्काल दोष सिद्ध न होने पर मुक्त कर दिया गया। शेष 225 अभियुक्तों पर मुकदमा चलाया गया। सेशन कोर्ट के जज एच.इ. होल्मस ने अपनी कार्यवाही पूर्ण करते हुए 9 जनवरी 1923 को 430 पृष्ठों में फैसला सुनाया था।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी महामना पं. मदनमोहन मालवीय महान् देशभक्त, स्वतंत्रा सेनानी, विधिवत्ता, संस्कृत वाङ्मय और अंग्रेजी के विद्वान, शिक्षाविद् पत्रकार एवं प्रखर वक्ता थे। महामना के सम्मानजनक उपाधि से विभूषित पं. मदनमोहन मालवीय पहले और अंतिम व्यक्ति थे, जिन्हें इस सम्मान से अलंकृत किया गया। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के अग्रदूत, सनातन धर्म व हिन्दू संस्कृति की रक्षा और सर्वधन में मालवीय जी का योगदान अविस्मरणीय है। मानवीय मूल्यों के प्रति सजग, नैतिकता, सहिष्णुता एवं कर्तव्यपरायणता के आदि पुरुष मालवीय जी ने श्रीमद्भगवत गीता के कर्म सिद्धान्तों को जीवन का उद्देश्य बनाकर स्वतंत्रता आन्दोलन में सड़क से लेकर कोर्ट के गलियारों तक अंग्रेजी हुकूमत का मुँहतोड़ जवाब दिया।

एकतरफा निर्णय से सम्पूर्ण देश में आक्रोश फैल गया। सेशन जज के फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में अपील की गयी। अभियुक्तों के फांसी के विरुद्ध पंडित मदन मोहन मालवीय के सहयोग से सेशन कोर्ट में वकील के.एम. मालवीय, गोकुलदास, एन.के. सान्याल, डी. एन. मालवीय, के.सी. श्रीवास्तव, देवी प्रसाद और ए.पी. दूबे ने पैरवी किया। महामना ने अपनी असीम दक्षता और विधि प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होंने मुख्य न्यायाधीश सर ग्रिमउडपीयर्स और न्यायाधीश पीगट के समक्ष ऐतिहासिक मुकदमे की पैरवी करते हुए कहा कि "चौरीचौरा हत्या क्रांति एक पूर्व नियोजित षडयंत्र था, तो उसको न्यायालय में लाने से पूर्व प्रान्तीय सरकार की अनुमति लेना आवश्यक था। मालवीय जी के करारे तकरार ने सरकारी गवाहों के परस्पर विरोधी बयानों पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर सरकारी वकीलों की झूठी व्यवस्था पर करारा प्रहार किया।

जोरदार बहस और कानूनी जिरह से 38 अभियुक्तों को कोर्ट ने बरी कर दिया था। 3 अभियुक्तों को 2 वर्ष के सश्रम करावास की सजा सुनायी गई, 129 अभियुक्तों में से 19 अभियुक्तों में प्रमुख रूप से नजर अली, लाल मुहम्मद, श्याम सुन्दर और अब्दुल्ला को फांसी की सजा सुनाया गया। 14 मुख्य अभियुक्तों को आजीवन कारावास की सजा और 110 अभियुक्तों को 8 साल, 5

 ISSN 0976-0849

साल और 3 साल की सजा सुनायी गयी थी। कमजोर, भूखे और किसान कारागर की अमानवीय यातनायें सहते-सहते दम तोड़ दिया।

महामना के लगातार प्रयास और कानूनी जिरह के आगे ब्रिटिश सरकार के पाँव धीरे-धीरे खिसकने लगे और जोरदार कानूनी पैरवी करके महामना मालवीय ने चौरीचौरा क्रांति में मृत्युदण्ड के सजायाफ्ता 172 बागी स्वतंत्रता सेनानियों में से 153 सेनानियों को फाँसी के फन्दे पर झूलने से बचा लिया। अभियुक्तों में 19 स्वयंसेवकों को ब्रिटिश सरकार ने कड़े कानूनी दाँव पेंच से फाँसी की सजा सुनाई गयी, जिसके पश्चाताप की अग्नि ने मालवीय जी को शारीरिक रूप से कमजोर कर दिया। मालवीय जी के पूर्ण एवं सारगर्भित बहस के आगे मुख्य न्यायाधीश पीयर्स ने कहा कि "आपने जिस विद्वतापूर्ण इस मामले की पैरवी की है, उसके लिए अभियुक्त तथा उनके परिवार आपके चिर ऋणी रहेंगे। मालवीय जी के साथी वकीलों ने अभियुक्तों को निर्दोष साबित करने की पूरी कोशिश की थी।"

3 फरवरी 1922 तक की इस घटनाक्रम को चौरी-चौरा के प्रथम समय खंड काल को फर्स्ट टाइम लाइन माना जा सकता है। चौरी-चौरा घटना का मुकदमा और फैसला लेख में डॉ. सच्चिदानंद चौबे लिखते है कि चौरी-चौरा में अभियुक्तों की ओर से मुकदमे की पैरवी के लिए एक समिति गठित की गई थी। इसके अध्यक्ष मौलवी सुभानउल्ला थे। इस समिति की प्रार्थना पर अभियुक्तों की तरफ से के.एन. मालवीय, गोकुलदास बैरिस्टर और निहाल कुमार सान्याल ने निःशुल्क पैरवी की थी। सेशन जज एच.ई. होलमस ने तमाम न्यायिक प्रक्रियाओं को पूरा करने के बाद 9 फरवरी 1923 को अपना निर्णय दिया। निर्णय 418 पृष्ठों में अंकित था। चौरी-चौरा क्रांति : भारतीय स्वंतत्रत्य समर की उपेक्षित महागाथा में आई.सी.एच.आर. के सदस्य सचिव डॉ. ओमजी उपाध्याय लिखते हैं कि "चौरी-चौरा क्रांति के कालखंड को हेय दृष्टि से देखा जाता रहेगा। महात्मा गांधी के देश व्यापी प्रभाव और नेतृत्व ने असहयोग आंदोलन के असमय समाप्ति की घोषणा कर दी थी और इस कार्य को उचित ठहराने के लिए 16 फरवरी 1922 को गांधी ने यंग इंडिया में चौरी-चौरा का अपराध शीर्षक से एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने असहयोग आन्दोलन को स्थगित किए जाने को ईश्वर की तीसरी चेतावनी कहा। उन्होंने लिखा कि जिस प्रकार संखिया का एक दाना दूध के बर्तन को विषाक्त कर देता है इसी प्रकार चौरी-चौरा जैसे विनाशक विष ने पूरे आंदोलन को विषाक्त कर दिया है। चौरी-चौरा की तरफ से पूरे आंदोलन को विषाक्त कर दिया है। चौरी-चौरा की त्रासदी सचमुच तर्जनी है जो बताती है की अगर कड़ी सावधानी न बरती जाए तो भारत उसी रास्ते पर जा सकता है। इसलिए हमें शांति का वातावरण बनाने के लिए अपने कदम पीछे खींच लेना चाहिए। डॉ. ओमजी उपाध्याय लिखते है कि चौरी चौरा क्रांति स्वनामधन्य की जगह गुमनाम हुतात्माओं की महागाथा है। जो दुर्भाग्य से विगत लगभग एक शताब्दी 1922 से 2021 की अवधि में विवादास्पद इतिहास के

अंधकार में पड़े हैं। निश्चित रूप से चौरी-चौरा की क्रांति की पृष्ठभूमि एक ओर जहाँ 1857 के महासमर की ऊर्जा है तो दूसरी और ब्रिटिश सत्ता के शोषण, दमन और उसकी कठपुतली बने जमींदारों के अत्याचार का प्रतिरोध भी है। 24 मार्च 1922 तक आते-आते पुलिस और गुप्तचर विभाग ने मिलकर इस घटना में 273 व्यक्तियों का चालान दाखिल किया। चालान विभिन्न आरोपों और धाराओं के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए थे। 9 जनवरी 1923 सेशन जज एच.ई. होलमस ने न्यायिक प्रक्रियाओं को पूरा करने के अभिनय के बाद अपने निर्णय में 172 व्यक्तियों को फांसी की सजा सुनाई। गोरखपुर क्षेत्र में क्रांति की इस चरण का विरोध बाबा राघव दास ने अपने हाथ में लिया। उनके प्रयास से हाई कोर्ट में अपील और मालवीय जी के तर्कपूर्ण बहस के द्वारा फांसी के सजायाफ्ता अभियुक्तों की संख्या 172 से घटकर 19 रह गई। मालवीय जी के अगुवाई में अभियुक्तों के पक्ष लड़ रहे वकीलों ने तर्कपूर्ण बहस कर अभियुक्तों को निर्दोष साबित करने का पुरजोर प्रयास किया। न्यायाधीश पियर्स और पिगट ने 30 अप्रैल 1923 को चौरी चौरा घटना का फैसला सुनाया। हाई कोर्ट के निर्णय के अनुसार अभियुक्तों को निम्नलिखित सजा दी गई थी।

19 अभियुक्तों को मृत्युदंड, 16 अभियुक्तों को आजीवन कारावास, 19 मुलजिमों को आठ-आठ वर्ष की सजा, 57 को पांच-पांच वर्ष की सजा, 3 अभियुक्तों को दो-दो वर्ष की सजा, 20 अभियुक्तों को उम्र अधिक होने के कारण दो-दो वर्ष की सजा, 38 अभियुक्त निरपराध घोषित हुए। उन्हें रिहा कर दिया गया। कोर्ट के फैसले के विरुद्ध वायसराय के पास दया की मर्सी अपील की गई। अंग्रेज वायसराय ने हाईकोर्ट के फैसले को बरकरार रखते 1 जुलाई 1923 को मर्सी अपील ठुकरा दी। फलस्वरुप मृत्युदंड प्राप्त अभियुक्तों में अब्दुल्ला उर्फ सुकई, भगवानदास यादव, विक्रम यादव, सीता राम, राम लगन लोहार, दुधई, सेतु उर्फ लौटू, महादेव, मेघू उर्फ लाल बिहारी, संपत पुत्र महेरू, नजर अली चुडिहार, राम रूप बराई, कालीचरण, सुखदेव, संपत पुत्र जीत, श्यामसुंदर, रघुवीर सोनार, रुदली और लाल मोहम्मद को 2 जुलाई 1930 को फांसी दे दी गई।

दुर्भाग्य ही कहा जायेगा की जन सूचना से उपलब्ध जानकारी में भारत सरकार के सरकारी दस्तावेजों में चौरी चौरा के शहीदों एवम् स्वतंत्रता सेनानियों का नाम धुधला गया है। आजाद भारत में चौरी चौरा क्रांति में शहीद हुए भारतीय किसानों को सम्मान की दृष्टि से देखने और स्वतंत्रता आन्दोलन में उनकी भूमिका को लेकर लम्बी प्रक्रिया का सामना किया। अत: 60 वर्ष के पश्चात 6 फरवरी 1982 को चौरी चौरा क्रांति में शहीद हुए किसानों की याद में स्मारक निर्माण का शिलान्यास तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने किया। लेकिन उद्घाटन 10 वर्ष के बाद 19 जुलाई 1983 को प्रधानमंत्री नरसिंह राव द्वारा हो सका। 4 फरवरी 1922 को हुए चौरी चौरा क्रांति ने आजादी की दिशा और दशा को बदलने में महत्वपूर्ण रहा, वर्षों से असहयोग की परिपाटी और अंग्रेजों के अत्याचार को सहते-सहते जनता का आक्रोश अपनी हदों की सीमा को पार कर चूका

 ISSN 0976-0849

था। जुल्म और अत्याचार की चिंगारी ने स्वतंत्रता की बयार को हवा दे दिया जिसके बवंडर में अंग्रेजी सत्ता की नीव जड़ से उखड़ गयी। चौरी चौरा की अविस्मर्णीय अभंग गाथा ने स्वतंत्रता आन्दोलन में चौरी चौरा को देखने की दृष्टि बदल दिया। अपनी खोयी प्रतिष्ठा, सम्मान को पाने में इस धरती और शहीदों स्वतंत्रता सेनानियों को लम्बी कानूनी दस्तावेजों से गुजरना पड़ा। शताब्दी वर्ष में भारतीय शहीदों स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति सम्मान और श्रद्धा के भाव जयकारो से चौरी चौरा गुंजित होगा।

संदर्भ ग्रन्थ :

- श्रीवास्तव, अनिल कुमार, चौरीचौरा का स्वातंत्र्य समर : एक ऐतिहासिक दस्तावेज, 1986 ई.
- कुशवाहा, सुभाष चन्द्र, चौरीचौरा विद्रोह और स्वाधीनता संग्राम, आजकल/साहित्य और संस्कृति का मासिक/अक्टूबर 2013 ई.
- वीकीपिडिया – द बायोग्राफी ऑफ महामना
- दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय के इतिहासकारों से बातचीत के आधार पर
- संपादक– चतुर्वेदी, हिमांशु, चौरी चौरा : एक पुनरावलोकन, राष्ट्रीय आयाम की स्थानीय घटना, एकेडमिक हाइट्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2021 ई.

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 157-166

कलात्मक प्रतीक के रूप में प्राचीन भारतीय सिक्के

डॉ. मनीषा शरण*

सारांशः सिक्के समाज की छवि के पुनर्सृजन के लिए अनिवार्य ऐतिहासिक सामग्री हैं। एक छोटा सिक्का कितना महत्वपूर्ण व प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेज है इसका पता उसके इतिहास में जाये बिना नहीं लग सकता। राजा, राजधर्म और राजाओं की रुचियों का भी बोध हमें प्राचीनकालीन सिक्कों से मिलता है। मुद्राओं पर उत्कीर्ण पशु-पक्षी, अस्त्र-शस्त्र एवं अन्य वस्तुओं के अध्ययन से शासकों के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित बातों की जानकारी मिल जाती है। सिक्के तत्कालीन आर्थिक स्थिति के परिचायक हैं। इनकी बहुलता सामान्यतः आर्थिक उन्नति एवं व्यापार-वाणिज्य की प्रगति की सूची मानी जाती है। रोमन सिक्के भारत और रोम के मध्य व्यापारिक सम्बन्धों को प्रमाणित करते हैं तथा विदेशी व्यापार के साक्ष्य उपस्थित करते हैं। पुराने सिक्के कौतूहल पैदा करते हैं। हमें अतीत के चिन्तन में ले जाते हैं। सिक्कों की कहानी मानव जाति के इतिहास के साथ जुड़ी हुई है। सिक्कों का अध्ययन प्राचीन भारत के इतिहास पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है।

बीजशब्दः आहत सिक्के, हिन्द-भवन, औदुम्बर, कलात्मकता, शिल्पांकन, मुद्रालेख, देशज भाव, विदेशी प्रभाव, अग्रभाग, पृष्ठभाग, पशु जगत।

भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में प्राचीन भारतीय सिक्कों का कलात्मक महत्त्व कम नहीं है। यह सत्य है कि अधिकांश सिक्के जिनका हम लोगों ने अध्ययन किया है, वे कलात्मक महता से वंचित हैं। परन्तु कुछ सिक्के अत्यन्त लयपूर्ण हैं जो इतिहास में अपने महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए सिक्के ढालने वाले कलाकारों की निपुणता का परिचय देते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों के सिक्कों के कलात्मक महत्ता को अग्रलिखित ढंग से वर्णित किया गया है-

* 'गुलमोहर', परमेश्वर दयाल पथ, बरमसिया, देवघर-81412 (झारखण्ड); मोबाइल - 9934835442

 ISSN 0976-0849

आहत सिक्के-

आहत सिक्कों के बारे में जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि उनके आकार अनिश्चित हैं। उनसे प्लास्टिक कला को कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचा है। हालांकि, यह भी सत्य है कि मौर्य कालीन एवं बाद के दिनों में इस कला का उत्तरोत्तर उत्कर्ष नहीं हुआ था।[1] उनके आकार एवं चित्रों के आधार पर कोई विशिष्ट कलात्मक गुण का परिचय नहीं मिलता है।[2]

ढाले गए स्थानीय एवं जन-जातीय सिक्के-

इन सिक्कों के निर्माण में सिक्के निर्माता उतने सफल नहीं हुए। कुछ मुद्राशास्त्रियों का कथन है कि इन सिक्कों पर हिन्द-यूनानी सिक्कों का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। परन्तु यह तथ्य मात्र औदुम्बर सिक्कों को छोड़कर अन्य सिक्कों के सम्बन्ध में सत्य प्रतीत नहीं होता है[3], क्योंकि आरम्भिक त्रिकोणीय प्रकार के सिक्कों पर वनस्पति एवं मवेशियों के चिह्न एवं श्री लक्ष्मी, यक्ष और शिव इत्यादि देवताओं वाले सिक्कों पर किसी प्रकार के विदेशी प्रभाव का आभास नहीं होता है। इस संबंध में कौशाम्बी एवं उज्जैनी सिक्के अत्यन्त ही विलक्षण बताये जाते हैं। उनके आकार से स्वदेशी सिक्कों का बोध होता है। उनसे समकालीन मूर्तिकला का भी प्रभाव ज्ञात होता है।[4]

औदुम्बर शासक धरधोष के रजत सिक्कों के अग्रभाग में विदेशी प्रभावों के अभास मिलते हैं। इन पर दाढ़ी वाले पुरुष की आकृति परिलक्षित है[5] जिसका दायाँ हाथ आगे की ओर फैला है। ऐलन ने बताया है कि यह चिह्न हर्क्युलस से ली गयी है। वे लाईसियस के हेमीद्रम पर अंकित बायें हाथ में गदे का अभाव है[6] परन्तु बाघ के छाल मौजूद हैं।

प्रारंभिक सिक्के मूलतः ताम्र के ही होते थे एवं सुरक्षा के साधनों के अभाव में सदियों से चलाये गए। कुछ सिक्के बुरी अवस्था में पाये गये। परन्तु जो कुछ भी मौजूद पाये गये हैं उनमें गुणों का पूर्णतः अभाव नहीं है। अयोध्या के कतिपय सिक्कों[7] पर गज लक्ष्मी की आकृतियाँ पूर्णत कलात्मक बताई जाती है एवं हम उसकी तुलना भरहुत, साँची एवं अमरावती से उपलब्ध नमूनों से कर सकते हैं। अमोधभूमि नामक कुणिन्द राजा के रजत सिक्कों पर "समभंग" रूप में अंकित आकृति से चित्रण में कड़ापन का आभास मिलता है।[8] वक्ष, कमर एवं शरीर के लोच से आकर्षण में वृद्धि होती है।[9]

कतिपय यौधेय सिक्कों का कलात्मक महत्त्व विलक्षण है। पृष्ठ भाग में देवी को आकृति त्रिभंग आकार को बतायी जाती है।[10] वह पारदर्शी लहंगा पहने हुये है। उसका दायाँ पैर सीधा एवं बायाँ घुटने से झुका हुआ है। बायें पैर की अंगुलियाँ जमीन पर अवस्थित हैं। यह आकृति सिन्धु घाटी की नृत्य करने वाली नर्तकी के समान है।[11]

आरम्भिक स्वदेशी सिक्कों पर वनस्पति एवं मवेशियों की आकृतियाँ देखी गयी हैं। वनस्पतियों में मुख्य वृक्ष, कमल एवं ताड़ के पेड़ बताये जाते हैं। कमल आसन एवं नारी देवियों के हाथ में लक्षण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं पर ये आकृतियाँ स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त हुई हैं। अयोध्या के सिक्कों पर खिलते हुए कमल की आकृति है।[12] ताड़ के वृक्ष पर आकृति कम विलक्षण एवं आकर्षक नहीं है। अयोध्या[13] एवं तक्षशिला[14] के सिक्कों पर हल्की आकृति अत्यन्त ही सभ्य एवं विलक्षण है। जहाँ तक मवेशियों का प्रश्न है, साँढ़, हिरण, हाथी, घोड़े एवं मोर इत्यादि आकृतियाँ अपने कलात्मक महत्त्व के लिए विलक्षण बताई जाती हैं। औदुम्बर सिक्कों पर कुबड़े साँढ़ की आकृति अत्यन्त ही मर्मज्ञ ढंग से चित्रित की गयी है। चित्रकार ने बड़े चौड़े आकार में मवेशी के मर्यादा को चित्रित किया है। यह चित्रण अत्यन्त ही प्रतिबन्ध एवं यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।[15] साँढ़ के गले के नीचे के झुर्रीदार भाग को बड़ी ही सच्चाई के साथ चित्रित किया गया है। चित्रकारी सिन्धु घाटी की मुहर मछली की आकृति का ख्याल कराती है।[16] कुणिन्द के रजत सिक्कों पर हिरण की आकृति विद्यमान है। परन्तु मवेशी की आकृति का चित्रण यथार्थवादी नहीं है।[17] इसकी पूँछ घोड़े की पूँछ के समान है।[18] अयोध्या के वासुदेव के सिक्कों पर हाथी की आकृति प्रदर्शित की गई है एवं पैरों से शरीर की गति का आभास मिलता है।[19] यदाकदा बड़े ही सुन्दर ढंग से खिलते हुए पौधा[20] एवं 'पूर्णधट'[21] का चित्रण किया गया है।

हिन्द-यवन सिक्के-

विदेशी शासकों के सिक्के भारत में बैक्ट्रिया के यवन विजेताओं के आगमन के साथ प्रवर्तित हुण। मुद्राशास्त्रियों ने यह स्वीकार किया है कि बैक्ट्रिया के यूनानी राजाओं के सिक्के सीरिया के सेल्यूसिड सम्राटों के सिक्कों के समान हैं। परन्तु कलात्मक महत्त्व में वे अपेक्षाकृत अधिक हैं।[22] हिन्द-यूनानी सिक्कों के अग्रभाग से चित्रण में निश्चितता एवं यथार्थवाद का बोध होता है। पृष्ठ भाग में देवी-देवताओं की वृहद् आकृतियाँ पैक्सीटेलियन प्रकार के सिक्कों की आकृतियों का ख्याल कराते है।[23] राजाओं एवं राजघरानों की आकृतियाँ ऊँचे स्थान पर सुशोभित रहती हैं। हम जानते हैं कि डायोडोटस एवं युथिडेमस की आकृतियाँ यथार्थवादी न होकर परम्परागत हो गई हैं एवं उनमें कोई विशिष्ट लक्षण का नितान्त अभाव है।[24] इन उरोजों से राजा की युवावस्था, परिपक्वता एवं बुढ़ापे का आभास मिलता है।[25] यदा-कदा मुस्कराते चेहरों का परिचय मिलता है। परन्तु डिमिट्रियस प्रथम[26] एवं युक्ट्रीडस प्रथम[27] के चित्रण में आदर्शवाद का आभास मिलता है। यह विशेषतया बैक्ट्रिया की नहीं बताई जाती है।[28] पृष्ठ भाग की आकृतियाँ यूनानी पुराण से ली गई हैं। उनके संबंध में कहा गया है "designed with a grace and beauty reminiscent of the school of Praxitales and lysippus. दिव्य यूनानी सिक्कों का कलात्मक चित्रकारी अपेक्षाकृत अधिश्रेष्ठ बताई जाती है।[29] परन्तु कालक्रम में भारत के यूनानी राजे पूरब की ओर बढ़ते चले गये। परिणामत: बैक्ट्रिया के साथ उनका संबंध

 ISSN 0976-0849

अत्यन्त ही निकट नहीं रह सका।[30] फलस्वरूप उनके सिक्कों का कलात्मक गुण अवनति का शिकार हो गया। ह्वाइटहेड ने उनके कलात्मक गुणों को तीन मुख्य वर्गों में विभत किया है[31]–

(i) those of superior,

(ii) intermediate and

(iii) inferior style and workmanship, each with its own group of monogram. The classes are associated respectively with the western, middle snd eastern yavana domains or Kabul, Gandhara and the Punjab (Sialkot)."

इण्डो सीथियन प्रकार के सिक्के उतने कलात्मक नहीं हैं, जितने हिन्द–यूनानी सिक्के। फिर भी माऊज, एजीस एवं एजिलिसेस अपनी चित्रकारी की विशेषता के कारण हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। गज लक्ष्मी[32] एवं देवताओं और देवियों[33] का क्रमशः बायीं एवं दायीं ओर सुसज्जित आकृतियाँ अत्यन्त ही सौन्दर्यपूर्ण हैं। इण्डो पार्थियन सिक्कों पर राजा गोन्डोफर्न्स के आवक्ष से परिपक्वता झलकती है एवं पगड़ी से आकृति की खूबसूरती बढ़ती है।[34] कुषाण राजाओं के संरक्षण में भारतीय कला का उत्कर्ष ने मात्र मूर्तिकला के क्षेत्र में ही देखा गया, वरन् मुद्राशास्त्र के क्षेत्र में कम प्रगति नहीं हुई। इसके उदाहरण हमें अनेकानेक चिह्नों एवं आकृतियों से मिलते हैं।[35] सिक्कों पर अंकित वीमकडफिशस की आकृति मठ में पाई गई चित्रकारी के सदृश्य लगती है।[36]

दक्षिणी भारतीय सिक्के–

दक्षिण भारत के सिक्के प्रायः मामूली धातु के बने होते हैं। उनमें लीड, पोटीन एवं ताम्र मुख्य बताये जाते हैं। इन पर मानवीय आकृतियों का अभाव रहता है एवं इनके अनेकानेक प्रकार भी नहीं होते। सातवाहन शासकों द्वारा चलाये गये कुछ रजत सिक्कों को छोड़कर हमें अन्यत्र दक्षिण भारत में कहीं भी मानवीय आकृति के सिक्के नहीं मिलते। सातवाहन शासकों ने पश्चिमी क्षत्र शासकों के अनुकरण में रजत सिक्कों को चलाया। संभवतः दक्षिणी भारतीय सिक्के विदेशी मुद्राओं के प्रभाव से वंचित रहे। ऐसा अभास हमें उसके कलात्मक सौन्दर्य के अभाव से होता है, जो उत्तरी भारतीय सिक्कों में व्याप्त है।[37]

गुप्तकालीन सिक्के–

गुप्तकालीन सिक्के वास्तविक एवं मूलभूत हैं। इनमें समकालीन सौन्दर्यमयी संस्कृति का परिचय समाविष्ट है।[38] चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिक्कों पर रूपाकृति के उल्लेख से इस तथ्य की सत्यता सिद्ध होती है। वास्तव में, सर्वप्रथम गुप्तकालीन सिक्कों पर कुषाणों का प्रभाव हावी हुआ। आगे चलकर मुद्रकों ने इस प्रभाव पर काबू पा लिया। गुप्त राजाओं ने स्वदेशी तरीकों के द्वारा विदेशी प्रभावों को दूर किया। कोट एवं पायजामे का स्थान धोती एवं कुर्ते ने लिया। सिक्कों के पृष्ठभाग

में अकिल आरदोक्षों को आकृति का स्थान भारतीय देवी लक्ष्मी ने लिया। परिणामत: यूनानी सिक्कों के ऊपर अंकित आकृतियों का प्रभाव गुप्तकालीन सिक्कों पर नगण्य हो गया। परन्तु गुप्तकालीन सिक्कों पर कलात्मक विचारधारा का आदर्शवादी प्रभाव अक्षुण्ण रहा।[39] धोती एवं साड़ियों पर चुन की आकृति अत्यन्त ही कलात्मक बतायी जाती है एवं कमरबंद के तने हुए बंधन अतिसुंदर प्रतीत होते हैं।[40] प्राय: राजा-महाराजा घोड़े पर सवार होकर शिकार किया करते थे। शिकार लोग तीर-धनुष या तलवार से करते थे। प्राय: बाघ, सिंह, गेंडा इत्यादि जीवों का शिकार होता था । वीणावाद प्रकार के सिक्कों से यह विदित होता है कि सभी भूमि में व्यस्त वीर संगीत के भी प्रेमी होते थे। अत: समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं कुमारगुप्त प्रथम बहुत बड़े धनुर्धर थे।[41]

सिक्कों के पृष्ठ भाग में कतिपय नारियों की आकृतियाँ दुबली-पतली एवं स्वस्थ सजी तथा सुन्दर मालूम पड़ती है।[42] कुमारगुप्त प्रथम के सवार होकर सिंहबद्ध प्रकार के सिक्के के पृष्ठभाग में महिलाएँ एवं पक्षी की आकृति दृष्टिगोचर होती है। महिला मोर को खिलाती हुई दिखाई देती है। इसी प्रकार की आकृति हमें सुनेत से प्राप्त एक मुहर पर मिलती है।[43] हस्तिनापुर से प्राप्त मिट्टी की एक मुहर पर महिला अपने हाथ में मोर पकड़े दृष्टिगोचर होती है।[44]

पशुओं की आकृति अत्यन्त ही सौन्दर्यपूर्ण है। यह कहने में कोई अतिरंजना नहीं कि गुप्तकालीन चित्रकार मवेशियों एवं पक्षियों के चित्रण में हिन्द-यूनानी शासकों से अधिक सक्षम थे। गुप्तकालीन अश्वों के बारे में कहा गया है "Passes a grace and a style all their own."[45] चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं कुमारगुप्त प्रथम के अश्वारोही प्रकार के सिक्कों के द्वारा समकालीन अश्वारोहण की अच्छी जानकारी मिलती है।[46] ऐसा मालूम पड़ता है कि संस्कृत साहित्य के उल्लेखों के अनुसार यह कार्य किया गया है।[47]

कुमारगुप्त प्रथम के गेंडा बद्ध प्रकार के सिक्कों पर गेंडा की आकृति अत्यन्त ही कलात्मक है। सिंह के खौफनाक रूप को भी अत्यन्त ही मर्मज्ञता के साथ प्रस्तुत किया गया।

शिल्प सम्बन्धी प्रतीक

कतिपय सिक्कों पर शिल्पकारी प्रतीक भी मिलते हैं जिनका उल्लेख निम्नांकित है–

(क) व्हाइटहेड का मत है कि हिन्द-यूनानी शासक आगधोक्लिज के ताम्र सिक्कों पर 'Stupa sumounted by star' की आकृति विद्यमान है।[48] यह एक छ: मेहराब वाला चिह्न है। मुद्राशास्त्रियों ने इसे "पहाड़ी चिह्न" को संज्ञा दी है। तीन, पाँच एवं छ: वृत खण्ड वाले चिह्न सामान्यत: प्राचीन भारत के स्वदेशी सिक्कों पर पाये गये हैं।

(ख) प्राचीन भारतीय कला में घेरे का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी सहायता से पेड़ों को घेरकर[49] आहत सिक्कों को काफी सुन्दर बनाया गया।[50] जनजातीय सिक्कों पर यह सजावट

 ISSN 0976-0849

का काम करता है। कनिंघम ने इसे बौद्ध मत से जोड़ने की चेष्टा की। परन्तु इस चिह्न को किसी धर्म विशेष से जोड़ना युक्तिसंगत नहीं है[51] क्योंकि अनेकानेक मतों के साथ इसका संगत रहा है।

(ग) पांचाल सिक्कों पर घेरे के अन्दर कुछ देवी-देवताओं की आकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।[52] स्त्रियों की आकृतियाँ प्रायः स्तम्भों के बीच शोभायमान होती हैं। हतर (Hatara) की खुदाइयों से निकाली गई प्रतिमाओं में ऐसी आकृतियाँ पाई गई हैं।[53]

(घ) हुविष्क के सिक्कों पर कुछ ताखों की आकृति दृष्टिगोचर होती है।[54]

(ङ) जयगुप्त, इंद्रमित्र एवं पांचाल के प्रजापति मित्र के सिक्कों पर गुम्बदाकार मंदिर दृष्टिगोचर होती है।[55] घेरे के अन्दर मंच पर की आकृति दिखाई देती है। गुम्बद के ऊपरी भाग में मेहराबदार प्रकार को आकृति दिखाई देती है। उसके ऊपर एक कलश रखा हुआ है। यह गुम्बद Ogee Arch के सदृश्य लगता है।[56] ऊपर की ओर दो मुड़ी हुई आकृतियाँ भी दिखाई देती हैं जिनके छोर पर दो वक्र रेखाओं के समान दूसरी आकृतियाँ देखी जाती हैं। भरहुत, साँची एवं अमरावती की कथाओं में ऐसी गुम्बदाकृति देखने को मिलती है।

(च) औदुम्बर के सिक्कों के पृष्ठभाग में एक महल की आकृति है। इस संबंध में ऐलन का कथन है– "यह एक दो तल्ला का भव्य एवं खम्भे पर निर्मित स्तूप है।"[57] जायसवाल ने इसे "एक छोटा दालान"[58] की संज्ञा दी है। कनिंघम ने इसे "खम्भे पर स्थित दो या तीन तल्ले का नुकीले छत वाला मन्दिर" कहा है।[59] कुमारस्वामी के शब्दों में यह "railed (circular) pavillian" with four or five pillars and "domed roof with projecting caves and small finial"[60] कहा गया है। परन्तु औदुम्बर के सिक्कों पर महलों की आकृति छोटे दालान या स्तूप के रूप में नहीं देखी गई थी। परन्तु संभावना है कि यह कोई शिव मंदिर है क्योंकि इसके चारों ओर त्रिशूल एवं युद्ध कुठार दिखाई देते हैं।[61] यह सर्वाधिक प्राचीन हिन्दू मंदिर का एक उदाहरण है।[62]

आगे हम औदुम्बर शासकों के ताम्र सिक्कों पर पाई गई महलों को आकृतियों की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। निम्नलिखित विशेषताएँ महत्त्वपूर्ण हैं।[63]

1. नीव के साथ स्तंभ दृष्टिगोचर होता है। इनके ऊपर गुम्बदाकार आकृति देखी जाती है जिसके आगे गुफायें होती हैं।[64]

2. नींव के साथ स्तंभ एवं ऊपर में गुम्बदाकृति जिसके ऊपर छोटे-छोटे कलश होते हैं।[65]

3. मंच के ऊपर बड़े-बड़े स्तंभ जो गुफाओं के समान छत से लगे होते हैं। सबसे ऊपरी छोर पर टोटी सो चोटी दृष्टिगोचर होती है।[66]

इन भवनों के छतों के आकार के विषय में एस.वी. सोहनी का मत है कि हिमालय के ऊपर काफी वर्षा के कारण छतों के आकार थोड़े तिरछे हो गये हैं।[67] इस संबंध में उल्लेख करने योग्य बात यह है कि ऐसी आकृतियाँ ईसा पूर्व दूसरी एवं प्रथम सदी में भरहुत,[68] अमरावती[69] एवं साँची[70] में विद्यमान थे। वे ओढ़म्बर के सिक्कों के समकालीन बताये जाते हैं जिनकी अवधि ईसा पूर्व प्रथम या दूसरी सदी में है।[71] निःसंदेह ही गुम्बदाकृति भौगोलिक वजहों से नहीं वरन् शिल्पकारी कारणों से ऐसी मालूम पड़ती है।

औदुम्बर के सिक्कों से प्राप्त चित्रकारी के आँकड़े कई कारणों के चलते महत्त्वपूर्ण हैं।[71] सर्वप्रथम वे बतलाते हैं कि वैष्णव मंदिरों के समान शैव मंदिर भी थे। यह ईसा की प्रथम सदी के खरोष्ठी लिपि में उपलब्ध शिलालेखा से विदित होता है जो पंजतार से पाया गया और इसकी अवधि 122 ई. बतायी जाती है। शिलालेखों की दूसरी पंक्ति इस प्रकार है– "मोइके के उरुमुजपुतर करविदे शिवथले[73] इसका अनुवाद इस प्रकार है यह मोईका की पवित्र भूमि बतायी गयी थी।[74] शिवथल एक शैव सेवाश्रम का द्योतक है। महाकाव्यों में हमें स्थल एवं स्थान[75] का उल्लेख मिलता है। इन पदों को तीर्थस्थान के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।[76] सिक्कों के उदाहरण के साथ-साथ हेशिकीयस एवं स्टोवियन्स जैसे विदेशी लेखकों को बातों से यह मालूम होता है कि उन दिनों उत्तर-पश्चिमी भारत में शिव की उपासना व्यापक पैमाने पर प्रचलित थी।[77]

इसके अतिरिक्त मंदिर की नींव चौकोर थी जिसके चारों ओर घेरे थे।[78] संभवतः ऐसा आश्रय में प्रयोजन से किया गया हो।[79] यह भारतीय आर्य फैशन में बनाई गयी मंदिरों के सदृश्य लगती है।[80]

अंततोगत्वा यह भारतीय मंदिर परम्परा के शिखर पर प्रकाश डालता है। कुमारस्वामी का कथन है "Sikhara, an accessary rather than an essential, begins to appear in the late Gupta period". परन्तु औदुम्बर के सिक्कों पर मंदिरों की आवृति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईसा पूर्व प्रथम एवं दूसरी सदी के लगभग भारत में शिखर की परम्परा व्याप्त थी।[81] इस समय भवन निर्माण की सामग्रियाँ जीर्ण होने के कारण हमारे बीच आज व्याप्त नहीं हैं।

सन्दर्भः

1. बनर्जिया, जे.एन., डेवेलौपमेंट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी, ओरिएण्टल पब्लिशर, कलकत्ता, 1973 ई., पृष्ठ 125
2. मार्शल, जॉन, ए गाइड टू तक्षशिला, खण्ड I, II, III, न्यू एरा पब्लिशिंग कम्पनी, कैम्ब्रिज, 1951 ई., पृष्ठ 24
3. गुप्ता, पी.एल., भारत के पूर्व कालिक सिक्के, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1982 ई., पृष्ठ 37
4. बनर्जिया, जे.एन., तत्रैव, पृष्ठ 156
5. के.क्वा इं., कैटलग ऑफ क्वायन्स इन इण्डियन म्यूजियम, कैलकटा, वॉल्यूम प्रथम-आक्सफोर्ड,

1906 ई., फलक XIV, 14
6. तत्रैव, फलक IXXXIV
7. के.क्वा इं., फलक XIV, 14–15
8. तत्रैव, फलक XXII, 1
9. तत्रैव, फलक XXII, 2-5
10. तत्रैव, फलक XL, 4
11. मार्शल, जॉन, मोहेनजोदड़ो ऐण्ड द इण्ड्स सिविलीजेसन, हॉपमैन पब्लिकेशन, ऑक्सफोर्ड, खण्ड III, फलक XCIV, 6
12. के.क्वा. इं., फलक XVI, 6
13. तत्रैव, फलक XVII, 11-18
14. तत्रैव, फलक XLVI, 2-4
15. शरण, महेश कुमार, ट्राइबल क्वायन्स, ए स्टडी, नई दिल्ली, 1972 ई., सिमबल्स ऑन द क्वायन्स ऑफ, औदुम्बर, पृष्ठ 262
16. मार्शल, जॉन, मो.इ.सिं., खण्ड ।।।, फलक CXI
17. के.क्वा. इ., फलक XXI, 1-16, XXIII, 1-16
18. तत्रैव, फलक XXII, 1-11, 13-16, XXVII, 1-4, 6, 11
19. तत्रैव, XVI, 13
20. तदैव, XXXII, 10–13 एवं 15
21. तत्रैव, फलक XIX, 17, 19 एवं 20
22. लाहिरी, ए.एन., कौर्पस ऑफ इण्डोग्रीक क्वायन्स, कलकत्ता, 1965 ई., पृष्ठ 10
23. कैटलॉग ऑफ द क्वायन्स ऑफ द गुप्त डायनेस्टीज ऐण्ड ऑफ शशांक इन ब्रिटिश म्युजियम, परिचय, पृष्ठ I-VII
24. लाहिरी, ए.एन., तदैव, पृष्ठ 11
25. लाहिरी, ए.एन., तदैव, फलक XI, 7, XVI, 2, 5, XXIII, 4
26 हाइट किंग सेल केटलॉग, भाग–1, प्रकार 2 फलक X, 955
27. सेल्टमेन, सी, ग्रीक क्वायन्स, लण्डन, 1955 ई., फलक LV, 5
28. लाहिरी, तत्रैव, पृष्ठ 11
29. मार्शल, जान ए., गाइड टू तक्षशिला, तत्रैव, पृष्ठ 27
30. लाहिरी, ए.एन., तत्रैव, पृष्ठ 12
31. न्यूमिस्मैटिक क्रौनिकल, 1923 ई., पृष्ठ 310
32. पंजाब म्युजियम कैटलॉग, फलक XIII, 332
33. तदैव, फलक XIII, 334
34. पांचाल म्युजियम कैटलॉग, फलक XV, पृष्ठ 59

35. तत्रैव, XVII, 36
36. तत्रैव, पृष्ठ 142
37. लाहिरी, बेला, अर्ली इण्डीजेनस क्वायन्स ऑफ साउथ इंडिया (अर्ली इण्डिजेनस क्वायन्स में) पृष्ठ 8
38. अग्रवाल, वी.एस., जर्नल ऑफ द न्युमिस्मैटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, XII, पृष्ठ 199
39. लाहिरी, बेला, 'अर्ली इंडिजेनस क्वायन्स' में अर्ली इंडिजेनस क्वायन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया, पृष्ठ 63
40. कैटलॉग ऑफ गुप्त गोल्ड क्वायन्स, फलक, पृष्ठ CIII
41. तत्रैव, पृष्ठ 177
42. जर्नल ऑफ द न्युमिस्मैटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 131, फलक VVI, II, VIII, II
43. थाप्याल, के.के. अर्ली इण्डियन इण्डिजेनस क्वायन्स, पृष्ठ 127
44. ऐनसियन्ट इण्डिया, तत्रैव, पृष्ठ 16
45. शिथोले, जर्नल ऑफ द न्युमिस्मैटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, X, पृष्ठ 125
46. कैटलॉग ऑफ गुप्त गोल्ड क्वायन्स इन ब्रिटिश म्युजियम, फलक X, 6-8 एवं XIII, 3,5
47. हर्षचरित, पृष्ठ 63 (कावेल संस्करण), के.गु.गो.क्वा., फलक XXV, 1-10
48. ह्वाइटहेड, आर.बी., कैटलॉग ऑफ द क्वायन्स इन द पंजाब म्युजियम, पृष्ठ 18, फलक II, 51-52
49. कैटलॉग ऑफ क्वायन्स इन इण्डियन म्युजियम, पृष्ठ LXXVI, 92, पृष्ठ LXXV, 68-7,140, 285, 241-44, पृष्ठ XC, 140-4, 248, पृष्ठ XCIII, 130, 133, 147, 150, 245, 249, 257, पृष्ठ LXXXVI, 121, 127, 128, 212, 232, 240, 265-6
50. तत्रैव, फलक XXVII, 8-10, 15 से 17, 20, XXVIII, 4 से 10, 12,13,18,20,21. क्वा.इ. VII, 7
51. मण्डाकर, जी.आर., कार्मा इकललेक्चर्स ऑन ऐनसियन्ट इण्डियन न्युमिसमैटिक्स, कलकत्ता, 1921 ई., पृष्ठ 4
52. 7, के.क्वा.इ., फलक XXVII, 8-16, XXVIII, 4-8, 20 एवं 21
53. ठाकुर, उपेन्द्र, मिन्ट्स एण्ड मिन्टिंग इन इण्डिया, ज.न्यू.सो.ऑफ इण्डिया, खण्ड XXII, पृष्ठ 75 और आगे
54. क्वा.गीसी.ब्रि.म्यू., फलक XXVIII, 24, देखो इत्सिंग-ए रिकार्ड ऑफ दि बुदिष्ट रिलिजन (कटकक्षशु), पृष्ठ 113
55. कं.क्वा.इ., फलक XXIX, 3, 5, XXVIII, 3, क्वा.इ. फलक VII, देखो ज.न्यू.सी.इ. III एण्ड II पृष्ठ 79, बनर्जिया, वही, पृष्ठ 146
56. जर्नल ऑफ द न्युमिसमैटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, खण्ड II, पृष्ठ 79
57. क.क्वा.इ., परिचय, फलक LXXXIII एवं पृष्ठ 122
58. जायसवाल, के.पी., हिन्दू पोलिटी, मद्रास, 1944 ई., पृष्ठ 161
59. जर्नल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1914 ई., पृष्ठ 250
60. (कुमारस्वामी, ए.के.), हिस्ट्री ऑफ इण्डियन ऐण्ड इण्डोनिशयन आर्ट, लण्डन, 1927 ई., पृष्ठ 18
61. डेवेलॉपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ 116
62. ज.न्यू.सी.इ., IV, पृष्ठ 57

 ISSN 0976-0849

63. सिंह, एस.डी., तदैव, XXXIV, भाग II, पृष्ठ 197, 199
64. के.क्वा.इ., फलक XV, 1 एवं 2, क्वा.इ. फलक IV, 2
65. कुमारस्वामी, ए.के., तदैव, फलक XXX, 117
66. के.क्वा.इ., फलक XV, 4,6 एवं 10
67. ज.न्यू.सी.इ., IV, पृष्ठ 57
68. गांगुली, ओ.सी., इण्डियन आर्किटेक्चर आकृति-I, कुमारस्वामी, ए.के., तत्रैव, आकृति-43
69. कुमारस्वामी, ए.के., तत्रैव, आकृति 145
70. तत्रैव, आकृति 56
71. बनर्जिया, जे.एन., तदैव, पृष्ठ 118
72. तत्रैव, पृष्ठ 199-200
73. कोनो, एस., कॉर्पस इन्सक्रिप्सन्स इण्डिकेरम, खण्ड II, वाराणसी, 1979 ई., पृष्ठ 70
74. तत्रैव, पृष्ठ 70
75. महाभारत, III 84, 103
76. बनर्जिया, तत्रैव, पृष्ठ 129
77. तत्रैव, पृ. 129
78. के.क्वा.इ., फलक XV, 1, 2
79. बनर्जिया, तत्रैव, पृष्ठ 118
80. चक्रवर्ती, एस.के., जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, खण्ड II, पृष्ठ 67 एवं ज.रा.ए.सी.ब्रि 1888 ई., पृष्ठ 49 से 71 तक
81. कुमारस्वामी, ए.के., तत्रैव, पृष्ठ 20, पर्सी ब्राउन, इण्डियन आर्किटेक्चर (बुद्ध एवं हिन्दु काल), पृष्ठ 63, एम.के. शरण, ट्राइबल क्लायन्स : ए स्टडी, नई दिल्ली, 1972 ई., पृष्ठ 261

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 167-181

Plastic Pollution And Solution

Dr. Saroj Adittya Rajesh*, K.R.C. Reddy**

Abstract: The first synthetic plastic was created by Alexander Parkes, who exhibited it formally at the Great International Exhibition in London in 1862. Greek word "Plastikos" (which means "Capable of being shaped or moulded"). Plastic materials grew more popular and widely used in everyday human life as a result of their flexibility. The following plastic-made items are regularly used in greater quantities than necessary all over the world: plastic earbuds with sticks, plastic balloon sticks, plastic candy sticks, plastic ice-cream sticks, polystyrene (thermocol) for decorations, plastic cups and plates, plastic straws, plastic cutlery items like forks, spoons, and knives, trays, plastic stirrers, and plastic carry bags. The unscientifically discarded plastic from this excessive use upsets the natural equilibrium by creating soil pollution (landfills, microplastics), air pollution, water pollution, and harm to both human and animal health. As previously indicated, this causes a number of disorders, including disturbed hormonal development, a higher risk of kidney stones, breast cancer, liver cancer, obesity, issues with fertility, and other neurological symptoms. It is preferable to avoid using plastic-made objects in order to prevent the occurrence of the aforementioned disorders. Plastic should, however, mostly be used sensibly. Humans may stay safe, healthy, and disease-free by properly recycling plastic, eliminating unnecessary and inappropriate plastic use, and encouraging the use of natural items in place of plastic materials.

Keywords: Plastic; Flexibility; Polythene bags; Cancer; Microplastics; Plastic pollution

1. Introduction :

1.1. Pollution:

- Pollution, also called environmental pollution, the addition of any substance (solid, liquid, or gas) or any form of energy (such as heat, sound, or radioactivity) to the environment at a rate faster than it can be dispersed, diluted, decomposed, recycled, or stored in some harmless form[1].

*Junior Resident – I, Department of Rasa Shastra Evam Bhaishajya Kalpana, Faculty of Ayurveda, I.M.S, B.H.U, Varanasi. Email-Id: adityasaroj101@gmail.com
**Professor, Department of Rasa Shastra Evam Bhaishajya Kalpana, Faculty of Ayurveda, I.M.S, B.H.U, Varanasi. //Lecture delivered by the Author on the above topic on 22 August, 2023 during the Rashtra Sant Brahmalin Mahant Avaidyanth Smriti Seven day lecture series.

- The major kinds of pollution, usually classified by environment, are air pollution, water pollution, and land pollution.
- Modern society is also concerned about specific types of pollutants, such as noise pollution, light pollution, and plastic pollution.

1.2. Pollution in Ayurveda:

- Janpad is 'community', Udhwansha is 'destruction'.
- Destruction of complete Janapada (community) due to Maraka (disease), which becomes the reason for death of huge population, is considered as Janpadodhwansha.
- Natural disasters, pollution, and epidemiology are all associated with the concept of Janpadodhwansha.
- The Bhavas will be disrupted in Janpadodhwansha, and the same is true in terms of pollution. When the Janpadodhwanshakara Bhavas get vitiated, nature becomes unbalanced, resulting in natural disasters[2].
- Plastic pollution, a form of environmental pollution can thus be co-related to janpadodhwansha in ayurveda.

1.3. Plastic:

- The Greek term "Plastikos" (which means "Capable of being shaped or moulded") is where the English word "plastic" originates.
- Alexander Parkes invented the first synthetic plastic and officially displayed it at the Great International Exhibition in London in 1862.
- Polymers are the primary component of a wide variety of synthetic or semi-synthetic materials known as plastics.
- Petrochemicals, or chemicals derived from fossil fuels, are the main component of plastic.
- The excellent Barrier properties, high carrying capacity, low cost, lightness made the plastic so popular specially in packaging industries.
- Polyethylene, polyvinyl chloride, polystyrene is largely used in the manufacture of plastics.

1.4. Step-by-Step process to make plastic on an industrial level:

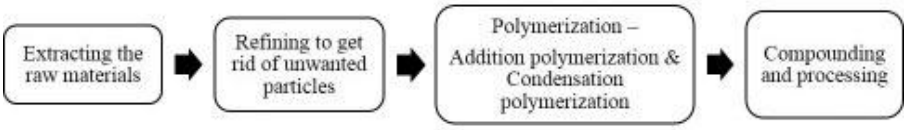

1.5. Processing of plastic from Crude oil:

1.6. Plastic Pollution:

- The buildup of plastic items in the environment that harms wildlife, habitats, or people is known as plastic pollution.
- By 2050, there will be more plastic in the oceans than fish, making it one of the major environmental challenges.
- Based on size, plastic trash is divided into micro, meso, and macro categories.
- Most plastics are slow to deteriorate because of their chemical composition, which makes them resistant to many natural processes of deterioration.
- Plastic pollution is a global problem. Approximately 7 billion of the 9.2 billion tonnes of plastic produced from 1950-2017 became plastic waste, ending up in landfills or dumped[3]. (UNEP)

2. Single Use Plastics (SUP's):

- India has defined SUP as "a plastic commodity intended to be used once for the same purpose before being disposed of or recycled" in its plastic waste management amendment rules, 2021.
- Our life is 100% dependent on single use plastic.
- Our daily life is filled with plastic right from tooth brushes to carry bags, water bottles, garbage bags, etc., especially on the most dangerous Single Use Plastic(SUP).
- It takes up to 1000 years to decompose, even then their Environmental legacy lasts forever. (Figure – 1)

 ISSN 0976-0849

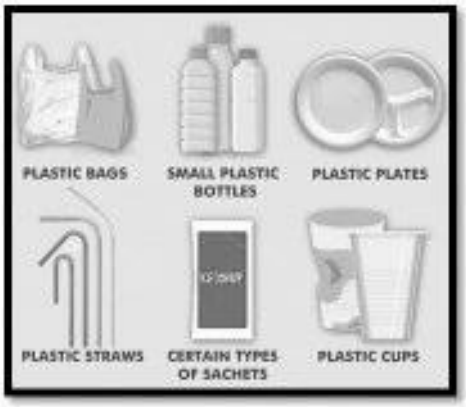

Figure – 1: Showing different articles made with Single Use Plastics (SUP's)

3. Products Banned In India From 2022:

1) Earbuds with plastic sticks
2) Plastic sticks for balloon
3) Plastic flags
4) Plastic candy/ ice-cream sticks
5) Thermocol decoration
6) Plastic plates/ cups/ glasses/ cutlery
7) Plastic straws and trays
8) Plastic wrapping on sweet boxes
9) Plastic invitation cards
10) Plastic cigarette packets
11) PVC banners less than 100-microns

Figure – 2: Showing list of banned SUP's from Uttar Pradesh Pollution Control Board (UPPCB)

3.1. Alternatives: (Table – 1)

Table – 1: Mentioning details of SUP items commonly used and their alternatives made by natural products and safe range of the plastics.

SUP Items	Alternatives For SUP Items
Ear buds with plastic sticks	Bamboo/ wooden sticks
Plastic sticks for balloons	Bamboo/ wooden sticks
Plastic flags	Paper/ Cloth flags
Plastic candy sticks, Ice-cream sticks	Bamboo/ wooden sticks
Polystyrene (thermocol) for decoration	Paper/ Cloth for decoration
Plastic cup & plates	Paper/ Mud cup, Plates made of banana, shawl, areca nut leafs
Plastic straws	Bamboo/ Paper straw
Plastic cutlery items such as forks, spoons, knives, trays	Bamboo/ wooden forks, spoons, knives
Plastic stirrers	Bamboo/ wooden stirrers
Plastic carry bags	Paper bags, clothes bags, jute bags. Crochet bags, muslin bags, Biodegradable plastic bags, and plastic bags above 120 micron.

3.2. Plastic Waste Generation: India[6] -

- In India, average plastic waste generation is about 26,000 tones per day and it is about 18 % of total MSW generation i.e. 1,41,064 tones/day.
- On an average, about 12,970 tonnes of single use plastic is generated per day in India.
- Only 60% of the plastic waste produced is recycled and balance 10,400 tonnes of plastic is either landfilled or left unattended in environment causing land, air and water pollution.
- As per Annual report of Central Pollution Control Board (CPCB) on the implementation of Plastic Waste Management Rules, 2016, the plastic waste generated in the country during 2020 – 2021 was 41,26,997 Tonnes per annum (TPA)
- Uttar Pradesh generated about 3,75,950 TPA of plastic waste in the year 2020 – 2021.

(Table – 2, Figure – 3)

Table – 2: Yearly plastic waste generated in India from 2015 -2020.

(TPA = Tonnes per annum)

India's Plastic Waste Generation Source: Central Pollution Control Board, India	
2015 – 2016	15,89,392 TPA (Information from 19 States/UTs)
2016 – 2017	15,68,733 TPA (Information from 21 States/UTs)
2017 – 2018	6,60,760 TPA (Information from 14 States/UTs)
2018 – 2019	33,60,043 TPA (Information from 35 States/UTs)
2019 – 2020	34,69,780 TPA (Information from 35 States/UTs)

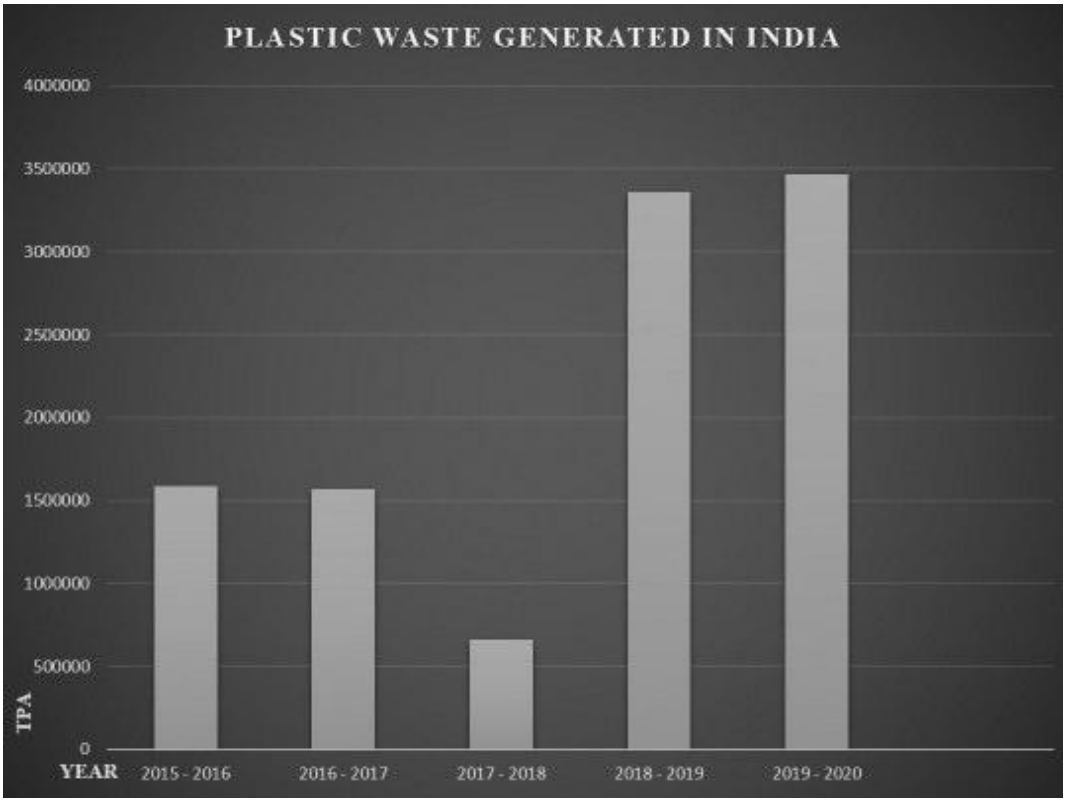

Figure – 3: Bar diagram referring the values mentioned in (Table – 2)

4. Chemicals In Plastic: (Table – 3)

Table – 3: Indicating chemicals present in various Plastic commodities

CHEMICALS	COMMODITIES
Polypropylene (PP)	Food containers, appliances, car fenders (bumpers).
Polystyrene (PS)	Packaging foam, food containers, disposable cups, plates, CD boxes.
High impact polystyrene (HIPS)	Fridge liners, food packaging, vending cups.
Acrylonitrile butadiene styrene (ABS)	Electronic equipment cases as computer parts, drainage pipe etc.
Polyethylene Terepthalate (PET)	Carbonated drink bottles, jars, plastic films, microwavable packaging.
Polyester (PES)	Fibres, textiles.
Polyamides (PA) (Nylons)	Fibres, toothbrush bristles, fishing line, under the hood car engine mouldings.
Poly Vinyl Chloride (PVC)	Plumbing pipes and guttering, shower curtains, window frames.
Polyurethanes (PU)	Cushioning foams, thermal insulation foams, surface coatings, printing rollers.
Polycarbonate (PC)	Compact discs, eyeglasses, security windows, traffic lights, lenses.
Poly vinylidene chloride (PVDC)	Food packaging.
Polyethylene (PE)	Wide range of inexpensive uses including super market bags, plastic bottles.
Polycarbonate/Acrylonitrile Styrene (PC/ABS)Butadiene	Car interior and exterior parts.

5. Microplastic Pollutant:

- Microplastics are very small pieces of plastic that come from the breakdown of bigger plastics as well as the design of commercial products.
- Microplastics are described as having a diameter of less than five millimeters (0.2 inches), which is smaller than the typical pearl used in jewelry.
- Microfibers shed from clothing and other fabrics, such as fishing nets, as well as

microscopic particles made for commercial use, such as those found in cosmetics, are the two main types of microplastics.

- Particles known as secondary microplastics are produced when bigger plastic objects, such as water bottles, break down. The sun's rays and ocean waves are the key environmental variables that contribute to this disintegration.

5.1. Environmental effects:

- When unscientifically discarded, plastic products contaminate soil and water, upsetting the ecosystems' delicate equilibrium.
- The majority of the time, especially in urban areas, we deal with flooded roads and homes, which is primarily caused by the drainage system being clogged by SUPs left lying around.
- Blockage of sewage systems and creation of mosquito breeding grounds increase the danger of malaria transmission.
- The open burning of SUP materials pollutes the atmosphere.
- The land is less fertile for agricultural use and the refilling of ground water aquifers is halted by the polluted SUPS.

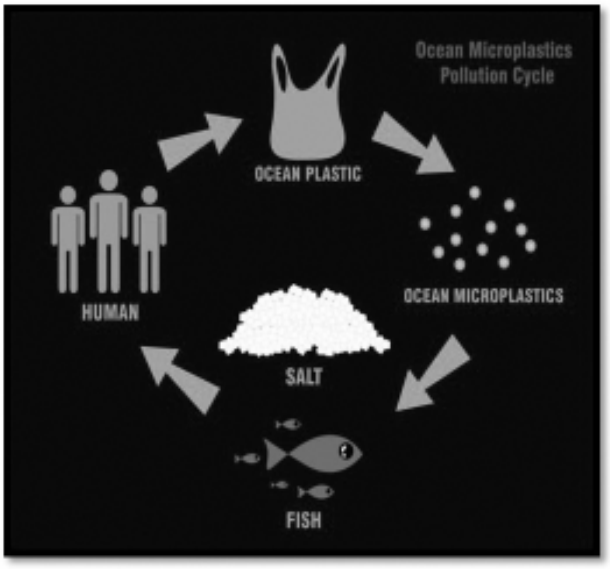

Figure – 4: Denoting Ocean Microplastics Pollution Cycle

5.2. Effects of Microplastic:

- MP toxicity in both fish and humans is still being researched.
- After being consumed by lesser organisms, MNPS poses a risk for trophic

transmission to humans and other higher animals.

- Fish exposed to MPs may experience tissue damage, oxidative stress, alterations in the expression of immune-related genes, and decreased antioxidant status. Neurotoxicity, growth retardation, and aberrant behavior are further potential problems for the fish.
- Due to the high concentration of MPs in the environment, exposure might happen by eating, breathing, or skin contact. After being exposed to MPs, humans may undergo oxidative stress, cytotoxicity, neurotoxicity, immune system disruption, and MP translocation to other tissues.

6. Plastic Ingestion:

- Particles ingested together with food and beverages first enter the gastrointestinal tract and are deposited at the mucosal epithelia of the stomach and the intestines.
- Most plastics are retained in the gut and eventually excreted by defecation, while particles smaller than 150 μm likely bypass the tight junctions in the intestines and enter systemic circulation.
- Such infiltration into circulation poses several risks, of which the most severe include potential uptake into cells, especially innate immune cells (e.g., macrophages and neutrophils) and the cells of major filtration organs.
- The absorption of microplastics by these cells results in the release of cytokine factors that promote a pro-inflammatory response. In other cells, microplastic ingestion may cause a reduction in cellular viability.

7. Harmful Effects of Plastic on Health[4]:

7.1. Disrupts Hormonal Growth:

According to nutritionist, there are two components present inside plastic materials which affect health of human being adversely. The two compounds known as diethylhexyl phthalate, which is carcinogen and Bisphenol – A (BPA), disrupt the hormonal functions of the body. Most affected hormones because of eating in plastic utensils are thyroid hormone that leads to thyroid disorders gradually.

BPA affects the person psychologically; it affects sex hormones of a person and acts like an anti-androgen or estrogen which disrupts sperm production in people.

7.2. Increases Risk of Kidney Stones:

Another important factor which is actually becoming evident is increase in the number of cases of kidney stones. Eating hot meals in melamine crockery becomes

very harmful for your health. This is because hot temperatures increase the amount of melamine in the food which increases the risk of kidney stones. It affects both children as well as adults, therefore it is recommended or preferred to take ceramic, steel or glass utensils for heating the food items.

7.3. Makes Breast Cancer Grow:

Plastic material usage is also a big contributing factor in increase of breast cancer cases. According to a study of Harvard Healthcare Institute, 37% cases of breast cancer have increased over the last decade and a major factor could be excessive usage of plastic in daily routine. Plastic actually melts in hot temperature and sun, keeping food or water in utensils made up of plastic releases toxins in the food which affects your health adversely. Dioxin is the material which increases the risk of breast cancer.

7.4. Liver Cancer:

Another substance of chemical that leads the body to diseases is phthalates, this is used in making wrappers of chocolates, sweets and other food items. However it actually is very harmful because it can affect your liver when it reacts with food and lead to liver cancer. Phthalates also decrease sperm count in the body which affects hormone levels in males. Liver cancer is more often caused by drinking water from plastic bottles or in packaged drinking bottles.

7.5. Increases risk of Diseases:

It not only affects hormones but due to disruption in hormonal levels, it can also lead you to many diseases and health problems. According to nutritionist, having hot food in plastic utensils or using plastic utensils to heat the food actually increases the risk of having oestrogen-mimicking chemical. Plastics have Bisphenol-A, which causes obesity, diabetes, cancer, asthma, fertility problems and some other health problems related to puberty in females. Plastic usage also affects neurological growth and problems.

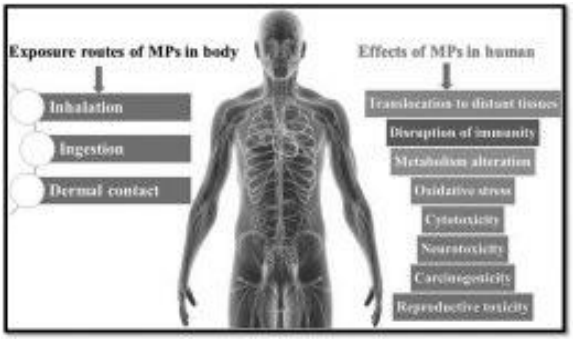

Figure – 5: Indicating various routes and effects of Microplastics in human

8. Measures to Avoid the Adverse Effects of Plastic:

8.1. Use Food-grade plastics:

There are many types of plastics that are available in the market, choose only food grade plastic utensils or containers for storing food. Check for the symbol of food grade, this ensures that the plastic you are using may not be harmful and won't release toxins in the food.

8.2. Use Polyethylene terephthalate (PET) bottles instead of normal water bottles:

This is almost same as using food grade plastic containers. Basically PET bottles are made from materials which do not get affected by hot temperatures or reacts with liquid inside it. This can prevent you from having cancer and serious health problems.

8.3. Try to use stainless steel plates for eating or ceramic based products for heating food. These options are much more healthy and beneficial for your body.

8.4. Try to take food in paper bags instead of poly bags while eating outside or taking packed food. You do not know which quality of plastic they are using, hence opt for a paper bag instead, it can keep your food healthy and nutritious at the same time.

8.5. Go for recycled products:

Food items that can be recycled are best for the environment. Poly bags and plastic containers do not get mixed with soil and causes soil erosion. Recycled products will prevent plastic waste from spreading. Also try to find recycle bins, in case you want to throw off any plastic container or utensil. It will save environment as well as your health.

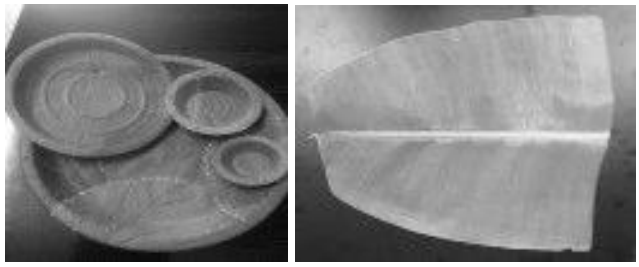

Figure - 6: Ayurveda prescribes dried leaf plates for taking food which is very eco-friendly and also an alternative for plastic plates used for taking food.

9. Attempts Made to Reduce Plastic Pollution:

To make Uttar Pradesh free of 'single-use-plastic' (SUP) the forest department launched a five-day special drive in June 2022.

"**RACE**" was the campaign and it stood for –

- Reduction in plastic usage,
- Awareness among masses,
- Circular solution to disposal and
- Engagement of one and all

Intended to collect maximum plastic waste during the campaign and to ensure that it goes to its final destination for proper disposal.

- World Environment Day: Yogi Adityanath stresses on people's support to check pollution.
- Village heads, civic chiefs took online pledge to beat plastic pollution and support reforestation on the occasion of World Environment Day.
- Yogi Adityanath Ji was addressing a conference on 'Race for Life: Circular Economy and Local Climate Action' organized by the department of forest, environment and climate change on the occasion of the World Environment Day in Gorakhpur on June, 05, 2023.
- He said, "This year, the theme of World Environment Day is Solution for Plastic Pollution. It was banned in the state in 2018 itself. Single-use plastic consumption is equivalent to sin as a cow might die after consuming it. Being an indestructible thing, plastic also affects the health of mother earth."
- He also gave the mantra of the Six R's — Reduce, Reuse, Recycle, Recover, Refabricate, and Repair — to protect the environment from plastic.
- The Yogi Adityanath government in Uttar Pradesh has directed state departments not to use plastic water bottles in meetings and encourage the use of soft copies in its bid to do away with single-use plastic and avoid wastage of paper to protect the environment.

9.1. Measures to tackle Plastic Pollution:

- India can beat plastic pollution by investing in recycling infrastructure, raising awareness and promoting sustainable practices.
- **India Takes Bold Steps to Tackle Plastic Pollution**:
  - To curb pollution caused by littered and unmanaged plastic waste, the Ministry of Environment, Forest and Climate Change (MoEFCC), Government of India, adopted a strategy with two pillars: enforcement of the ban on identified single-use plastic items, and implementation of extended producer

responsibility on plastic packaging.

- Increased Registration and Coverage under Extended Producer Responsibility (EPR) for Plastic Packaging.
- Support for Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises (MSMEs) Transitioning to Eco-Alternatives.
- India Plastic Challenge Hackathon 2021 and National Expo on Eco-Alternatives.
- State Initiatives in Promotion of Eco-Alternatives to Banned Single-Use Plastic Items.
- Enforcement of Ban on Identified Single-Use Plastic Items.

➢ The increased registration and coverage under EPR for plastic packaging is a positive sign of the commitment of producers, importers, and brand owners to take responsibility for the plastic waste they generate.

➢ The support provided by the government for MSMEs transitioning to eco-alternatives and the promotion of innovation in eco-alternatives through hackathons and expos is commendable.

➢ With sustained efforts and cooperation from all stakeholders, India can successfully tackle the plastic pollution problem and create a cleaner and healthier environment for its citizens.

9.2. Mission Life:

➢ In order to raise awareness and change the mindset of the general public to conscious resource use and the adoption of nature-friendly & biodegradable substances over non-biodegradable items, the Hon'ble Prime Minister of India introduced a Global Movement for Sustainable Lifestyle called LIFE (Lifestyle for Environment).

➢ This movement aims to reduce pollution from single-use plastics and promote sustainable lifestyles.

➢ Prime Minister Narendra Modi announced LIFE as a global movement for "mindful and deliberate utilization, instead of mindless and destructive consumption" to safeguard and maintain the environment at COP26 in Glasgow on November 1, 2021.

➢ It seeks to encourage people and communities to live in harmony with environment and with one another.

- **7 Components of Mission LIFE**:
  1) Save energy
  2) Save water
  3) **Single Use Plastic Reduction**
  4) Sustainable Food System Adoption
  5) Waste Reduction
  6) Adopting Healthy Lifestyle
  7) E-waste Reduction.

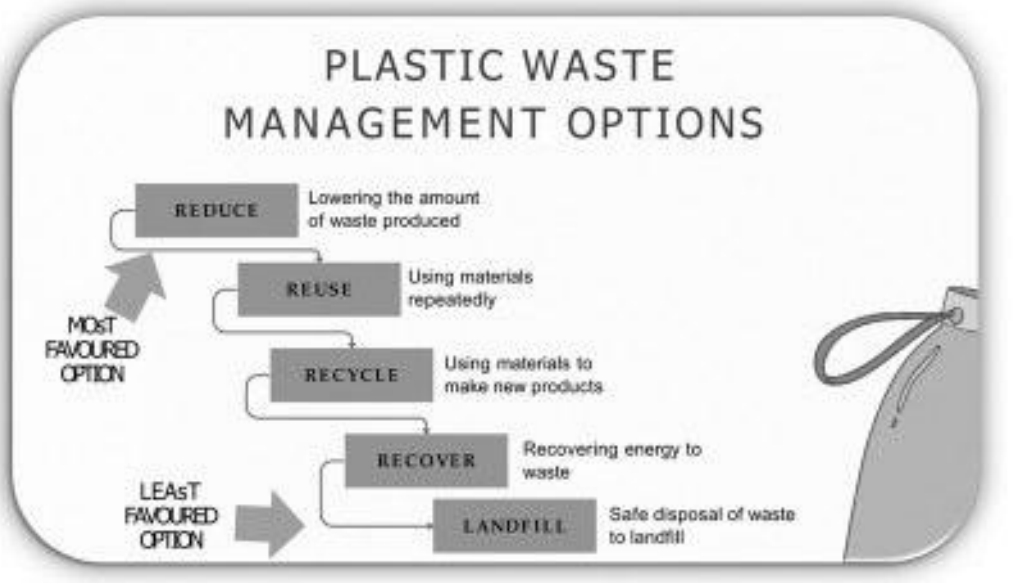

Figure – 7: Indicating plastic waste management options

10. Conclusion:

Plastic materials grew more popular and widely used in everyday human life as a result of their flexibility. The following plastic-made items are regularly used in greater quantities than necessary all over the world: plastic earbuds with sticks, plastic balloon sticks, plastic candy sticks, plastic ice-cream sticks, polystyrene (thermocol) for decorations, plastic cups and plates, plastic straws, plastic cutlery items like forks, spoons, and knives, trays, plastic stirrers, and plastic carry bags. The unscientifically discarded plastic from this excessive use upsets the natural equilibrium by creating soil pollution (landfills, microplastics), air pollution, water pollution, and harm to both human and

animal health. As previously indicated, this causes a number of disorders, including disturbed hormonal development, a higher risk of kidney stones, breast cancer, liver cancer, obesity, issues with fertility, and other neurological symptoms. The chemical components of plastic specifically Diethylhexyl phthalate is a carcinogen, Bisphenol – A (BPA) causes hormonal disruption, Dioxin increases risk of breast cancer, Phthalates produces liver damage It is preferable to avoid using plastic-made objects in order to prevent the occurrence of the aforementioned disorders. Plastic should, however, mostly be used sensibly. Humans may stay safe, healthy, and disease-free by properly recycling plastic, eliminating unnecessary and inappropriate plastic use, and encouraging the use of natural items in place of plastic materials.

11. References:

1. Nathanson, Jerry A.. "pollution". Encyclopedia Britannica, 28 Jul. 2023, https://www.britannica.com/science/pollution-environment. Accessed 30 July 2023.
2. Saxena P, Saxena R. A Study of Ayurvedic Preventive Measures of About Janpadodhwansha in Present Prospectus of Society. IJFMR-International Journal For Multidisciplinary Research.;5(4).
3. UNEP - Plastic Pollution
4. onlymyhealth.com
5. Plastic Pollution and Impacts 2023 – (PPT) by Bishu Karmakar.
6. Generation of plastic waste 2020-2021

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 182-194

A study of physically disabled students' attitudes toward their complicated lives

***Prashant Prakash Somvanshi & **Dr. R. R. Shinde**

Abstract: In the present study, an attempt was made to study the attitude of physically challenged children towards their complicated life in the Indian state of Maharashtra. The researchers have used descriptive survey method for the present study. The sample consists of 100 physically challenged students studying in different secondary schools in Chhatrapati Sambhajinagar district, Maharashtra, India. The technique of purposive sampling was used to select the sample. The researchers themselves developed a questionnaire to measure the attitudes of the physically challenged children towards their complicated lives. To analyse the data, the researchers used mean and S.D. in the present study. The overall results of the study indicated that the physically disabled children's attitude toward their complicated life was poor. They expressed very poor or negative attitudes toward the various aspects of their complicated lives that they face in their daily lives.

Keywords: Attitude, Physically Challenged Children, Complicated Life.

Introduction:

There are different types of exceptional children that we can observe in our society, in our educational system and all over the world. Among these exceptional children are the physically challenged children (PCC) or physically challenged children who face and suffer from so many difficulties in their daily life such as social adjustment problems, inferiority complexes, poor academic performance, lack of self-confidence, social isolation, low self-esteem, etc. (Gobala Krishnan, C, 2013). They are physically disabled or orthopaedic children, blind or visually impaired children, deaf or hearing impaired children, and mute or speech impaired children. (Gobala Krishnan, C, 2013). They all have some common problems that they face in their daily life due to their many difficulties or disabilities. However, the physically disabled children often suffer more from social prejudice than from their physical disabilities (Dalal, A.K., 2006) because the social

*Research Student, Department of Psychology, Vivekanand Arts, Sardar Dalipsingh Commerce and Science College, Email ID: prashantsomvanshi@yahoo.com
**Research Guide, Department of Psychology, Vivekanand Arts, Sardar Dalipsingh Commerce and Science College, Email ID: dr.ravishinde99@gmail.com

and physical environment in which these children live is often designed without consideration for their special needs (Dalal, A.K., 2006).

According to the 2011 Census report, India is the second most populous country in the world with 1.21 billion (1210 million) people, of whom 26.8 million (2.21%) are disabled people, while globally over 150 million people have a disability. (Census of India, 2011) Among them (26.8 million), over 5.4 million people have some kind of physical disability, followed by hearing disability affecting 5.07 million people, and 5.03 million having problems with their vision. Nearly 2 million have a speech disability, and 2 million are affected by mental retardation and other mental illnesses (Census of India, 2011).

In India, there are 14.9 million men with disabilities compared to 11.8 million women, with the total number of disabled people in rural areas exceeding 18 million and only 8.1 million in urban areas. The percentage of men with disabilities is 2.41 compared to 2.01 for women (Census of India, 2011).

Table 1 : Proportion of Non-Disabled and Disabled Population inIndia, 2011

Groups	Total No. of People	Percentage (%)
Total Population	121,01,93,422	100%
Non-Disabled Population	118,33,82,865	97.79%
Disabled Population	2,68,10,557	2.21%

Source: Census of India, 2011

Table 2: Proportion of Disabled Population by Type of Disability in India, 2011

Types of Disability	Total No. of People	Percentage (%)
Visually Impaired or Blind	5032463	18.8
Auditory Impaired or Deaf	5071007	18.9
Speech Impaired or Dumb	1998535	7.5
Physically Disabled or Orthopedic	5436604	20.3
Mental Retardation	1505624	5.6
Mental Illness	722826	2.7
Multiple Disability	2116487	7.9
Any Other	4927011	18.4
All Types of Disability	2,68,10,557	100%

Source: Census of India, 2011

Table No. 3: Proportion of Disabled Population by Type of Disability against the Total Population in India, 2011

Types of Disability	Total No. of People	Percentage (%)
Visually Impaired or Blind	5032463	0.42
Auditory Impaired or Deaf	5071007	0.42
Speech Impaired or Dumb	1998535	0.16
Physically Disabled or Orthopaedic	5436604	0.45
Mental Retardation	1505624	0.12
Mental Illness	722826	0.06
Multiple Disability	2116487	0.17
Any Other	4927011	0.41
All Types of Disability	2,68,10,557	2.21%

Source: Census of India, 2011

Review of Related Literature:

In education, attitudes toward children and adults with disabilities have changed significantly. According to Birch and John Stone (1975), the greatest challenge in education today is to ensure that all schools are as easily and fully accessible to people with disabilities as they are to the nondisabled. From any standpoint, whether that of human rights, economic efficiency, or social desirability, it should be in the national interest to provide for children with disabilities as much as for everyone else.

A number of studies have been conducted around the world on people's attitudes toward physically disabled children. The Asian region shows that people are highly discriminated against because of their physical disabilities. The literature review in this area provides extensive evidence that physically disabled children feel discriminated against in all societies (Lang, 1998). A national survey of physically disabled children in Korea (2002) found that approximately 85% of the disabled population felt discriminated against because of their physical condition (Kim, 2004).

In real life, physically disabled children find it very difficult to fit into the world of nondisabled people. Physically disabled children may react negatively to their disabilities and thus develop a poor self-concept. According to UNESCO (1995, p. 19), this reaction can manifest itself in a variety of ways, such as: - Denial or refusal to acknowledge the disability, resignation or "giving up" on life, seeing oneself as an arrogance, rebellion, second-guessing, aggressive demanding, viewing disability as a

punishment for real or imagined offences against the family, becoming dependent and demanding as a form of seeking attention, affection and care.

"Children with disabilities exhibit unhappy behaviours that are characteristics of an emotional disorder. They can be very unhappy and have very low self-esteem" (Ingule, Ronoh & Ndambuki, 1996, p.259). The self-concept of physically disabled children depends on how they view their disabilities and how others treat them. In our society, disabled people are socially devalued, and this is clear evidence of why disabled people have low self-concept, especially when they are in an unfavourable environment.

Considering the problems faced by disabled children in their daily life such as family life, school life, social life, political life etc., the present researchers intended to find out what are the perceptions or views of the physically disabled children of Chhatrapati Sambhajinagar district of Maharashtra, India about their complicated life faced by them i every moment of their daily life.

Need and Significance of the Study:

1. The present study helps to find out the attitude of physically challenged childre from Chhatrapati Sambhajinagar district, Maharashtra towards their complicated life.
2. To conduct this study, the researchers have constructed an attitude questionnair which will be very helpful for other researchers to conduct future research in the field of attitude of physically challenged children towards their complicated life.
3. The results related to the attitude of physically disabled children will be helpful for parents, school teachers, facility managers, government and policy makers to take some important initiatives and arrangements to create a positive attitude among the physically challenged children and solve their various problems they face in their daily life.
4. The findings of the present study will also raise the awareness of the parents, teachers and peers of the physically challenged children on how to deal with this kind of children in school, society and other spheres of life.

Objectives of the Study:

To study the attitudes of physically disabled children towards their complicated lives.

Hypothesis:

There would be no bad or negative attitude of the physically handicapped children towards their complicated life.

Definition of the Terms:

Attitude:

Here in this study, the researchers used the term "attitude" in the sense that the opinions or views reflected by the students of Chhatrapati Sambhajinagar district, Maharashtra, about their challenging and complicated lives.

Physically challenged children:

In this study, researchers used the term "Physically Challenged Children" to refer to those children who are not like a normal child in various aspects of their lives. Physically challenged children mean that these children who have some type of disability, such as deaf, mute, visually impaired, orthopaedics etc.

Complicated life:

Here in this study, the researchers used the term "Complicated life" means that a physically disabled child has to face various problems, complexities, uncertainties, independence etc. in his daily life.

Methodology:

Method of study:

The present study is a descriptive study. The researchers used the descriptive survey method in the present study. Therefore, the researchers naturally used various instruments, techniques, strategies, and methods of descriptive survey research to collect, analyse, and interpret the data.

Study population:

All physically challenged children of Chhatrapati Sambhajinagar district were taken as the population for the present study.

Sample of the study:

The researchers selected only 100 physically challenged students (including classes V to XII) from 9 (nine) selected secondary schools in Chhatrapati Sambhajinagar district as the sample for the present study.

Sampling procedure:

The stratified random sampling method was used to select the sample.

Tools of the study:

In this study, a questionnaire was used as an instrument for data collection. The

questionnaire consists of 30 items with a combination of positive (13) and negative (17) items. The questionnaire was based on the five-point Likert" scale, i.e. strongly agree (S.A), agree (A), indifferent (I), disagree (D), and strongly disagree (S.D).

Data analysis techniques:

The present researchers used Mean and S.D to analyse the data.

Techniques of measuring attitude level:

After all items are scored, the scores of all 30 items are summed to obtain a person's total score on the attitude questionnaire. Since the questionnaire is based on a 5-point Likert scale, the total score ranges from 30 to 150. Therefore, the level of attitude is determined based on the score of the responses and classified into 5 levels according to Best"s (1977) criteria as follows:

$$\frac{\text{Highest Score} - \text{Lowest Score}}{\text{Number of Levels}}$$

$$= \frac{150-30}{5} = \frac{120}{5} = 24$$

Table No. 1: Criteria for Understanding the Means of the Level of Attitude

Range of Mean Scores	Level of Attitude
30-54	Very Poor
55-78	Poor
79-102	Moderate
103-126	Good
127-150	Very Good

Results:

There would be a bad or negative attitude of the physically handicapped children towards their complicated life.

Table No-2: Shows the Number, Mean and S.D of the Total Students

Group	Number	Mean	S.D.
Students	100	68.24	18.45

Note: 30-54=Very Poor, 55-78=Poor, 79-102=Moderate, 103-126=Good and 127-150=Very Good.

From the above table we can see that the mean of the students is 68.24 and the

spread is 18.45. On the basis of the "best" criteria, the mean value of the students is 68.24, which falls within the range of mean values of 55-78. This means that the level of students' attitude falls into the "Poor" group. Therefore, the null hypothesis is rejected and we can say that the attitude of the physically disabled children of Chhatrapati Sambhajinagar district towards their complicated life is at a poor level.

Table No. 3 : Item wise Analysis of the Levels of Agreement Expressed by the Students

Sl. No.	Items/Statements	Levels of Agreement (%)	Frequency	Percentage
1	Nothing but pain and problems in the lives of physically disabled children.	S.A.	86	86
		A	2	2
		I	1	1
		D	1	1
		S.D.	10	10
2	Spending life as a physically disabled child is very pleasant.	S.A.	2	2
		A	3	3
		I	3	3
		D	13	13
		S.D.	79	79
3	Hopelessness, deprivation and disrespect are the common facts for physically disabled children.	S.A.	78	78
		A	13	13
		I	1	1
		D	3	3
		S.D.	5	5
4	Physically disabled children are independent like others	S.A.	0	0
		A	32	32
		I	1	1
		D	9	9
		S.D.	58	58
5	As a physically handicapped child, life seems worthless to me.	S.A.	57	57
		A	1	1
		I	0	0
		D	1	1
		S.D.	41	41
6	Physically disabled children can enjoy their lives like other children.	S.A.	1	1
		A	8	8
		I	1	1

		D	36	36
		S.D.	54	54
7	As a physically disabled child, I have become a burden to my family members.	S.A.	79	79
		A	9	9
		I	1	1
		D	3	3
		S.D.	8	8
8	Like other normal children, I also receive the same importance from my family, society and country.	S.A.	6	6
		A	9	9
		I	4	4
		D	43	43
		S.D.	38	38
9	Physically handicapped children are excluded from all the happiness and joys of this world.	S.A.	41	41
		A	9	9
		I	3	3
		D	34	34
		S.D.	13	13
10	At any festival organized by the school or society, I get the same meaning.	S.A.	3	3
		A	12	12
		I	3	3
		D	9	9
		S.D.	73	73
11	Physically disabled children are socially disadvantaged in many ways.	S.A.	80	80
		A	3	3
		I	3	3
		D	7	7
		S.D.	7	7
12	Physically challenged children get love and affection from everyone.	S.A.	20	20
		A	18	18
		I	2	2
		D	16	16
		S.D.	44	44
13	In the lives of physically handicapped children, there is nothing worth educating.	S.A.	13	13
		A	2	2
		I	2	2
		D	26	26

		S.D.	57	57
14	Education helps to develop the physically disabled children.	S.A.	86	86
		A	3	3
		I	2	2
		D	2	2
		S.D.	7	7
15	All people perceive me in the perspective of mercy in society.	S.A.	80	80
		A	9	9
		I	3	3
		D	3	3
		S.D.	5	5
16	Physically disabled children rely on others for so many aspects of their lives.	S.A.	49	49
		A	37	37
		I	0	0
		D	5	5
		S.D.	9	9
17	All help the physically handicapped children.	S.A.	18	18
		A	25	25
		I	6	6
		D	16	16
		S.D.	35	35
18	My friends and teachers ignore me in the school.	S.A.	25	25
		A	6	6
		I	2	2
		D	14	14
		S.D.	53	53
19	The physically handicapped children are treated equally by all.	S.A.	12	12
		A	25	25
		I	9	9
		D	11	11
		S.D.	43	43
20	Being a physically challenged child, I feel insecure in several areas of my life.	S.A.	85	85
		A	8	8
		I	1	1
		D	1	1
		S.D.	5	5

21	Physically challenged children can solve any problem in their lives by themselves, without the help of others.	S.A.	7	7
		A	5	5
		I	2	2
		D	36	36
		S.D.	50	50
22	A physical disability has limited my natural ability to function in my life.	S.A.	95	95
		A	2	2
		I	0	0
		D	1	1
		S.D.	2	2
23	Although I am physically disabled, I am able to achieve the highest goal in my life.	S.A.	74	74
		A	6	6
		I	2	2
		D	6	6
		S.D.	12	12
24	Being physically handicapped, I have no special importance for the progress of society and the country.	S.A.	19	19
		A	32	32
		I	5	5
		D	20	20
		S.D.	24	24
25	Physically handicapped children are given equal honor and importance in the various spheres of society and life.	S.A.	30	30
		A	13	13
		I	3	3
		D	11	11
		S.D.	43	43
26	My physical disability has set me back in all the competitions of my life for a very long time.	S.A.	67	67
		A	7	7
		I	1	1
		D	24	24
		S.D.	1	1
27	Like other normal children, physically handicapped children are equally honored by all in the field of education.	S.A.	4	4
		A	11	11
		I	31	31
		D	20	20
		S.D.	34	34
28	I suffer from inferiority complexes at	S.A.	82	82

	every moment because of my poor physical condition.	A	12	12
		I	0	0
		D	2	2
		S.D.	4	4
29	It is a crime to be born a physically handicapped child.	S.A.	64	64
		A	1	1
		I	2	2
		D	0	0
		S.D.	33	33
30	The life and world of physically disabled children is full of darkness.	S.A.	63	63
		A	2	2
		I	1	1
		D	2	2
		S.D.	32	32

Note: Strongly Agree (S.A), Agree (A), Indifferent (I), Disagree (D) andStrongly Disagree (S.D).

Major Findings of the Study:

On the basis of given response by respondents (Table No. 3), Major findings have made in following points:

1. It is stated that the attitude of the physically handicapped students of Chhatrapati Sambhajinagar district towards their complicated life is poor or bad. It means that the physically challenged students of Chhatrapati Sambhajinagar district are not satisfied with the different aspects of their complicated life that they face in every moment of their daily life. They expressed very negative or bad attitude towards most of the aspects of their complicated life.
2. It was found that most physically handicapped students think that hopelessness, deprivation and disrespect are the usual facts for them.
3. It was found that most physically handicapped students think that they are not as independent as other normal children.
4. It was found that most physically handicapped students think that life as a physically handicapped child seems worthless to them.
5. It was found that most physically disabled students think that they cannot enjoy their life as smoothly as other normal children.
6. It was found that most physically disabled students think that they are a burden to their family members as a physically disabled child.

7. It has been found that most physically handicapped students feel that their physical handicap has set them very far back in all the competitions of their lives.
8. It was found that most physically handicapped students feel that they are not equally recognised by everyone in the field of education like other normal children.
9. It was found that most physically handicapped students think that they constantly suffer from inferiority complexes because of their poor physical condition.
10. It was found that most physically handicapped students think that being born as a physically handicapped child is an insult.
11. It has been found that most physically disabled students think that life and the world are full of darkness for them.

Conclusion:

The physically handicapped children are a kind of extraordinary children who suffer from so many aspects in their daily life. They are not able to do anything like other normal children. As a result, they sometimes face problems that are very difficult for them to solve. This leads them to develop a negative attitude towards their life. They start thinking that life is meaningless and worthless for them. In the present study, it is found that the attitudes of the physically disabled children of Chhatrapati Sambhajinagar district towards their complicated life are at a poor level. It means that the physically disabled children of

Chhatrapati Sambhajinagar district think that there are only darkness, problems, disrespect and deprivation in their life. They suffer from inferiority complexes in every moment of their life because of their poor physical condition. Like other normal children, they are not equally honoured by everyone in the field of education. They do not receive equal honour and importance in the various aspects of society and life. They think that as physically handicapped people, they have no special significance in the progress of society and the country. They think that in reality they are dependent on others in many aspects of their lives. They think that they are perceived as merciful by everyone in society. They think that as physically disabled people, they are a burden to their family members. Therefore, they think that being born as a physically disabled child is an insult. They think that they are denied any happiness and enjoyment in this world. But one positive thing came out through the study that the physically disabled children think that despite their physical disability, they are able to achieve the highest goal in their life.

References:

- Best, J.W. (1977). Research in Education, Eaglewood Cliffs, New Jersey, Prentice Hall.
- Census Report-2011, Ministry of Home Affairs, Government of India, New Delhi.
- Childline India Information, Child Rights Information Network (CRIN).
- Chomba Wa Munyi. (2012). Past and Present Perceptions towards Disability: A Historical Perspective. Disability Studies Quarterly,Vol 32, No 2.
- Dalal, A.K. (2006). Social Interventions to Moderate Discriminatory Attitudes: The Case of th Physically Challenged in India. Psychology, Health & Medicine, 11(3): 374 – 382.
- Dalal, A. K., Pande, N., Dhawan, N., Dwijendra, D., & Berry, J. (2000). The Mind matters: Disability Attitudes and Community based Rehabilitation. Allahabad: University of Allahabad, India.
- Gobalakrishnan, C. (2013). Problem Faced By Physically Challenged Persons and Their Awareness towards Welfare Measures. International Journal of Innovative Research & Development, Vol.2, Issue.4, pp.487-493.
- Ingule, F. O., Ronoh, R., & Ndambuki, P. W. (1996). Introduction to Educational Psychology. Nairobi: East Africa Educational Publishers.
- Kim, S. S. (2004). Korea's Strategy for Enacting Disability Discrimination Legislation. Seoul: Korean Society for Rehabilitation of Persons with Disability.
- Lang, R. (1998). Guest editorial: A Critique of the Disability Movement. Asia Pacific Disability Rehabilitation Journal, 9(1), 1 – 12.
- Mulambula, M. S., and Emily, Chepngetich Sitienei. (2012). Challenges Facing Physically Challenged Children and Interventional Measures in Kenya. International Journal of Current Research, Vol. 4, Issue, 09, pp.225- 230.
- National Policy on Education (NPE-1986), Ministry of Human Resource Development, Government of India.
- Paterson, J. (2000). Workers of South India their Attitudes and their Education. Asia Pacific Disability Rehabilitation Journal, 10(1), 1 – 16.
- Report of Ashok Mitra Commission (1992), Government of West Bengal.
- Report of the Kothari Education Commission (1964-66), Ministry of Education, Government of India.
- Rose, A. C. (1971). The Social and Emotional Development of Children in Long-term Residential Care: Therapeutic Education. New York: Spring.
- Wylie, C. R. (1974). The Self-Concept: a Review of Methodological Considerations and Measuring Instruments. Lincoln: University of Nebraska Press.
- http://censusindia.gov.in http://socialjustice.nic.in/statewisedisabled.php

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Page 195-203

Buddhism in Myanmar

Ven Sumedha Bodhi*

Abstract: This research paper offers a concise overview of Buddhism in Myanmar. It covers the religion's historical development, cultural influence, current issues and the intersection of religion and politics. Myanmar has a rich Buddhist heritage and this paper explores its evolution, syncretic nature and the role of the Sangha. It also examines contemporary challenges, including ethnonationalism and political influence on Buddhism. This paper highlights the need for nuanced approach to studying in Myanmar due to its profound impact on society and politics.

Keywords: Pamipatti, Pariyatti, Dhamma Schools, Soldier.

This paper is a presentation about the conditions of Buddhism in Myanmar both in the past and present days. There are many research papers regarding the arrival of Buddhism in Myanmar. The legends or historical records and evidential inscriptions which can indicate the arrival of Buddhism in ancient Myanmar.

Historical Records of Shwedagon Pagoda:

Shwedagon Pagoda

* M.C. Complex, Kakinada, Andhra Pradesh; at present Hochi Minh City, Vietnam

The oldest and distinguished evidence of Buddhism in Myanmar is Shwedagon pagoda, the great commentator Venerable Buddhaghosa (5th century AD) mentioned about the story of Tapussa and Ballika in his commentary on Añguttara Nikâya. The two merchants were from Ukkalâpa, Asitanjana Nagara. They met the Buddha after seven weeks of His attainment to Buddhahood. Buddha gave them eight of His hair. On their arrival at Yangon, with the help of King Ukkalâpa they built a pagoda enshrined the Buddha's hair in it. This story is also found in the Mahâvagga of Vinaya Pitaka. This Asitanjana city is one of the old names of Yangon. The Shwedagon Inscription of King Dhammacetî (4th century AD) is also inscribed based on this story. This shrine is the famous and the biggest pagoda in the world.

According to the historians, Buddhism arrived in Myanmar several times i.e. to Rakhine, Sri Kshetra and Bagan.

Buddhism in Myanmar Today:

According to the latest news of Buddhism in Myanmar, the population of Buddhism is 80 percent of 52 million people. In Buddhism, there are three stages of Sâsana in Buddhism. These are Pariyatti (learning the doctrine), Pamipatti (Practicing the doctrine) and Pamivedha (realizing its goal).

Pariyatti: Buddhist Universities in Myanmar:

There is a list of Buddhist Universities in Myanmar. Among them, the two State Pariyatti Sâsana Universities and the International Theravada Buddhist Missionary University (ITBMU) are under the government. And the others are non-government organizations.

1. The State Pariyatti Sâsana University, Yangon (SPS),
2. The State Pariyatti Sâsana University, Mandalay (SPS),
3. Sitagu International Buddhist Academy, Sagaing (SIBA) (founded by Sitagu Sayadaw),
4. Sitagu International Buddhist Academy, Yangon (SIBA) (founded by Sitagu Sayadaw),
5. Sitagu International Buddhist Academy, Mandalay (SIBA) (founded by Sitagu Sayadaw),
6. International Buddhist Education Centre, Sagaing,
7. Buddhist University, Yangon (founded by U Myint Swe (M.A. London)),
8. Buddhist University, Mandalay (founded by U Myint Swe (M.A. London)),
9. Shan State Buddhist University (SSBU)

10. Kon-Kyan-Kone Buddhist University (founded by U Myint Hlaing),
11. Buddhavihâra Dhamma-Vinaya University
12. Dhammasahâya Centre, Pyin Oo Lwin (founded by Dr. Nandamâlâbhivamsa),
13. Dhammavinaya Centre, Hlae Kuu, Ngar Su Taung (founded by Dr Nandamâlâbhivamsa) and
14. Institute of Dhamma Education (founded by Dr. Nandamâlâbhivamsa).

For many centuries, Theravâda Buddhism could be learnt at the monasteries in traditional ways in Myanmar. We did not have Buddhist Universities and Colleges in Modern sense in earlier time. In Myanmar, now; there are many famous Buddhist monasteries where Theravâda Buddhist Scriptures could be learnt. Sitagu International Buddhist Academy at Sagaing, founded in 1994 by Thaegon Sayadaw Ashin ÑâGissara. Unlike described earlier Universities, the International Theravâda Buddhist Missionary University inaugurated in Yangon on 9th December, 1998. It is a significant institution not only in Myanmar but also in the whole world. It is a place where international Buddhist scholars can learn both Pariyatti (Scriptural Study) and Pamipatti (Buddhist Meditation Practice) at the same time. Through insight meditation practice, prescribed by the traditional teachers in accordance with Pâ7i Texts and commentaries. It distinguishes for being free tuition, free mission, free lodging and free health care to those foreign scholars.

In Myanmar, there are approximately 5,51,587 Bhikkhus and novices at present. And there are also 55,608 nuns. The number of their monasteries is about 1238. There are also more than one thousand colleges (Pamivedha) where Buddhist scriptures are taught. The highest and the most difficult Buddhist examination in Myanmar is the Tipimakadhara examination.

There are many Buddhist examinations in Myanmar. It can be classified into two main types of Buddhist examinations which are the governmental examination and the private examination.

The governmental examinations are

1. Tipimaka,
2. Dhammâcariya,
3. Pathamabyan,
4. Nikâya and
5. Abhidhamma and Visuddhi.

These can be also known as “Traditional Buddhist Examinations” for getting

support by the kings in the ancient periods.

Beside the governmental examinations, there are many private examinations in Buddhism.

Among them, the famous ones are described as follows:

1. Sakyasîha,
2. Cetiyañgana,
3. Susamacâra,
4. Samanekyaw and
5. Suvannabhumi.

These are the examinations for monks. In addition, the Abhidhamma courses are founded for lay people. These courses are leaded by the organization of the spread of Abhidhamma. And its many branches are opened throughout Myanmar. The examinations are held regularly once a year.

Pamipatti: Meditation Centers in Myanmar:

Meditation practice

Meditation Centre plays one of the important roles of Theravâda Buddhism in Myanmar. In Myanmar, there are many different meditation centers. Among them, the famous centers are Mahasi Meditation Centre, Shwe Taung Kone Panditarama Meditation Centre, Naga Cave Kalaywa Taw Ya Meditation Centre, Moe Gote Meditation Centre, Janitarama Meditation Centre, Soon Loon Cave Meditation Centre, Hpar Aut Meditation Centre, Dhammaduta Sasana Meditation Centre, International Patipatti

Centre, Myae Zinn Meditation Centre, Saddhammaramsi Meditation Centre, Thae Inn Cave 11 Meditation Centre, Taung Pulu Meditation Centre, Mula Saccadipaka Meditation Centre, Mingun Taw Ya Meditation Centre, Kathit Wine Meditation Centre and Shwe Minwun Sasana Meditation Centre. Some of these meditation centers have many branches. In these centers, not only Myanmar people but also many foreigners usually come and take meditation. So these centers play in a chief role to carry out of Buddhasâsana.

Dhamma Schools in Myanmar:

The courses of Dhamma School are founded as it is fundamental in Buddhism. A Dhamma School is a center in which Buddhist scriptural courses are taught. Every Sunday, they are opened especially in the monasteries, and they are a kind of private school taught by the monks, nuns and lay people who are well-versed and well-experienced in Pariyatti field. In Myanmar, the foundation of Dhamma School started on 14th of March, 2012. Now, it have been 552 teacher training courses and produced over 30000 teachers. They are teaching the Buddhist courses in between 3000 and 5000 Dhamma Schools. Prescribed books for students are printed systematically and also the guide books for teachers are printed. They hold the system of student centered approach. It is a kind of foundation produced to perceive the right view and to become clever youths.

Buddhist Cultures:

Bodhi tree water pouring festival at Shwedagon Pagoda

The Culture of Myanmar is deemed synonymous with its Buddhism. For each

month, there are many seasonal religious festivals. Most of them are related to Buddhism. Some of the famous festivals are Bodhi tree watering festival, Waso festival, Thedingyut festival and the festival for Kathina. Besides these festivals, there are more religious ceremonies. The famous ceremonies are Novitiation ceremony, Ordination ceremony and Anekaja ceremony. Moreover, Myanmar has a lot of special days about Buddhism in each month. From these festivals and ceremonies, it can be known that the majority of Myanmar cultures base of Buddhist culture. Furthermore, Myanmar people usually celebrate the ceremony of Dhamma-talk. So every Sabbath day and every special religious days and any other day, the ceremony of Dhamma-talk can be seen in a Dhamma hall or at a junction or in an open ground. Together with the flourish of Buddhism in Myanmar, Buddhist literature has been enormous in Myanmar since Bagan Period (the first dynasty of Myanmar). Nowadays, there are so many published religious books such as magazines, booklets, cartoons, etc.

Socially engaged Buddhism:

In the past, innumerable beings practiced the ancient teachings of the Buddha and became the Arhanats. Socially engaged Buddhism or Navayana sect is a 21st century concept of Buddhism which can take care of social, political, economic, justice, and health and environment issues of the Buddhists of the day.

Other side of the coin is technology. We need to utilize this modem technology to face challenges and to continue the teachings of the Buddha in pristine impurity.

Engaged Buddhism is a term originally coined by *Vietnamese Zen master* teacher *Thich Nhah Hanh*. During the *Vietnam War*, he and his SaEgha (spiritual community) made efforts to respond to the suffering they saw around them. They saw this work as part of their *meditation* and *mindfulness* practice, not apart from it. Since then, the term continues to apply to Buddhists who are seeking ways to apply the insights from meditation practice and *dhamma* teachings to situations of '*social, political, and economic suffering* and *injustice'*.

Author is with Ven.Tich Nhat Hanh

Dhamma Soldier Reform movement: The 'Dhamma soldier reform movement' is founded and leading by the author, and it is a socially engaged Buddhist work. You may think that the work of 'soldier' means fighting only. However, I am a Dhamma Soldier.

He purifies 'ILLS' within i.e. *Lobha, Dosa* and *Moha* and fights with 'Evil' around (i.e. social, political, economic and other fields of injustice) to achieve what we aspired in life. Our ultimate goal is to attain Nibbâna.

Nowadays unfortunately, many people are leading sinful way of life by following immoral 'Art of living'. The character and physical standards of individuals and the sanctity and serenity of their surroundings are naturally declining quickly. It is the reason why unfortunately, nowadays people are leading immoral and sinful day-to-day life. Other side of the coin is unrest, injustice, gambling, bogusness in religion like the negative factors are increasing day by day. Due to the above reasons, people couldn't practice the five precepts (Pañca Sîla) in day-to-day life which are the basic requirement for the seeker of the teachings of the Buddha.

To reform to bring positive qualitative change among the individuals who are dutiful and obedient, the **Dhamma Soldier Reform movement** educate them to transform themselves from the mundane level to the transcendental level.

Everyone in the society will become a **'Dhamma Soldier'** who will sacrifice his life to apply Dhamma in his life and at his profession.

Conclusion:

Myanmar is well-known for far and wide land of Pagodas and religious buildings. Pagodas are religious monuments commemorating religious events of the time. They are also landmarks in the history and development of Theravâda Buddhist activities in the country. A multitude of pagodas and monuments in Bagan, Bago, Thaton, Mrauk U, Pyay, Mandalay, Sagaing and several other historic sites in the country stand witness to the extent to which Theravada Buddhism had spread to the peak to which it had flourished. In addition, Myanmar had been twice blessed by the events of the last two International Theravada Buddhist Councils – the fifth International Theravada Buddhist Council was held in Mandalay in 1871 and the sixth international Theravada Buddhist Council was held in Yangon in 1954. With the moral and spiritual force of Buddhism, Myanmar people have been able to withstand the vicissitudes of time throughout its history. The opening of the international Theravâda Buddhist Missionary University in Yangon is another landmark in the history of Theravâda Buddhism in Myanmar and in propagating the religion to the world. So Myanmar could stand in the topmost stage among Theravâda countries regarding Vinaya. Moreover, Abhidhamma Pimaka is the most profound and subtle in the Buddha's Teachings, no common people can comprehend thoroughly and deeply. But Myanmar monks could learn and teach the Abhidhamma in easy ways. Thus, Myanmar could stand first in learning and teaching the Abhidhamma. Not only in Pariyatti field, Myanmar monks together with well-versed lay people successively take great heed but also in Pamipatti field as we have seen above. Since Myanmar culture, such as Myanmar alphabet, prose, poetry, stone inscriptions recording charity, novels, customs, vocabularies, etc. came into existence depending on Theravâda Buddhism and Pâli Canon, Myanmar and Buddhism cannot be separated one from another. In this rapidly changing world, it seems logical to assume that material development should match the spiritual advancement in order to build a balanced and harmonious society. In this regard, Theravâda Buddhism has a greater role to play for the moral well-being and spiritual attainment in human-kinds. Myanmar is proud to claim that it is famous for flourish of both Pariyatti Sâsana and Pamipatti Sâsana in Buddhism till today because of the continuous support of successive kings, governments and people.

Today, engaged Buddhist concept is very popular in Myanmar. Many monasteries and government also work with this concept.

References:

- Anguttara Nikaya Atthakatha.
- Apadana
- Bapat, P.V. (1956). "2500 years of Buddhism", publications Division Ministry of Information and Broadcasting Government of India
- Geiger Wilhelm, (1912). "Mahavamsa: The great chronicle of Ceylon", Pali Text Society
- K.S. CH EN, (1968). (Buddhism), BARRON S EDUCATIONAL SERIES, INC.
- Kanai Lal Hazra, (1962). "History of Theravada Buddhism in Southeast Asia", Munshiram Manoharlal publisherd Pot.Ltd
- Ko Lay, U, (2003). "Guide to Tipitaka", The Editorial Committee, Burma Pitaka Association, Yangon, Myanmar
- Mahavagga, Vinaya Pitaka.
- Petakopadesa
- Rhys Davids T.N. and William Steds, (1966). "The Pali Text Society s Pali-English dictionary", Publishes for the Pali Text Society by Luzae and Company, LTD. 46 Great Russell Street, London, W.C.
- Walpola Rahula Sri, (1962). "What the Buddha Taught", Manufatured in the United States of America
- Warder, A.K, (2000). "Indian Buddhism", Delhi: Motilal Banarasidas Publishers.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Page 204-207

A Study of Happiness and Hopelessness among Covid 19 Survivors and Non-Covid Persons

Dr. D. K. Kannor*

Abstract: Objective of the study: to study the happiness and hopelessness among covid 19 survivors and non-covid persons. Hypotheses: 1. There will be no significant impact found between covid 19 survivors and non-covid persons on dimension happiness. 2. There will be no significant impact found between covid 19 survivors and non-covid persons on dimension hopelessness. Samples:- For the present study, 62 samples were selected for the study. Among them 61 samples from covid 31 survivors and 31 samples from Non-covid 19 persons all samples belonging to Nashik City, Maharashtra state. The age range of patients was 20 to 45 years (M= 35.26, SD = 5.87). Non-Probable purposive sampling method was used. Research Tools 1. Happiness Scale:- This scale standardized and developed by Rastogi and Moorjhani. 2. Hopelessness Test Beck et al (1974) devised a test to measure the cognitive component of depression, which they labeled hopelessness. Conclusion:- 1. Non-Covid 19 persons had significantly high happiness than the covid 19 survivors. 2. Covid 19 survivors had significantly high hopelessness than the Non-covid persons.

Keywords: Happiness, Hopelessness, Covid 19 Survivors, Non-Covid Persons.

Introduction:

According to World Health Organization 2020, the novel coronavirus disease 2019 (COVID-19) pandemic is a serious health risk that has infected more than 43 million people worldwide and caused more than 1.1 million deaths as of this writing. More than 370,800 cases and more than 10,000 deaths were recorded between the first COVID-19 case in Turkey on March 11 and October 30 (Republic of Turkey Ministry of Health 2020). The closing of schools, the use of medical face masks, the encouragement of self-isolation, and the quarantining of individuals returning from overseas were some of the measures that the Turkish government took to stop the spread of COVID-19. To quarantine the global spread of COVID-19, the absence of a treatment

*Assistant Professor, Department of Psychology, L.V.H. College Panchvati, Distt.–Nashik (MS, India)

that has been scientifically proven effective, and the difficulty in controlling it have had devastating effects on the economy, society, and mental health.

Subjective happiness is one of the indicators of good mental health and the fear of COVID-19, which will be discussed in the following section, has the potential to affect an individual's subjective happiness. According to Diener et.al., subjective happiness is the combination of positive and negative emotions and contentment in one's life (2009). Simply put, a person will experience greater happiness if they have a greater balance of positive and negative emotions and are satisfied with their lives. Happiness, on the other hand, is negatively impacted by infectious diseases (Lau et.al. 2008). As a result, it is possible to postulate that people's anxiety about COVID-19 will have a negative impact on their mental health and happiness. Indeed, numerous studies have suggested that psychological disorders may be caused by COVID-19 (for instance, Holmes et al. 2020).

In addition, fatigue (31% in some previous studies) and cognitive impairment (21% in others) were the most common signs of mental illness among COVID-19 survivors and those who had previously been hospitalized. In the same survey, which included 94 COVID-19 patients who were admitted to intensive care units (ICUs), 23, 18, and 7% of the cases also mentioned anxiety, depression, and post-traumatic stress disorder (PTSD) (Prescott, 2021).

Objective of the study:

To study the happiness and hopelessness among covid 19 survivors and non-covid persons.

Hypotheses:

1) There will be no significant impact found between covid 19 survivors and non-covid persons on dimension of happiness.

2) There will be no significant impact found between covid 19 survivors and non-covid persons on dimension of hopelessness.

Samples:

For the present study, 62 samples were selected for the study. Among them 61 samples from covid 31 survivors and 31 samples from Non-covid 19 persons all samples belonging to Nashik City, Maharashtra state. The age range of patients was 20 to 45 years (M= 35.26, SD = 5.87). Non-Probability Purposive sampling method was used.

Variable:-

1) **Independent Variable:-**
   i) Types of Persons
      a) Covid 19 survivors
      b) Non-Covid 19 persons
2) **Dependent Variable**
   i) Happiness
   ii) Hopelessness

Research Tools

1) Happiness Scale:-

This scale standardized and developed by Rastogi and Moorjhani. This scale consisted 62 items. This test is highly reliable and valid.

2) Hopelessness Test (Beck- 1974)

Beck et al (1974) devised a test to measure the cognitive component of depression, which they labeled hopelessness. The *tes*t consists of 20 items (statements*)* related to hopelessness. Each statement has to be answered in just true (T) and false (F).

Statistical Interpretation and Discussion

Table No. 1 : Mean, Std. Deviation and t-value of Happiness and Hopelessness among covid 19 survivors and non-covid persons.

Dimension	Covid 19 Survivors (N=31)		Non-Covid Persons (N=31)		't'	df
	Mean	SD	Mean	SD		
Happiness	204.36	7.69	230.15	8.78	12.30**	60
Hopelessness	13.45	4.56	5.60	4.11	7.11**	60

Table 1 displayed that mean score of happiness and hopelessness among covid-19 survivors and non covid person varied significantly.

At the first mean of happiness score of the covid 19 survivors is 204.36, SD is 7.69 and Non-covid persons score is 230.15, SD is 8.78. covid 19 survivors and Non-covid persons mean was highly significant t value 12.30 (60). It concluded that Non-Covid 19 persons had significantly high happiness than the covid 19 survivors.

Second mean of Hopelessness score of the covid 19 survivors is 13.45, SD is 4.56 and Non-covid persons score is 5.60, SD is 4.11. covid 19 survivors and Non-covid persons mean was highly significant t value 7.11 (60). It concluded that covid 19 survivors had significantly high hopelessness than the Non-covid persons.

Conclusion:-

1) Non-Covid 19 persons had significantly high happiness than the covid 19 survivors.

2) Covid 19 survivors had significantly high hopelessness than the Non-covid persons.

References:-

- Diener, E., Scollon, C. N., & Lucas, R. E. (2009). The evolving concept of subjective well-being: The multifaceted nature of happiness. In E. Diener (Ed.), *Assessing well-being* (pp. 67–100). New York: Springer.
- Holmes, E. A., O'Connor, R. C., Perry, V. H., Tracey, I., Wessely, S., Arseneault, L., et al. (2020). Multidisciplinary research priorities for the COVID-19 pandemic: A call for action for mental health science. *The Lancet Psychiatry*. Advance online publication, 7, 547–560.
- Lau AL, Chi I, Cummins RA, Lee TM, Chou KL, Chung LW. The SARS (severe acute respiratory syndrome) pandemic in Hong Kong: effects on the subjective wellbeing of elderly and younger people. *Aging and Mental Health.* 2008;12(6):746–760.
- Prescott, H. C. (2021). Outcomes for patients following hospitalization for COVID-19. *JAMA*, **325**, 1511–1512.
- Republic of Turkey Ministry of Health. (2020). Day table of coronavirus in Turkey. Retrieved October 30, 2020.
- World Health Organization. (2020). Weekly epidemiological update - 27 October 2020.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Page 208-211

Effect of Area of Residence on Emotional, Social and Educational Adjustment among College Students

Dr. Ravindra Ramdas Shinde*

Abstract: Aim of the present study: To find out the emotional, social and educational adjustment of urban and rural college students. Hypothesis: There will be no significant different in social, social and educational adjustment of urban and rural college students. Sample: 100 Students were selected from Aurangabad city for the present research. Among them 50 were urban college students and 50 were rural college students. Age range of college students 18 year to 24 year. (Mean = 22.63, SD = 3.87). Purposive & Accidental Non-Probability Sampling was used. Research Tools: The researchers has selected the Adjustment Inventory developed by Sinha and Singh. It measures adjustment in three areas: Emotional adjustment, Social adjustment and Educational adjustment. Statistical Analysis:- Mean, SD and 't' test were used for the present study. Conclusions: 1. urban college students have significantly high emotional adjustment than the rural college students. 2.urban college students have significantly high Social adjustment than the rural college students. 3. urban college students have significantly high Educational adjustment than the rural college students.

Keywords: College students, Emotional, social and educational adjustment.

Introduction:

Education is the manner of facilitating gaining knowledge of or acquisition of knowledge, skills, values, beliefs and habits. Adjustment is a behavioral manner of balancing conflicting needs. More than 40% of all university entrants go away research earlier than completion. 75% of these college students drop out in first two yr of college. The transition from faculty to university has emotions, social and tutorial adjustment. Some college students locate approaches and adapt it whereas other's experience overwhelmed and unable to meet the needs effectively.

Adjustment patterns of college students fluctuate with their stage of intelligence.

*Head & Associate Professor, Department of Psychology, Vivekanand Arts, Sardar Dalipsingh Commerce and Science College, Chhatrapati Sambhajinagar (Aurangabad) – 431001. (MS, India)

College college students have adjustment hassle in domestic also. They have difficulties with parents, siblings due to shyness, aggressiveness. They have educational adjustment trouble due to new tutorial pattern, surroundings and faculties. Motivation to learn, taking motion to meet educational needs and educational un delight are factors of educational adjustment. Social adjustment is vital for students. Forming supportive network, managing new social freedom, domestic sickness, loneliness are social adjustment problems.

Adjustment to university entails a range of needs differing in type and diploma and requiring lot of coping responses or adjustments. It's now not solely teachers with which the college students are concerned; they are equally affected via the social and emotional changes. According to Arkoff (1968), the definition of university adjustment displays on how a lot an person achieves thru it and its impact on his non-public growth. In phrases of how adjusted he is additionally relies upon on his functionality of getting grades and in the end accomplishing the degree. Tinto (1993) has proposed three tiers that college students cross via from faculty to university i.e. separation, transition and incorporation.

According to Astins (1999) principle of involvement, a surprisingly worried pupil is one who, for example, devotes enormous electricity to studying, spends a whole lot time on campus, participates actively in scholar organizations, and interacts regularly with college contributors and different students. Adjustment difficulties occur from the variations between the expectations of the college students and realities of university life. The pupil is required intellectually to meet grownup requirements whilst his emotional existence is nevertheless that of adolescents. As a result , we locate college students who are morbidly touchy or anxious or generally or timid or selfish or suggestible or seclusive , who require subtle managing if their mental potentialities are to be delivered out, for a most of mental success is now not possibly to take place the place emotional conflicts are existing (Blanton, 1925).

Aim of the present study:

1. To find out the emotional, social and educational adjustment of urban and rural college students.

Hypothesis:

1. There will be no significant different in social, social and educational adjustment of urban and rural college students.

Variable:

Independent Variable

Area of Residence – 1) Urban 2) Rural

Dependant Variable

1. Emotional adjustment
2. Social adjustment
3. Educational adjustment

Sample:

100 Students were selected from Aurangabad city for the present research. Among them 50 were urban college students and 50 were rural college students. Age range of college students 18 year to 24 year. (Mean = 22.63, SD = 3.87). Purposive & Accidental Non-Probability Sampling was used.

Research Tools:

The researchers has selected the following tool for the present research: Dr. K.P.Sinha and R.P.Singh. Adjustment inventory it measures adjustment in three areas:

1. Emotional adjustment
2. Social adjustment
3. Educational adjustment

Statistical Analysis and Discussion:

Mean, SD 't' test were used for the present study, which is given in table 1.

Table 1: Mean, SD & t-value of Adjustment in urban and rural college students

Types of Adjustments	Urban **(N=50)**		Rural **(N=50)**				
	Mean	**SD**	**Mean**	**SD**	**t- ratio**	**df**	**p**
Emotional	11.69	3.20	6.97	3.78	**6.73****	98	0.01
Social	10.57	3.09	6.11	3.74	**6.50****	98	0.01
Educational	13.69	3.39	9.78	3.57	**5.61****	98	0.01

0.01**= 2.62, 0.05*= 1.98

Table 1 displays the level of emotional, social and educational adjustment in various group of students.

Further, Emotional Adjustment mean of urban college students is 11.69, SD = 3.20 and rural college students mean is 6.97, SD = 3.78. t value is 6.73. Social Adjustment mean of urban college students is 10.57, SD = 3.09. t value is 6.50 and rural college students mean is 6.11, SD = 3.74. Educational Adjustment mean of urban college students is 13.69, SD = 3.39 and rural college students mean is 9.78, SD = 3.57 . t value is 5.61.

Surekha (2008) in her learn about discovered that pupil of non-public colleges are higher adjusted than college students of authorities schools. The college students of non-public faculties are higher than college students of authorities faculties in educational achievement. There is a bad relationship between the students' adjustment & tutorial achievement.

Enochs and Roland (2006) examined the relationship between residing environment, gender, universal adjustment to university and social adjustment in freshmen's tutorial and ordinary adjustments. The learn about discovered that boys had notably greater typical adjustment stages than women regardless of dwelling environment.

Conclusions:

1) Urban college students have significantly high emotional adjustment than the rural college students.
2) Urban college students have significantly high Social adjustment than the rural college students.
3) Urban college students have significantly high Educational adjustment than the rural college students.

References:

Arkoff, A., (1968). Adjustment and mental health. New York: McGraw-Hill.

Astin, A.W., (1999). Student Involvement: A dvelopmental theory for higher education. Journal of College Student Development, 40(5), 518-29.

Baker, S.R., (2003). A prospective longitudinal investigation of social problem-solving appraisals on adjustment to university, stress, health, and academic motivation and performance. Personality and Individual Differences, 35, 569-591.

Blanton, S.A., (1925). "Mental hygiene program for colleges". Mental Hygiene, 9, 478-488.

Enochs, W.K., and Roland, C.B., (2006). Social adjustment of college freshmen: the importance of gender and living environment. College Student Journal, 40(1), 63-72.

Fregussion, D.M. and Woodword, L.J., (2000). Educational, Psychological and sexual outcomes of Girls with conduct problems in early adolescence. a child psycho psychiatry, 41, 779-792

Sukrekha, (2008). Relationship between Studies adjustment and academic achievement. Edu.Track 7(7), 26-31

Tinto, V., (1993). Leaving college: Rethinking the Causes and Cures of Student Attrition (2nd.ed.). Chicago: University of Chicago Press.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 212-219

Intra-Regional Disparities in Infrastructure in Uttar Pradesh with Special focus on Eastern Uttar Pradesh

Dr. Raju Kumar Gupta*, Raju Sahni, Drishti Jaiswal*****

Abstract: Infrastructure facilities play a very important role in the economic development of any region. Just as agriculture and industry hold a very important place for the development and prosperity of a region, similarly infrastructure facilities are equally important. The development of infrastructure facilities not only produces a large proportion of national income in this region, but also enables optimum utilization of national resources. Developed infrastructure also helps in agricultural development and industrialization. As per census 2011, the population of Uttar Pradesh is 16.5% of India's population which is second highest populated among Indian states after Maharashtra. Uttar Pradesh is divided into 4 economic regions and 75 districts under 18 administrative divisions. The backwardness of this state as well as Eastern Uttar Pradesh can also be estimated from the fact of lack of infrastructural facilities. In this research paper, the research problem of the study is to examine the intra-regional disparities in Uttar Pradesh based on their development in infrastructure, categorization of districts is considered.

Keywords: Intra-Regional Disparities, Social Overhead Capital (SOC), Economic Infrastructure, Social Infrastructure, Eastern Uttar Pradesh.

Introduction

Development of infrastructure is essential need for the development of a nation, business, region or any organisations. The significance of infrastructure in the development of a nation is similar to that of BACKBONE of a human body. As often, it enhances the production efficiency and economic development in all sectors such as primary, secondary and tertiary sectors. As per the dictionary meaning of infrastructure, the basic structure and system of a nation or organisation that uses to work effectively.

*Assistant Professor, Dept. of Economics, DDU Gorakhpur University, Gorakhpur, UP, Mob.- 9870715823, Email: raju_gupta375@rediffmail.com: **Research Scholar (JRF), Dept. of Economics, DDU Gorakhpur University, Gorakhpur, UP, Email: sahniraju25@gmail.com: ***Research Scholar (JRF), Dept. of Economics, DDU Gorakhpur University, Gorakhpur, UP, Email: drishtidelhi1432@gmail.com

There are mainly two essential components of infrastructure that is social and economic infrastructure. Social infrastructure includes the construction and maintenance of facilities that support social services such as public health, education, literacy programme, drinking water and sanitation, housing etc. Economic infrastructure refers to physical availability and facilities such as transport systems, water supply sanitation, telecommunication connectivity, etc. that directly consent with the production and bring sustainable economic growth. And also includes road, communication, sewage, water, airports and power that refer to all services and facilities to make business activities possible. A good infrastructure (including above two components) makes the work process easier, serve as a supporting system and the process of economic growth.

Mahatma Gandhi declared at the beginning of 20th century, "The soul of India lives in its villages." According to the World Bank, in the world 64.61% of rural population lives in villages in 2021 and hence, rural development is a necessity of the nation and has a considerable importance in India. In most of the economic growth theories given by Ragner Nurkse, Albert Hirschman, Rosenstein-Rodan, Rostow, and so on, they considered the basic facilities or system that play vital role in economic development, pronounced as Social Overhead Capital (SOC) or Infrastructure like transports system, telecommunications, electricity and power, etc. Infrastructure directly contributed to the economic development of a country like it enhances ability to work, productivity and also reduces cost of production, induces investment, enhances size of market and facilitates outsourcing, etc. for economic activity of a country. In the same way, rural infrastructure in the country is crucial for agriculture, agro-industries and poverty alleviation in the rural areas. In case of rural infrastructure, pucca roads, electricity, LPG connections, bank accounts, etc. are considered as the development indicators in the rural areas. Improvement in the basic rural infrastructure has a positive impact on productivity and socio-economic development of the region and so as of the country.

It is known that one-sixth of the nation's population lives in UP and only four countries such as China, USA, Indonesia and Brazil have population higher than that of UP. In the state, not only population is high, almost 80 per cent of it resides in rural area, spread over 97,942 inhabited villages which are larger than any African country except Nigeria. Eastern Uttar Pradesh is an important region of the state of Uttar Pradesh. If we compare it with other regions, it is known that in terms of infrastructure, this region is still backward and suffers from backwardness. In eastern Uttar Pradesh, the government is emphasizing on infrastructure development, but the pace seems to be slow. Therefore, in the light of the above fact, an attempt has been made to examine the intra-regional disparities in Uttar Pradesh on the basis of their development in

infrastructure.

Objectives of the Study

The objectives of the study are:

- To study the intra-regional disparities in terms of infrastructure in Uttar Pradesh.
- To analyze and categorize the districts of Uttar Pradesh on the basis of infrastructure.

Methodology and Data Source

This study is mainly Analytical and Descriptive research in nature. The study is based upon the secondary data. The study seeks to compare regional variation at the two point of time i.e., 2011-12 and 2017-18 as per availability of data. The year 2011-12 reflects the situation after about a two decade of economic reforms and 2017- 18 represents the latest years for which most of the information is available and shows the impact of the second generation of economic reforms on regional disparity. The study considers the specific region of Poorvanchal with 28 districts as per economic classification. The present work is based on secondary data, UP Statistical Abstracts, District wise Development Indicator of UP, 2018; District Statistical Diaries and other data sources. In order to find the regional disparity in various regions of Uttar Pradesh, 7 indicators have been taken. These indicators are as follows:

- Length of P.W.D. Pucca Roads per Lakh Population
- Total length of pucca roads per lakh population
- Per capita electricity consumption (K.W.H.)
- Percentage of Electricity Consumption in Industry to total Consumption
- Percentage of Domestic Electricity Consumption to total Consumption
- No. of LPG consumers per lakh of Population
- No. of Scheduled Commercial Bank per Lakh of Population

Methodology for Computation of Indices

The study aims at computing different sub-indices for different indicators of infrastructure and then using them to compute overall index of infrastructure development of different districts and regions of Uttar Pradesh. The methodology for preparing the indices is as under:

$$\textbf{Dimension Index} = \frac{X_i - X_{min}}{X_{max} - X_{min}}$$

X_i stands for actual value;

X_{min} stands for minimum value;

X_{max} stands for maximum value.

Indices calculated for the indicators based on the above formula lie in between 0 to 1. Composite index of development has been calculated as the average of the indices of various indicators. Districts were then ranked according to Composite index. On the basis of composite Index we have three categories of the level of development such as highly developed (HD), moderately developed (MD), less developed (LD) for which range of composite indices are shown in table 1.

Composite index range	Level of development
0.0 – 0.4	Less developed
0.4 – 0.7	Moderate developed
0.7 – 1.0	Highly developed

Inter-Regional Disparities in Uttar Pradesh in Terms of Infrastructure

In order to find the regional disparity in various regions of Uttar Pradesh, 7 indicators have been taken which are mentioned earlier. To find district-wise composite indices in relation to these indicators, the average of the indices of all the indicators is used. The composite indices of various regions of Uttar Pradesh are shown by the following table

Table 1- Status of Infrastructure in the Regions of Uttar Pradesh

Regions	2011-12			2017-18		
	Composite Index	Level of Development	Rank	Index Composite	Level of Development	Rank
Western	0.61	MD	1	0.56	MD	1
Central	0.51	MD	3	0.52	MD	2
Bundelkhand	0.52	MD	2	0.43	MD	3
Eastern	0.32	LD	4	0.33	LD	4
MEAN	0.49			0.46		
SD	0.094			0.078		
CV	**19.093**			**16.913**		

Source: Calculated by the researcher from the formula given earlier

From the above table 1, it is clear that the Coefficient of Variation of the composite indices for the year 2011-12 was 19.093% while in the year 2017- 18 it has come down to 16.91%, which shows that there has been a decrease in the regional disparity between these regions during this period. It is also clear from the table that the Western region of Uttar Pradesh holds the first position in the infrastructural development while the Eastern region ranks fourth. In Eastern region, low level of per capita electricity consumption, less percentage of electricity consumption in industry to total consumption, less no. of LPG consumers per lakh of population and inadequate no. of scheduled commercial bank per lakh of population are responsible factors for backwardness of the infrastructure facilities as compare to Western region. Therefore, the development of infrastructure facilities in the Eastern Region has been reduced compared to other regions.

Intra-Regional Disparities in Eastern Region in terms of Infrastructure

There are a total of 28 districts in the Eastern Region, having intra-regional disparities in terms of infrastructural development. The composite indices of these districts are shown by the following table-

Table 2- Status of Infrastructure in Eastern Uttar Pradesh

Regions	2011-12			2017-18		
	Composite Index	Level of Development	Rank	Index Composite	Level of Development	Rank
Amethi	0.438	MD	4	0.535	MD	1
Sonbhadra	0.564	MD	1	0.530	MD	2
Gorakhpur	0.434	MD	5	0.508	MD	3
Varanasi	0.542	MD	2	0.503	MD	4
Prayagraj	0.442	MD	3	0.411	MD	5
Chandauli	0.349	LD	8	0.402	MD	6
Ambedkarnagar	0.272	LD	14	0.368	LD	7
Ayodhya	0.342	LD	9	0.365	LD	8
Deoria	0.254	LD	17	0.363	LD	9
Pratapgarh	0.282	LD	13	0.359	LD	10
Mirzapur	0.383	LD	6	0.354	LD	11
Basti	0.263	LD	15	0.340	LD	12
Kushinagar	0.217	LD	22	0.308	LD	13

Sant Kabir Nagar	0.248	LD	18	0.302	LD	14
Shravasti	0.109	LD	28	0.295	LD	15
Sant Ravidas Nagar	0.244	LD	19	0.287	LD	16
Jaunpur	0.298	LD	10	0.282	LD	17
Maharajganj	0.222	LD	21	0.277	LD	18
Sultanpur	0.361	LD	7	0.272	LD	19
Azamgarh	0.293	LD	11	0.262	LD	20
Kausambi	0.282	LD	12	0.252	LD	21
Siddharthnagar	0.213	LD	23	0.249	LD	22
Mau	0.262	LD	16	0.230	LD	23
Gonda	0.239	LD	20	0.209	LD	24
Balia	0.161	LD	26	0.209	LD	25
Ghazipur	0.209	LD	25	0.208	LD	26
Balrampur	0.136	LD	27	0.169	LD	27
Bahraich	0.210	LD	24	0.113	LD	28
Mean	0.30			0.32		
S.D	0.11			0.11		
C.V	37.01			33.15		

Note- LD- Less Developed (<0.4)

MD- Moderate Developed (0.4 to 0.7)

HD- Highly Developed(0.7 to 1)

Source: Calculated by the researcher from the formula given earlier

From the composite indices obtained based on 7 infrastructural development indicators for the study of the status of infrastructural disparities in various districts of eastern Uttar Pradesh, it is known that Amethi is currently the most developed and Behraich most backward in terms of the said infrastructural development indicators. The Coefficient of Variation of the composite indices for the year 2011-12 and 2017-18 make it clear that there has been a decrease in infrastructural disparity during this period. The worrying aspect of infrastructural development is that in the year 2011-12, only 5 districts were moderately developed while 23 districts were less developed in this respect.

If we look at the data for the year 2017-18, it is known that there has been no significant change in the infrastructural development within the Eastern Region. In this year, only 6 districts were moderately developed while 22 districts are still backward.

In the year 2017-18, from the point of view of infrastructural development, top 5 districts are Amethi, Sonbhadra, Gorakhpur, Varanasi and Prayagraj while the 5 most backward districts are Behraich, Balrampur, Ghazipur, Ballia and Gonda.

Findings of the Study

The main findings of the study are as follows:

- The evidence concludes that in the region wise comparative study, Eastern Uttar Pradesh has listed under low developed region while other regions (Central, Western and Bundelkhand) are in moderate developed region during the study period 2011-12 and 2017-18 in terms of infrastructure.
- On the basis of value of composite indices in 2011-12, only 5 out of 28 districts of Eastern Uttar Pradesh has moderate value while in the year 2017-18, 6 out of 28 districts has moderate composite value and remaining districts are in categorized in low composite value during study periods. Therefore, it is quite clear that most of the districts of Eastern Uttar Pradesh have backward infrastructure development.

Suggestions

It is clear from the above facts that the Eastern Uttar Pradesh region of Uttar Pradesh is backward in terms of infrastructure due to which the pace of its economic development is slow. In order to boost up the pace of development, it is necessary to strengthen the condition of infrastructure in Eastern Uttar Pradesh, in this context some suggestions are given below:

- There is a need for heavy investment in rural infrastructure development so that it can contribute to the economy and growth of the country.
- As per many economic growth theories have been studied and emphasized on the heavy amount of investment on infrastructure as it helps and supports other sectors for their developments. Therefore, specific plans for infrastructure development in backward districts should be made and executed because infrastructure gives boost to other sectors. It has forward linkages.

Conclusion

Infrastructure is most important for the development of any nation. It is a key for the development of states like Uttar Pradesh especially. The evidence suggests that in the region wise comparative study, Eastern Uttar Pradesh has listed under low developed region while other regions (Central, Western and Bundelkhand) are in moderate developed region. Therefore, it becomes necessary to strengthen the infrastructure

facilities for the rapid development of this region because Infrastructure development plays a leading role for development of economy whether it is rich or poor regions. A nation's economic and social development is directly dependent on its infrastructure. It helps in facilitating trade, economic growth, human development and productivity across many sectors of the economy of a country. Therefore, it is essential to oversee the infrastructure development in backward region of Uttar Pradesh especially, Eastern region.

References:

- Saxena M, Chotia V, Rao NVM. (2018). "Estimating the Efficiency of Public Infrastructure Investment: A State-Wise Analysis" Global Business Review 19 (4), 1037-1049
- District wise Developmental Indicators, State Planning Commission, 2011-12 and 2017-18.
- Nayak, C. (2014) "Rural Infrastructure in Odisha: An Inter-District Analysis" PRAGATI: Journal of Indian Economy 1 (1), 17-38
- Satish, P. (2007) "Rural Infrastructure and Growth: an Overview" Indian Journal of Agricultural Economics 62 (902-2016-67382)
- Dissou, Y. Didic S. (2013). "Infrastructure and growth" Infrastructure and Economic Growth in Asia, 5-45
- Lau, SHP. Sin, CY. (1997). "Public Infrastructure and Economic Growth: Time Series Properties and Evidence" Economic Record 73 (221), 125-135
- Timilsina, GR. Hochman, G. Song, Z. (2020) "Infrastructure, Economic Growth, and Poverty: A Review" World Bank Policy Research Working Paper,
- Samanta, PK. (2015). "Development of Rural Road Infrastructure in India" Pacific Business Review International 7 (11), 86-93
- Ghosh, M. (2017). "Infrastructure and Development in Rural India" Margin: The Journal of Applied Economic Research 11 (3), 256- 289, 2017
- Narayanamoorthy, A. Hanjra, M. A. (2006). "Rural Infrastructure and Agricultural Output Linkages: A Study of 256 Indian Districts" Indian Journal of Agricultural Economics, 61 (902-2016-67405)
- Chotia, V. Rao, NVM. (2017). "Investigating the Interlinkages between Infrastructure Development, Poverty and Rural–Urban Income Inequality: Evidence from BRICS Nations" Studies in Economics and Finance
- Wanmali, Y. Islam, Y. (1995). "Rural Services, Rural Infrastructure and Regional Development in India" Geographical Journal, 149-166
- Hussain, S. Maqbool, R.Hussain, A. Ashfaq, S. (2022) "Assessing the Socio-Economic Impacts of Rural Infrastructure Projects on Community Development" Buildings 12 (7), 947

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 220-224

Use of Bar Coading For Universities/ College Library And Information Science

Dr. Sushil Kumar Singh* and Rajesh Singh**

Abstract: This article explain the description of the use of Barcode Technology in libraries of University and Colleges, its working mechanisms with its advantages and disadvantages and also to create alertness among the librarians to use barcode technology in the library. The library is one of the pillars of any academic institution. Now a day ICT (Information & Communication Technology) growing vastly in every sector due to which every sector trying to automate their system among that Library is also one. In era of ICT library and Information Center need new tools hat will allow them to increase their productivity and improve user service without less man power. The use of barcodes for faster library services is time and used by ICT equipped libraries in our Country.

Keywords: Library, Barcode, Scanner, Computer, Barcoding Technology.

Introduction

In today's era of ICT computerization, automation of libraries is growing demand for improved facilities to users. Day by day Library materials are also changing to the various digital formats from the traditional print formats. Barcode technology plays an important role in automating the functions of the library, especially the circulation system process. Barcoding is generating, codified information with help of computer aids, which is then printed for later applications. A barcode is combination of a series of parallel, adjacent bas and spaces. A barcode reader analyze a barcode by scanning a light source across, the barcode and calculating the intensity of light replicated back by the white spaces. The pattern of replicated light I identified with a photodiode which produces an electronic signal that precisely matches the printed barcode pattern. This signal is hen construe back to the unique data by inexpensive electronic circuits. Rahaman (2016) found that barcode, Q.R. code and RFID are becoming very useful technology not only to serve the users but also valuable for library security. Islam and Shuva (2010) examined

*Librarian, Mahatma Gandhi P.G. College, Gorakhpur, Email- sushilsinghshrinet@gmail.com; **Librarian, Uttar Pradesh Administration Academy and Management, Lucknow, Email: rajesh28377@gmail.com

the usage and applications of barcode technologies for knowing merits and demerits of barcode technologies in the library.

Barcode Technology

During a shopping trip to a mall, you may have noticed the cashier, scanning your purchases with a lesser device to generate a bill, what he is actually doing is reading the produce barcode scanner. The barcode scanner reads the code, data is sent to the computer and the computer reaches the database or the items' price and description.

Barcode are designed to hold specific product information. They encrypt alphanumeric characters and symptoms by using black and white stripes, also known as bars, Barcoding is an AIDC (Automatic Identification and Data Collection) Technology that reduces the need for human intervention is data entry and collection, reducing error and time.

Use of Barcode Technology for Library Services

A barcoding system is simply an arrangement of bars that show numbers and letters, when using library management system, each barcode image is programmed to identify the title book, author name, item number, volume number etc. All this information is shown in one barcode with the help of coding. There is knowledge that a lot of benefits of use Barcode system in libraries few of them enlisted below.

- Use of barcode system for security click.
- Identification of membership at the gate.
- Issue and return books.
- Computerized circulation systems and application of barcode.
- Use of barcode system for monitoring Attendance.
- Use of stock verification and cross checking.

Advantage of barcoding in the library

Barcoding in libraries offers several advantages that enhance the efficiency and effectiveness of library operations. Here are some key advantages of implementing barcoding systems in libraries:

Accurate and Efficient Inventory Management: Barcoding enables libraries to automate the process of tracking and managing their inventory. Each item, such as books, DVDs, or CDs, can be assigned a unique barcode. By scanning the barcode, library staff can quickly and accurately update the item's status, location, and availability

in the library's database. This streamlines inventory management and reduces the chances of errors or discrepancies.

Quick and Easy Check-In/Check-Out: Barcoding simplifies the check-in and check-out process for library materials. When a patron wants to borrow an item, the library staff can scan the item's barcode along with the patron's library card, instantly recording the transaction in the library system. This reduces the time and effort required for manual entry, making the process more efficient and enhancing the patron experience.

Enhanced Search and Retrieval: Barcoding enables faster and more precise search and retrieval of library materials. With barcodes, library staff can quickly locate items on the shelves by scanning their barcodes. This helps in efficient reshelving and reduces the chances of misplacement or lost items. Additionally, barcodes can be used to generate item-specific location information, making it easier for patrons to find the items they need.

Streamlined Interlibrary Loan (ILL): Barcoding simplifies the interlibrary loan process by automating the tracking and management of borrowed items between libraries. When materials are borrowed from another library, their barcodes can be scanned and recorded, ensuring accurate tracking and timely return. This improves the efficiency of ILL services and reduces administrative burdens.

Inventory Auditing and Security: Barcoding facilitates periodic inventory audits and enhances security in the library. By scanning barcodes, library staff can quickly verify the presence and accuracy of items in the collection. This helps identify missing or misplaced materials, allowing for prompt corrective actions. Additionally, barcoding can be integrated with security systems, enabling the detection of unauthorized removal of items from the library premises.

Data Analytics and Reporting: Barcoding systems generate extensive data that can be leveraged for data analytics and reporting purposes. By analyzing barcode data, libraries can gain insights into borrowing patterns, popular items, and collection usage trends. This information can inform collection development decisions, improve resource allocation, and enhance overall library services.

In summary, barcoding systems offer numerous advantages in library operations, including accurate inventory management, efficient check-in/check-out processes, improved search and retrieval, streamlined interlibrary loan services, enhanced security, and valuable data analytics capabilities. These benefits contribute to a more organized and user-friendly library experience for both staff and patrons.

Disadvantage of barcoding in the libraries

While barcoding systems offer numerous advantages in libraries, there are also a few potential disadvantages to consider. Here are some of the main disadvantages of barcoding in libraries:

Implementation Costs: Implementing a barcoding system requires an initial investment in barcode scanners, labels, and related software. Libraries with limited budgets may find it challenging to afford the necessary equipment and software licenses. Additionally, staff training and system integration costs should be taken into account. However, the costs can often be offset by the long-term benefits of improved efficiency.

Barcode Label Placement and Durability: Barcode labels need to be placed accurately on library materials to ensure proper scanning. If labels are not affixed correctly or become damaged or worn over time, it can lead to scanning errors and hinder the effectiveness of the system. Regular inspection and maintenance of barcode labels are necessary to avoid issues with readability and durability.

Equipment Dependency: Barcoding systems rely on barcode scanners or readers to capture and process data. If the scanners malfunction or become outdated, it can disrupt library operations and require additional investments in new equipment. Libraries should plan for regular equipment maintenance and updates to ensure the continued functionality of the system.

Limited Barcode Capacity: Traditional barcodes have limited capacity for storing information. They typically contain a product identifier, such as an ISBN or UPC, but may not accommodate additional data such as item-specific details or multiple identifiers. This limitation may restrict the level of information that can be associated with each item in the library collection.

Human Error and Database Accuracy: While barcoding systems improve accuracy compared to manual processes, human error can still occur during barcode scanning or data entry. Mistakes in scanning or database updates can lead to incorrect information about item status, availability, or location. Regular quality control and data validation processes are essential to maintain accurate and reliable databases.

Conclusion

In conclusion, barcoding systems bring numerous advantages to libraries, enhancing efficiency, accuracy, and overall user experience. They facilitate streamlined inventory management, quick check-in/check-out processes, efficient search and retrieval, simplified interlibrary loan services, improved security, and valuable data analytics capabilities. However, it is important to consider the potential disadvantages

such as implementation costs, barcode label placement and durability, equipment dependency, limited barcode capacity, human error, and integration challenges. By addressing these challenges and implementing proper maintenance and quality control measures, libraries can leverage the benefits of barcoding systems while minimizing the drawbacks. Ultimately, barcoding technology plays a significant role in modernizing and optimizing library operations, benefiting both library staff and patrons.

Refereces

- Rahman, W., (2016). Enhancing Library Services using Barcode, QR Code and RFID Technology: A case study in Central Library. International Journal of Digital Library Services.
- Islam, M.S. & Shuva N.J., (2010). Barcode Technology and its use and application : A study of selected libraries of Bangladesh. International Information & Library Review, 42(1), pp. 27-33.
- Smith, J., Johnson, A., & Williams, L., (2022). Social Network Barcpde RFID Technology. Journal of Network Security, 10(3), 150-165.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 225-231

Artistic representation of selected Vaishnavite sculptures at Prachi Valley

Dr. Chitta Ranjan Sahoo*

Abstract: This research paper delves into the artistic representation of Vaishnavite sculptures in culturally rich Prachi valley of Odisha, India. Focusing on ionic deities such as Lord Jagannath, Lord Balabhaadra, Subhadra and Chatudha Murti, it analyzes the materials, intricate carving, vibrant colors and religious significance of these sculptures. These sculptures hold a pivotal role in the Rath Yatra festival and are central to the spiritual and cultural identity of the region. This paper also discusses ongoing efforts for their preservation, ensuring their continued contribution to Odisha's cultural heritage.

Keywords: Vaishnavite sculptures, Cultural tourism, Heritage conservation, Artistic craftsmanship.

Introduction :

The Mahanadi in Dakamba, close to Naraj, is where the holy river Prachi has its beginnings. Before entering the Bay of Bengal, it passes through a convoluted drainage system that has multiple channels coming out of it. Despite being extinct, the Prachi's route from Naraj to Phulnakhara may still beseen at the present-day oxbow Kanjia Lake close to the Nandankanan sanctuary. Five km downstream of Cuttack, close to the village of Kanjipatna, the river Kuakhai split off from the Kathajodi and joined the Prachi at Phulnakhara. The Prachi is known as Gambhariganda south of Kuakhai from Phulnakhara up to Bhingarpur. The Kusabhadra River, a distributary of theKuakhai, isthen connectedtothe Gambharigandaof the Prachi. Itiscalled Sola when viewedfrom the south. Towards the south, itis known as Sola River up to thevillage Govindaram Patna.

Currently, the river Prachi has a length of 60 km and a catchment area of about 600 km[1]. It is also known as "Patharabuhanadi" locally, a name that refers to the act of hauling stones to be used in the construction of various monuments in the valley. It can

*Assistant Professor, Department of Fashion Communication, National Institute of Fashion Technology, Bhubaneswar, Email: chittaranjan.sahoo@nift.ac.in

be seen that the Kuakhai system was developed after the Prachi system at Cuttack and that it was preceded towards Bhubaneswar over the Prachi. As a result, Prachi has been constrained to a small channel, and a new parallel flow of Kusabhadra.

Introduction to Prachi Valley- Socio-Religious and Cultural Background:

A country's culture can be shown in its architecture, sculptures, paintings, and other works of art. Finer threads like art, music, value systems, philosophy, and religion are what bind a people together. In order to analyse a nation's evolving genius, one must first understand how its values, art, architecture, sculpture, music, and other cultural practises have evolved over time.

Since ancient times, Odisha has been referred to as Utkal, which means literally "the land of excellence in art." In essence, the history of Odisha is an account of the growth of its fine arts. Odisha is well known all around the world for culture tourism even in the era we currently live in. Her temples are some of the finest in the nation. Because of their scale and artistic quality, they are comparable to the best in terms of grandeur and munificence.

The area is home to a sizable number of historic locations. The state-evolved language and musical form have gained formal recognition as classical forms. The history of a great culture's development is pretty fascinating. Among the sites boasting of temples of significant art forms, Prachi valley stands out prominent.

Scholars from a variety of fields have been interested in the river Prachi's rich cultural heritage ever since Govinda Ratha, who was travelling to Konark in 1906, stumbled upon a manuscript called "Prachi Mahatmya" and made arduous attempts to have it published, became aware of it. No major progress has been made in this area before to 1928. In Man in India, Vaitarani, Asha, JBORS, etc., Narayan Tripathy[2] published some essays on the archaeological relics of the valley.

The Prachi Valley - Archaeological Survey Report was released in 1975 when P.K. Ray[3] of the State Archaeology Department undertook the effort of surveying, exploring, and excavating the ancient sites and monuments situated in the Prachi valley. Only Ray's work listed the monuments and archaeological sites in the Prachi valley in a methodical and thorough manner. The report details the locations of forts, brick monuments, stone temples, mathas, and ports related to maritime tradition, as well as Brahmanical monuments, Buddhist artefacts, and Jain relics. However, the report does not speak anything about the art, aesthetics and philosophical approach of various sculptures carved in the temples as well as found in the precinct of various monuments.

After Ray, many scholars such as S.S Tripathy[4], K.S. Behera[5], Donaldson[6] and

Ratha[7] made research in different aspects of the Prachi valley. Tripathy made an intensive survey and concentrated on the Buddhist relics along with Jaina remains, while Behera and Donaldson dealt with the art and iconography of the few selected temples and scattered sculptures in the Prachi valley. Being a local, I have conducted thorough survey of the area and have tried to depict all the aspects of Prachi Valley in its glory.

Vaishnavism:

Since the time of the Vedas and the Mahabharata, the Almighty has been symbolised by Vasudeva or Vishnu, who holds the conch, the disc, the mace, the lotus, the abhaya, or the varada-mudra in popular culture. According to many religious scriptures, the Prachi valley is full of discoveries of four-handed images of Vishnu with various iconographical traits. These kinds of images, which display the aforementioned iconographical trait, are revered as Madhava at various locations throughout the Prachi Valley.

Such representations are so prevalent that it seems as though the Madhava cult dominated the religious practises of the Prachi valley's inhabitants. Ten of these statues may be located inside the Sobhaneswar temple compound in Niali (now preserved inside a sculpture shed constructed by Orissa State Department of Archaeology). Besides, the following sites of the Prachi valley contain the images of Vishnu as per the above description and commonly known as *Madhava*- two Vishnuimages afixed inside the *jagamohana* of the Brahma temple at Niali; Vishnu image kept under a tree at Korakara; the unique Vishnu image worshipped as Lalita-Madhava at Chahata; two Vishnu images kept inside the Jagamohana of the Amaresvara temple at Amaresvara; two Vishnu images worshipped inside a thatched room at Pitapara; the Vishnu image (4'-6/7) inside the Natamandira of the Ramesvara temple at Suhagpur; Vishnu images worshipped in miniature temple inside Images of Vishnu can be found inside the grounds of the Mangala temple in Kakatapur and the Jagamohana of the Gramesvara temple in Lataharana.

a) *Rupa Bheda* – (Form & Difference) The *Garuda* is normally a parrot nosed icon with wings behind. It is always found in a kneeling posture to take the Lord Vishnu on his back. So, in my painting, I have tried to maintain the basic attributes of the image of *Garuda*. *Garuda* as a semi-divine character needs appropriate attention.

b) *Pramana* (Evidence)– *Garuda* is muscular and powerful to look at. He has a long parrot nose. His eyes are piercing and constant. His face is strong. In the painting I have tried to give the viewer the impression of a traditional *Garuda*.

c) *Bhava* (Mood)- The *Garuda* is obedient and humble. He is the mount of the Lord

Vishnu. So, he should be disciplined. His entire posture reflects all these characteristics. The mood of *Garuda* is properly reflected.

d) *Lavanya* (Beauty)-The left half of the image is lit by Sun rays when I drew the Picture. So, I have tried to use different colours to reflect the antiquityness of the image. The sober and gentleness of the image are also seen in the painting.

e) *Sadrushya* (Similitude) Each part of the body from the head to arms, nose, wings, chest, waist, legs, feet and fingers are properly painted to give a collective identity of Garuda.

f) *Varna Bhangika* (Distribution and Delineation)

First, sketch drawing was done and then the outline colour is given.

1) Ground Preparation
2) Sketch Drawing (Composition in proper ways)
3) Outline in single colour
4) Filling up with different colours
5) Second coating to highlight distance, round shape, shadow, brightness, middle ground, background, subject etc.
6) Other highlights on the basis of subjective importance

Fig: Line sketch of Vaishnavite image of *Garuda* at Madhava

Sculptures:

VAISHNAVITE

1. Vaishnavite image of *Garuda* at Madhava

1. Garuda-Madhava.
2. The mount Garuda is in the *mukhasala* of the Madhava temple at Madhava in P.S. Niali, Dist-Cuttack.
3. L. – 2- 1/2" X B – 2"
4. It is in the best state of preservation.

The unique manifestation of Garuda in black chlorite stone is a beautiful product of a master artist. Its acquline beak and the hair above the wings and feathers are meticulously carved in round. Countless tales and reliefs surround this deity. He wears snake ornaments like armlats, waist belt and sacred thread. He seats in a conventional kneeling pose in anjali mudra offering a lotus in folded hands. He also wears sarpakundala in the ears and the serpent hood rises above his jewelled tiaras. His hair is arranged in two tires of serpentine coils which radiates around

his head. There is a small protuberance of Garuda at his feet in the same appearance.

This rare and unique manifestation of Garuda image is a beautiful product of skilled artist and is a very rare piece of art in whole of Odisha.

Fig: Line drawing of Vaisnavite image of *Mudugala Madhava* at Mudugala

2. Vaisnavite image of *Mudugala Madhava* at Mudugala

1. The *Mudugala Madhava* or Mudugla *Rishi* image is worshipped in a concrete shed in the village Mudugala, P.S. Kakatapur, Dist. Puri.
2. L. – 5"x B – 2½ "
3. This image is in a very good state of preservation.The important and unique chlorite stone image is distinguished prominently by the common feature with a large undecorated bulbous auro and petal like crown over the head. This four-armed deity holds a rosary in the main right hand and a conch in the left hand. But the upper hands lower down incongruously to cares the heads of two deities one male deityand the other a female deity, in the right and left hands respectively, both flanked by an atitude of thrice bent posture. The male deity keeps his left hand at waist- and throws the entire burden of the body on the right hand, which rests on a disc. The female deity flourishes a fully blossomed lotus in her right hand and the other hand hold a mace.

Fig: Line sketch of Vaisnavite image of *Garuda* at Mudgala

He wears a *yajnopavita*, Chain-girdle, necklace, armlets and crists lots. He stands in a samabhanga pose on the pedestal. The construction period of this image may be assigned to 7th-8th centuries CE as per North Indian sculptural style. As per *Abhilashitarth Chintamani* is identified as the *Mudugala Madhava*, attributed with *chakra purusa* and *gada devias* commented by H.V. Stitencron has made a special reference to this image and suggests its date to the 7th century CE and links it with a family which occurs as *Mudgala* kula in inscriptions of the 7th century CE.[8]

3. Vaisnavite image of *Garuda* at Mudgala

1. This image of mount Garuda is present in the Madhava temple atMudugala, inP.S Kakatapur of Puri district.

2. L. – 2 X B – 1 ½"

3. This image is in a best state of preservation.

This chlorite stone image of Garuda seated in kneeling posture over the double lotus pedestal with folded hands offering lotus bud. He wears necklaces and snake armlets and waist belt and sacred thread and *sarpa kundalas*. The serpent hood rises in two tires of serpentine coils which radiates around his head. The facial appearance looks like as the human face with acquiline nose. His cloths are arranged in folded shape to form a comical appearance over the pedestal. His feathered wings are meticulously carved to form as wings on both sides.

This is a unique manifestation of the Garuda image and a beautiful product of artistic illustration and skilled sculptural representation of the Prachi Valley.

Fig: Line drawing of Vaishnavite image of Vaikunthanath Madhava at Nuapatana

4. Vaishnavite image of *Vaikunthanath Madhava* at Nuapatana

1. The Northen lateral deity *Vaikunthanath Madhava* is worshipped at the *Nrushimhanath* Temple at Nuapatna in Nimapara, PS. of Puri District

2. L. – 2"X B – 1 "

3. The Chlorite stone image is in a best state of preservation.

The unique and exceptional image of *Vaikunthanath Madhava* now worshipped as the side deity. The (8) eight handed *Madhava* is attributed clockwise with a disc, mace, a sword, an arrow, a shield, a nose, a bow and conch. Stands in *Alidha* pose on double lotus pedestal. Flanked by two female divinities the mount Garuda is in *Namaskar Mudra* on the right side. This unique eight handed deity is identified as Vaikunthanath *Madhava* as per the description of *Bria Samhita* and *Avilasitartha Chintamani*. He is bedecked with fine stringed ornaments and necklaces with maker arch ear rings.

Conclusion:

Thus, the aforementioned debates show that the Prachi River, an estuary of the Mahanadi River, was the centre of human activity at least from the third and second centuries BCE. It was the birthplace of an old settlement that was representative of Odishan culture due to its location in the coastal plain under the control of the districts of Cuttack, Khurda, and Puri. As evidenced by the numerous religious monuments,

shrines, buildings, and sculptural remnants that coexisted side by side in a small region of 600 sq km on one of Odisha's populous and fertile soils.

The temple is frequently cited as an example of Archi- sculpture. Revolutionary advances in temple building have enabled artists to create stunning structures. Various sorts of attractive sculptures are installed to enhance the beauty and purpose of the temples. Every part of a temple conveys a message of redemption, or Mukti. Some temples have also mural paintings-of both religious and secular nature. Episodes related to different Gods, Goddesses and their associates are picturised on the walls of the temples. On the other hand, Satpathy[9] concentrated on the Vaisnavite monuments and the sculptures of the Prachi valley.

References:

1. S.K. Mitra, "The Prachi River Valley: A Study on Origin, Course and Antiquity", *Souvenir*, Dept. of History, Mangala Mahavidyalaya. Kakatpur, 2009, pp.1-8.
2. N. Tripathy, "Chaurasi Grant of Sivakaradeva", *Journal of Bihar and Orissa Research Society*, XIV, 1928, pp.292-306
3. P.K. Ray, *Archaeological Survey Report1974-75, Prachi Valley*, Orissa State Archaeology, Bhubaneswar, (ed.), 1975.
4. S.S. Tripathy, Buddhism *and Other Religious Cults of South-East India*, Delhi 24, 1988. 5. K.S. Behera, *Temples of Orissa,* Orissa Sahitya Academy, Bhubaneswar, 1993.
6. T.E. Donaldson, "Naga Images and the Cult of Manasa in Orissan Art", in B. Baumer (ed.), *Rupa Pratirupa*: *Alice Borner Commemoration Volume*, New Delhi, 1982, pp.99-108.
7. B.K. Ratha, *The Forgotten Monuments of Orissa,* 2 Vols., Publication Division, New Delhi, 1995 & 1996.
8. T.E. Donaldson, Hindu Temple art of Odisha, Vol II, Leiden. 1986, P.692
9. N.N. Satpathy, "Vaisnavite Sculptures and Monuments of the Prachi Valley", *Unpublished Ph.D. Thesis,* Utkal University, Bhubaneswar, 2011.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 232-242

A Study on the Psychological Hardiness of College Students and Aspiring Teachers

Dr. Abhay Pratap Singh*

Abstract: Psychological hardiness is the ability to main tain a positive mental state in the face of hardship. This research was done to learn more about the hardiness of college students and aspiring teachers. A total of 240 college students answered an online survey. Background information was gathered using a personal data sheet, and students' psychological hardiness was measured using the psychological hardiness scale. Mean, standard deviation, t test, and F test were used in the statistical analysis. The findings showed that undergraduates had greater challenge tolerance and psychological hardiness (overall) than their graduate and preservice teacher counterparts. When compared to their female classmates, male students have a more difficult time. Adolescence is a time of greater psychological fortitude and hardiness than any other stage of life. This paper presents the findings of the results.

Keywords: Psychological hardiness, Academic stress, Psychological well-being, Social support.

Introduction

Students in higher education can benefit significantly from developing psychological hardiness, notably in terms of their academic success and their overall sense of well-being. College students might be influenced in a number of different ways by their psychological hardiness[1–3]. Students who are mentally tough have a better chance of thriving in the academic and social challenges of higher education. They have a larger capacity for hardiness and growth as a result, which can manifest itself in improved academic performance and expanded personal development. Anxiety and depression are widespread among college students, but students with high levels of psychological hardiness may be less susceptible to these conditions[3]. They might also be more open to receiving treatment and practising self-care techniques that benefit their emotional and psychological wellbeing. Students with greater psychological hardiness may be better able to focus on and overcome obstacles in their studies.

*Assistant Professor-Psychology, Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur

Better grades and overall school performance may be the result of their increased motivation to find and use academic resources and support. Students with a high degree of psychological hardiness are more open to trying new things and seeing setbacks as learning experiences. Increased opportunities for self-improvement during and after college may result[4]. College students can benefit greatly from developing psychological hardiness to better handle the stresses of university life and maximize their potential for success and happiness. Student mental hardiness is an area that needs more study. Despite the existing literature on psychological hardiness, particularly in the areas of stress and coping, there is still much to discover about the ways in which this trait develops in students and how it can be fostered in classroom settings[5,6].

Several variables affect one's psychological hardiness. Higher degrees of psychological hardiness are linked to characteristics like optimism and belief in one's own abilities. People who are optimistic and have a high tolerance for stress are more likely to become mentally tough. Life experiences, especially those involving hardship and adversity, can influence the maturation of one's mental fortitude. Those who have been through a lot and come out on top may be the most resilient people you know[5].

Psychological hardiness may also be affected by the availability of social support, such as from loved ones or a therapist. People who have friends and family who will always be there for them may be better able to weather the storms of life and emerge from them with a more resilient mentality. Socioeconomic status and availability of resources are two examples of cultural and environmental elements that have been shown to affect individuals' mental hardiness. Those who lack access to resources and assistance may be more likely to acquire psychological hardiness, whereas those who do may be less likely to do so if they encounter severe structural or societal constraints[6].

Although these may influence the maturation of psychological hardiness, it is still possible to develop this quality through deliberate practice and training. With the correct resources and encouragement, anyone can strengthen their mental fortitude and ability to bounce back from adversity.

Psychological hardiness

In 1979, Kobasa 'as a resistance factor'[7] first introduced the concept of 'hardiness' from the medical literature. According to Kobasa, "hardiness as a complex individual trait is formed by three constituents: challenge, control, and commitment, which are supposed as a set of mediators to modulate stress effects". Hardiness, as a "operationalization of existential courage" (Maddi, 2004), helps people move forward in life despite the fact that they are unsure of what lies ahead[8]. Hardiness, as defined by Santrock (2006), is "a personality style, which is characterised by a sense of commitment

(rather than alienation) and of control"[9].

Review of the literature

Numerous studies have found that those who are resilient are more likely to say they are happy, satisfied with their lives, physically healthy, and emotionally healthy (**Delahaij et al., 2010**)[10]. Low hardiness has also been linked to an increased risk of mental health issues like depression, anxiety, and stress (**Eschelman et al., 2010**)[11]**.** The hardiness and other psychological factors were investigated by **Najd et al. (2014)**[12]. Changes in male students' psychological well-being may be predicted by their levels of self-esteem, social support, and psychological hardiness, as shown in the results. These results also suggest that those who have high levels of psychological hardiness, self-efficacy, and perceived social support tend to be happier overall.

Rizvi (2016) pointed out that all dimensions of psychological well-being are significantly and positively connected with hardiness; these include environmental mastery, relation with others, personal progress, self-acceptance, autonomy, and a good purpose in life[13].

In addition, research by **Oktavia et al. (2021)** found that peer social support and hardiness strongly influenced academic stress. Academic stress is significantly influenced by a student's personality[14]. Research has shown that kids need hardiness training in order to thrive in a challenging classroom. Individuals' responses to stress and their propensity to adapt their behaviour are also impacted by their level of hardiness. It was the goal of the study by **Widhigdo et al. (2020)** to determine whether or not students who engaged in extracurricular activities benefited from hardiness training, and if so, how[15].

The results showed that after undergoing hardiness training, participants reported considerably higher levels of psychological well-being. The researchers also discovered a link between hardiness and emotional health. Positive and significant relationships between psychological well-being and traits including psychological hardiness, psychological capital, and the perception of a democratic parenting style were also discovered in a survey conducted by **Khatri (2022)**[16]. According to **Wang and Miao (2009)**, "men and women are experiencing different health situations due to different resources and facilities available to each gender"[17].

Desai (2017) found that male students have more psychological hardiness than female students because men get less worked up about problems and respond more rationally, however this study found that women become more worked up about problems[18]. There was also no statistically significant difference between the sexes, as

was explained by previous research such as that conducted by **Hosseinpour et al. (2008)**[19]. Adolescent guys, according to **Kaur (2017)**, are more challenging to treat psychologically than girls of the same age[20].

Similarly, **Puri and Jyoti (2019)** reported that males had a higher mean score on psychological hardiness than girls. They attribute this disparity to the predominance of male role models in their lives, who typically instruct girls to be submissive and subdued[21]. According to **Priyanka, Kang, and Sharma (2022)**, males are more dedicated and resilient mentally than females[22].

Many fields of study have investigated the topic of hardiness. **Figure 1(a-b)** displays the annual and geographical distributions of Scopus-cited studies on psychological hardiness.

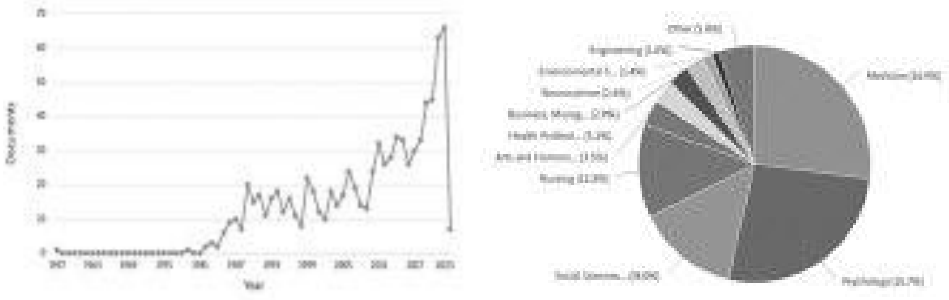

Figure 1(a) No of documents year wise **(b)** No of documents published in different discipline.
(Data has been taken by Scopus database on 20 April 2023)

Thus, the purpose of this research is to investigate the significance of hardiness among college students. Having the mental fortitude to persevere through adversity is a hallmark of psychological hardiness. When the available research is taken into account, it becomes clear that very few studies have been undertaken on the aforementioned concepts. Therefore, this research will fill a knowledge gap and illuminate the significance of psychological hardiness.

Objective

- To examine the psychological hardiness among undergraduate, postgraduate and B.Ed. students (Aspiring teachers).
- To find the level of psychological hardiness between male and female students.
- To find the level of psychological hardiness between adolescents and students of adulthood.

Hypotheses

- There will be no significant difference in psychological hardiness among undergraduate students, post-graduate students, and B.Ed. trainees (Aspiring teachers).
- There will be no significant differences in psychological hardiness of boys and girls.
- There will be no significant differences in the psychological hardiness of adolescents and adulthood.

Method

Sample: A total of 240 students in various groups, that is, educational level: undergraduate students (37.1%), post graduate students (17.1%) and B.Ed. trainees (45.8%), gender: male (43.3%) and Female (53.8%), age group: Adolescent (46.3%) and adulthood (53.8%) participated in present study. The pie chart in **Figure 2(a-c)** shows the percentage distribution of different categories. The data was collected through online mode using Google forms. The convenient sampling technique was used in the process. In this investigation, a descriptive survey method was used.

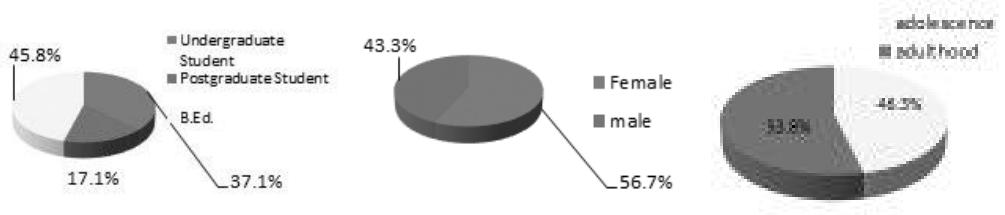

Figure 2(a) percentage of different groups **(b)** percentage distribution in gender **(c)** percentage distribution of age group.

Measuring Tools

A set of measuring tools were used in the present investigation of the online survey, which are the following.

· Socio-Demographic Questionnaire (Self -structured)

· **Psychological Hardiness Scale**- This scale was developed by Singh in 2008[23]. This scale consists of 30 items in three components, i.e., commitment, control, and challenge. It was standardized in the 10 + 2 class to adults.

Procedure

Data were collected from male and female college students studying in various colleges in the Gorakhpur district of Uttar Pradesh. Participants were first contacted via email, what sap group, and personal link to the online survey through Google form. Data collection was done using a sociodemographic questionnaire and a psychosocial hardiness scale in online survey.

To explore the level of psychological hardiness among various groups of college students, statistical analyses have been performed. The mean and standard deviation were calculated using SPSS 20 and for testing the significance of the difference between means of psychological hardiness; the t test and the F test were analyzed.

Results

The following **Table 1** displays the means, standard deviations, and F-values for students' psychological hardiness at three different levels of education.

Table 1: Means SDs and F-values of Psychological Hardiness of Students (Undergraduate, Postgraduate, and B.Ed.)

Psychological Hardiness	Level of Education	Mean (M)	Std. Deviation (S.D.)	F-value	Level of significance
Challenge	Undergraduate Postgraduate B.Ed.	42.04 41.78 39.95	4.35 4.14 5.53	5.05	0.01
Commitment	Undergraduate Postgraduate B.Ed.	42.65 42.27 41.93	3.76 3.45 4.10	.861	Not Significant
Control	Undergraduate Postgraduate B.Ed.	40.82 40.09 39.80	3.37 3.04 3.63	2.19	Not Significant
Psychological Hardiness (Total)	Undergraduate Postgraduate B.Ed.	125.52 124.14 121.68	9.76 8.92 11.58	3.36	0.05

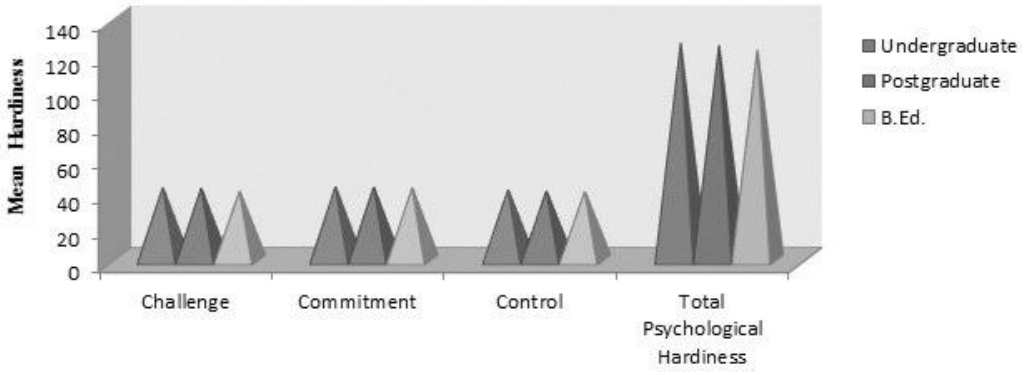

Figure 3: Shows Psychological hardiness as a function of different educational level

Table 1 and **Figure 3** showed that the extent of psychological hardiness varied significantly in various types of education. Furthermore, the undergraduate student has more challenge than post graduate student and the B.Ed. trainees. Similarly, undergraduate students have more psychological hardiness (total) than other counterparts.

Table 2: Mean SD and t-values of Psychological Hardiness of students (age group)

Psychological Hardiness	Age Group	Mean (M)	Std. Deviation (S.D.)	t-value	Level of significance
Challenge	Adolescent Adulthood	42.04 40.18	4.25 5.40	2.94	0.01
Commitment	Adolescent Adulthood	42.69 41.88	3.60 4.06	1.64	Not Significant
Control	Adolescent Adulthood	40.82 39.72	3.19 3.66	2.48	0.01
Psychological Hardiness (Total)	Adolescent Adulthood	125.56 121.78	9.18 11.46	2.79	0.01

Table 2 and **Figure 4** display psychological hardiness in different age groups, and students differ significantly. Adolescent students face more challenge than adulthood students. Similarly, adolescents were found to have a high level of control compared to adulthood. Subsequently, on psychological hardiness (as a whole), adolescents have more hardiness than their other counterparts.

Table 3: Mean SD and t-values of Psychological Hardiness of male and Female Students

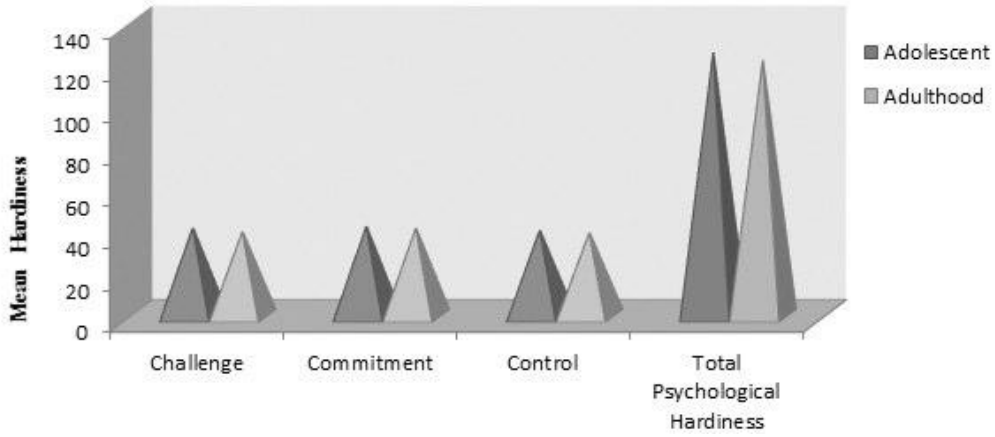

Figure 4: Shows Psychological hardiness as a function of different age level

Psychological Hardiness	Gender	Mean (M)	Std. Deviation (S.D.)	t-value	Level of significance
Challenge	Male Female	41.75 40.50	5.27 4.69	1.94	0.05
Commitment	Male Female	42.63 41.96	4.17 3.61	1.33	Not Significant
Control	Male Female	40.39 40.10	3.82 3.16	.646	Not Significant
Psychological Hardiness (Total)	Male Female	124.78 121.78	11.74 9.61	1.60	Not Significant

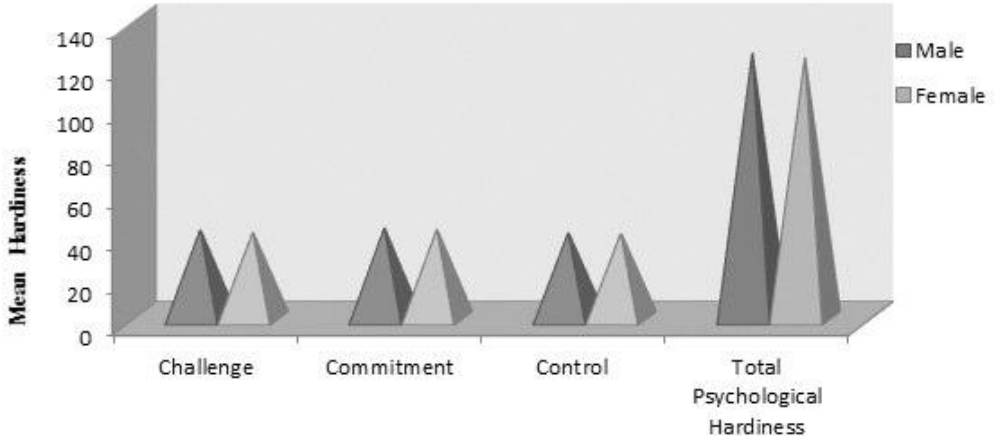

Figure 5: Shows Psychological hardiness as a function of gender

Table 3 and **Figure 5** show that the gender differences in the psychological hardiness of the students varied significantly. It is clear that the male student faced more challenge than female students.

Discussion

The results revealed that the students studying undergrad had higher challenge and psychological hardiness (total) compared to postgraduate and aspiring teachers. Male students have a greater challenge compared to their female counterparts. These findings are in line with the studies conducted by Desai (2017) and Kaur (2011), who found that boys had a higher level of psychological hardiness compared to girls[18,24]. Other researches also support the present studied findings Verma and Monika (2021) pointed out that male student was more hardy than female student[25]. The results were also supported by Moradi (2010), Desai et al (2017) and Kiamarsi (1999)[18,26,27]. Priyanka Kang and Sharma (2023) found that boys were found to be more committed than girls and had a higher level of psychological hardiness as compared to girls[22].

Adolescence has higher challenge, control, and psychological hardiness (total) as compared to adulthood students. This result is supported by the Singh (2016) study, which reported that hardier adolescents experience less stress[28]. Hence, hardiness training for the adolescents so that they may cope with various types of stress in their life. A study published in the Journal of Youth and Adolescence (2023) found that adolescents who reported higher levels of hardiness were more likely to have positive outcomes, such as lower levels of depression and anxiety, better self-esteem, and better academic performance[29]. The study authors suggested that this may be due in part to the fact that adolescence is a time of significant developmental change, which requires individuals to be flexible and adaptable in the face of new challenges. These results are in similar with the results of Collins (1992), Younin (1992), Penguilly (1997), and Pollachek (2001)[30–33].

Mentally robust students are more likely to try new things and see setbacks as learning experiences. This has the potential to enhance one's learning and development while at university and beyond. Overall, psychological hardiness can play a significant role in helping college students thrive despite the many unique pressures they face. Students with greater psychological hardiness may fare better in college than their peers when it comes to avoiding the prevalent mental health problems of stress and despair. They might also be more open to receiving treatment and practising self-care techniques that benefit their emotional and psychological wellbeing. Student mental hardiness is an area that needs more study.

Conclusion

1. Students at the undergraduate level showed more overall difficulty and psychological hardiness than those at the graduate and initial teacher preparation levels.
2. Male students have a tougher situation than their female colleagues in two ways.
3. Third, compared to adulthood, adolescence presents greater opportunities for challenge, control and psychological hardiness.

References

[1] S.F. Waites, J.L. Stevens, T. Hancock, Trauma's effects on shopper choice confusion: The role of psychological hardiness and retailer strategies as mitigating factors, Journal of Retailing and Consumer Services. 72 (2023) 103277.

[2] S.G. Sherman, C. Tomko, D.F. Nestadt, B.E. Silberzahn, E. Clouse, K. Haney, S.T. Allen, N. Galai, Impact of a community empowerment intervention on sexually transmitted infections among female sex workers in Baltimore, Maryland, Sexually Transmitted Diseases. (2023) 10–1097.

[3] I.A. Baeva, L.À. Gayazova, I. V Kondakova, Personality resources of adolescents in the educational environment, Integration of Education. 25 (2021) 483.

[4] L. Aditia, F.R.N. Wahidah, T. Na'imah, Academic stress in pharmacy practicum students: Is there a role of hardiness?, Journal of Pedagogical Sociology and Psychology. 5 (2023) 12–19.

[5] T.H. Skoglund, P. Risan, R. Milne, Personality and hardiness differences between Norwegian police and psychology students, Scandinavian Journal of Psychology. 64 (2023) 230–237.

[6] Y.F.R.A.-M. Al-Mutairi, S.B. Tayfur, M.A.K. Haj, Psychological hardness and its relationship to future anxiety among secondary school students in Taif, Educational Research and Innovation Journal. 3 (2023) 56–86.

[7] S.C. Kobasa, Stressful life events, personality, and health: an inquiry into hardiness., Journal of Personality and Social Psychology. 37 (1979) 1.

[8] S.R. Maddi, Hardiness: An operationalization of existential courage, Journal of Humanistic Psychology. 44 (2004) 279–298.

[9] J.W. Santrock, Human adjustment, McGraw-Hill New York, 2006.

[10] R. Delahaij, A.W.K. Gaillard, K. van Dam, Hardiness and the response to stressful situations: Investigating mediating processes, Personality and Individual Differences. 49 (2010) 386–390.

[11] K.J. Eschleman, N.A. Bowling, G.M. Alarcon, A meta-analytic examination of hardiness., International Journal of Stress Management. 17 (2010) 277.

[12] M.R. Najd, M.R. Mosahebi, H. Atashpour, Prediction of psychological well-being through components of self-efficacy, psychological hardiness & perceived social support, Thoughts and Behavior in Clinical Psychology. 8 (2014) 47–56.

[13] T. Rizvi, A study of the relationship between hardiness and psychological wellbeing in university students, International Journal of Advanced Research. 4 (2016) 2340–2343.

[14] S. Octavia, D. Maulina, S.G.S. Safari, I.S. Mulya, The development and psychometric properties of Multidimensional Hardiness Inventory for Young Adults in Indonesia, Konselor. 10 (2021) 43–56.

[15] W. Widodo, R. Damayanti, Vitality of job satisfaction in mediation: the effect of reward and personality on organizational commitment, Management Science Letters. 10 (2020) 2131–2138.

[16] P. Khatri, H.K. Duggal, Well being of higher education consumers: A review and research agenda,

International Journal of Consumer Studies. 46 (2022) 1564–1593.

[17] E.M. Smyth, T. Grosser, M. Wang, Y. Yu, G.A. FitzGerald, Prostanoids in health and disease, Journal of Lipid Research. 50 (2009) S423–S428.

[18] B. Desai Rahul, Psychological hardiness among college students, The International Journal of Indian Psychology. 4 (2017) 80–84.

[19] M. Hosseinpour, A. Behdad, Evaluation of small bowel measurement in alive patients, Surgical and Radiologic Anatomy. 30 (2008) 653–655.

[20] M. Kaur, Comparative study of psychological hardiness among adolescents in relation to some demographic variables, Journal for Advanced Research in Applied Sciences. 4 (2017) 292–301.

[21] P. Puri, Psychological Hardiness: A Comparative Study of Males and Females, International Journal of Indian Psych/logy. 7 (2019).

[22] D. Priyanka, T.K. Kang, S. Sharma, GENDER AS A DETERMINANT OF PSYCHOLOGICAL HARDINESS AMONG RURAL ADOLESCENTS, Commitment. 22 (n.d.) 22–30.

[23] A.K. Singh, Singh psychological hardiness scale, National Psychological Corporation, Kacheri Ghat: Agra. (2008).

[24] J. Kaur, Influence of gender and school climate on psychological hardiness among Indian adolescents, in: International Conference on Social Science and Humanity, 2011: pp. 319–323.

[25] R. Verma, M. Monika, mental health in relation to psychological hardiness among college students, (n.d.).

[26] B. Moradi, Addressing gender and cultural diversity in body image: Objectification theory as a framework for integrating theories and grounding research, Sex Roles. 63 (2010) 138–148.

[27] A. Kiamarsi, The Construct and validate a scale to measure Psychological Hardiness and its Relation with Type A Personality, control center and self esteem, psychosomatic and academic performance in both genders in students in Ahwaz Azad University, The Thesis of Master Degree in Ahwaz University. (1999).

[28] R. Singh, Stress among School-Going Adolescents in Relation to Psychological Hardiness., Journal on Educational Psychology. 9 (2016) 8–15.

[29] J. Su, Z. Li, the influence of learning environment and learning pressure on the student development of university—based on the mediating role of learning orientation and engagement, (2023).

[30] W.A. Collins, B. Laursen, Conflict and relationships during adolescence, Conflict in Child and Adolescent Development. (1992) 216–241.

[31] J. Youniss, D.L. Haynie, Friendship in adolescence, Journal of Developmental & Behavioral Pediatrics. 13 (1992) 59–66.

[32] J.W. Pengilly, Hardiness and social support as moderators of stress in college students, Kent State University, 1997.

[33] J.B. Pollachek, The relationship of hardiness, social support, and health promoting behaviors to well-being in chronic illness, Rutgers The State University of New Jersey, Graduate School-Newark, 2001.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 243-252

The health of diabetics may benefit from using millets as a dietary supplement : A Study

Dr. Deepshikha Nagvanshi*

Abstract: Millets are so nutrient-dense; there is a requirement to promote them as a reliable source of nutrition. In human history, they have been significant food staples, especially in Africa and Southeast Asia. Over the last three decades, consumption of sorghum and other millet as direct food has dramatically decreased. Whole grains like millet, brown rice, muesli and barley have been a staple of the human diet for a long time, and many research has shown that they contain high fibre levels that slow down the digestive process and help keep blood sugar levels at their ideal levels. They are a great source of flavonoids, phytosterols, phenolic acids, and dietary fibres, all of which aid in preventing diabetes. Due to their antioxidant, antibacterial, and anti-carcinogenic properties, millets' bioactive components may benefit health. The body's immune system is significantly influenced by grains that generate an alkaline environment. Even though millets have more nutritious value than other cereals, they are an underutilized grain. To enhance the health of people with diabetes in both developed and developing nations, it would be worthwhile to include millet in our regular diet. Since millets have the potential to be used in the manufacture of healthful dishes, their use needed to be promoted. The goal of the current study is to compile all evidence currently accessible on the advantages of millet for treating diabetes.

Keywords: Millets, Bioactive compounds, Nutrients, Diabetes, Whole grains and health benefits etc.

Introduction

As a group of small-seeded grasses, millets have been grown and eaten for many millennia (*Bouis HE, 2000*). These ancient grains, which have recently gained appeal because of their great nutritional value and sustainability, were formerly a staple diet in many parts of the world, particularly in Africa and Asia (*Chandra D, et al. 2016)*. Millets are among the world's oldest domesticated grains, having been grown and eaten for more than 7,000 years. The majority of the world currently grows them, including

*Assistant Professor, Home Science Department, Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur

north and South America, however historically they were only grown in Africa and Asia. There are several different types of millet, including finger millet, sorghum, foxtail millet, and pearl millet. Each kind differs from the others in terms of taste, texture, and nutritional content. Millets are incredibly nourishing and a great source of fibre, protein, vitamins, and minerals.

Figure 1: Different types of Millets Seeds
Source: Wikipedia

Millets are a great option for people with diabetes and celiac disease or gluten intolerance because they don't contain gluten. Millets are incredibly nourishing and a great source of fibre, protein, vitamins, and minerals. Millets are a great option for people with celiac disease or gluten intolerance because they don't contain gluten. Millets are a wonderful option for persons with diabetes since they have a low glycemic index and release glucose into the system gradually.

Compared to other major grains like rice and wheat, millets are a sustainable crop that needs less water, pesticides, and fertilizers to grow. They are a perfect crop for small-scale farmers since they can thrive in challenging environments and are resistant to pests and illnesses. Due to the beneficial insects and birds they attract, millets can be grown to enhance soil health and biodiversity. Due to their low capital requirements and ability to be cultivated on marginal soils, millets can be a lucrative crop for small-scale farmers. Millet cultivation and use can enhance food security and benefit regional populations. Millets are a dependable food supply in times of scarcity since they have a long shelf life and may be preserved for several months. Ancient grains called millets

have several health, economic, and environmental advantages. They can significantly contribute to the promotion of food security and sustainability as a healthy and sustainable substitute for other grains. It's critical to comprehend millets' potential as a vital food crop as we work towards a more sustainable future. We can build a more durable and sustainable food system by encouraging the production and use of millet.

Consuming whole grains like maize, oats, barley, and millets on a regular basis helps prevent the development of chronic illnesses including cancer, heart disease, obesity, and diabetes. These grains are renowned for having an abundance of fibres, minerals, vitamins, and phenolic compounds. As a high source of antioxidants, whole grains have been proved to have a positive impact on human health. They are helpful in enhancing insulin sensitivity, reducing inflammation, and humanizing lipid profiles. Sorghum (Jowar) and Pearl (Bajra) are the most widely grown millets, while minor varieties include Finger (Ragi), Foxtail (Korra), Proso (Variga), Barnyard (Jhingora), Kodomillet (Varagu), and Little millet (Sama). In Eastern Asia, millet has been grown for at least 10,000 years, and throughout the course of human civilization, it has been a popular staple. India is the largest producer of millets in the world, ranking first overall. Millets account for more than 58% of global output, but very few Indians are aware of its nutritional worth and health advantages *(Upadhyaya et al., 2007*). Millets are a very important cereal grain because more than one-third of the world's population has been found to consume them. Greece, Egypt, Africa, China, and India are the top producers of millets. They are a crucial part of nourishment, particularly for the most disadvantaged members of society. It is used to make a variety of traditional foods and drinks, including roti, millet wine, nutrition powder, snack foods, and bread.

The oldest grain, millets, has grown in popularity as people have begun to realise how crucial they are to daily living. Millets are once again popular, and millet consumption has increased as more people choose to avoid gluten in order to lose weight. Additionally, the decision to designate 2023 as the "International Millet Year" has raised awareness of millets' nutritional benefits and the necessity of adding millets in people's daily diets.

Millets' Bioactive Components

Millet contains a variety of phytonutrients, such as phenol, sterol, dietary fibre, lignan, inulin, beta-glucan, tocopherol, and carotenoids. Flavonoids and polyphenols, which are both found in extremely minute amounts and have antioxidant properties. It is essential for boosting the body's defense mechanisms. Additionally, it aids in weight loss and is rich in iron, protein, and fibre. The policosanols found in millets aid in lowering cholesterol levels. Millets are a good source of antioxidant phytochemicals,

vitamins, and minerals like calcium, zinc, and iron.

Ragi, sometimes referred to as finger millets, has a significant amount of calcium. Little and Kodo millets are reported to contain between 37 and 38 percent dietary fibre, which is among the highest levels among different grains. They are also high in polyunsaturated fatty acids. Additionally, it has significant amounts of lysine and valine, two necessary amino acids for humans.Folic acid, phosphorus, iron, potassium, and vitamin B are all abundant in millets. When compared to corn, finger millet has roughly 16 percentage points more calcium. Additionally, niacin levels in pearl millet are said to be substantially higher than in any other grains. Due to the lack of gluten, millets are an excellent source of antioxidants and are simple to digest.

Millets are rich in vitamin B nutrients including riboflavin, niacin, folic acid, thiamin, and beta carotene, as well as antioxidants, vital amino acids, and fatty acids. These nutrients also play a crucial part in the body's ability to synthesize energy *(Ravindran G, 1992)*.

Millet Nutritional Constitution

When compared to the nutritional content of commonly consumed rice and wheat grains, the nutritional content of all millets is between three and five times higher. While millets offer various security benefits, such as food, health, nutrition, livelihood, animal feed, etc., compared to wheat and rice, millets are a source of agricultural security. Millets are nutritious and healthy, and they also aid in the management of conditions like diabetes, hyper lipidemia, and others.

Millets have far superior nutritional value when compared with wheat and rice. Finger millets have more than thirty times the calcium of rice, while other millets contain at least twice as much calcium as rice. Millets also have more fibre than both rice and wheat. If human health and fitness are preserved while keeping diet quality in mind, the problem of malnutrition can be resolved *(Longvah T, et al. 2017)*.

Nutrients in millets

Millets include 2-7% crude fibre, vitamins, and minerals, as well as 65% carbohydrates, 9% proteins, and 3% fat. They are an excellent source of iron, manganese, phosphorus, magnesium, vitamin B, and antioxidants. Millets are a rich supply of essential amino acids, with the exception of lysine and threonine, but they are also high in the amino acids methionine and cysteine, which include sulphur. Linoleic, oleic, and palmitic acids, as well as monogalactosul, diacylglycerols, digalactosyl diacylglycerols, phosphatidylethanolamine, phosphatidyl serine, and phosphatidyl choline, are among the essential fatty acids that millets are an excellent source of. There are traces of other

fatty acids such arachidic acid, behenic acid, and erucic acid. Linoleic acid and tocopherols may be found in millet oil. Gluten-free millet is an alkaline-forming grain. Millets include vitamins B, including niacin, folacin, riboflavin, and thiamine, as well as phosphorus, all of which are important for the body's generation of energy *(Singh KP et al., 2012)*

Table 1: Nutrient value of millets, Nutritive value of Indian Foods, Gopalan

Millets	Protein (gm)	Fat (gm)	Dietary Fibre (gm)	Iron (mg)	Calcium (mg)
Sorghum (Jowar)	10.00	1.70	10.20	3.95	27.60
Foxtail millet (Korra)	12.30	4.30	……	2.80	31.00
Pearl millet (Bajra)	11.00	5.40	11.50	8.00	42.00
Proso millet (Variga)	12.50	1.10	…..	0.80	14.00
Finger millet (Ragi)	7.20	1.90	11.20	4.62	364
Barnyard millet (Jhingora)	6.20	4.40	…….	5.00	20.00
Little millet (Sama)	10.40	3.90	7.70	1.26	16.06
Kodo millet (varagu)	8.90	2.60	6.40	2.34	15.27

The table 1 above illustrates the amount of nutrients included in various types of millets. Major nutrients like protein, fat, fiber, iron, and calcium are included.

Types of Millets

Sorghum: One of the oldest cereal grains, sorghum is a major crop in both India and Africa. For those who have celiac disease or gluten intolerance, it is regarded as a safe grain substitute. Sorghum grain is absolutely free of gluten, according to molecular research, and has health advantages that make it a beneficial complement to any diet. Researchers have discovered that a normal sorghum wax is high in policosanols, which lower cholesterol levels. It is also greatly liked by those who cannot accept items made from wheat because it is a gluten-free grain *(O.S.K.Reddy, 2017).*

Foxtail millet: While not interfering with the body's metabolism, foxtail millet aids in the constant release of glucose. Due to its high magnesium content, foxtail millet is also referred to as a healthy heart food and its consumption lowers the prevalence of diabetes *(O.S.K. Reddy, 2017).*

Pearl millet: Magnesium, which is present in pearl millet, aids in easing asthmatic patients' respiratory issues and lessens the effects of migraines. The fibre in pearl millet contributes to a decrease in the occurrence of gall stones. Gall stones are caused by an excess of bile in the body, which is reduced by the insoluble fibre found in pearl millet

(Shweta, 2015).

Proso millet: Niacin, a form of Vitamin B3, is what causes the Pellagra illness, which proso millet is helpful in treating. Niacin concentration is high in proso millet. Pellagra is a skin condition that results in dry, scaly, and rough skin. Niacin (Vitamin B3) and protein are both found in proso millet. It is traditionally used as a restorative dish, particularly after childbirth or illness *(O.S.K.Reddy, 2017).*

Finger Millet: One of the most nutrient-dense grains, finger millet is a wonderful source of natural calcium that strengthens bones and lowers the incidence of bone fractures.It also has a lot of naturally occurring iron, which helps with anaemia. Rice or wheat can be substituted with finger millet, which is regarded as a healthy, nutritious food. It is regarded as a nutritional powerhouse that is rich in proteins, amino acids, minerals, and vitamins *(O.S.K.Reddy, 2017).*

Little Millet: Despite its diminutive size, small millet is not less nutrient-dense than other grains. It is a good source of minerals like calcium, iron, zinc, and potassium as well as B vitamins. Additionally, it gives the body necessary lipids that aid in weight loss. Another benefit is that it has a high fibre content, which makes it the perfect substitute for rice in pongal or even kheer *(O.S.K. Reddy, 2017).*

Kodo millet: Kodo millet is traditional food which closely resembles the rice and helps to use in weight loss. It is easily digestible and is rich in phytochemicals and antioxidants which helps in preventing different lifestyle related diseases. Kodo millet also helps in reducing the joints and knee pain and helps in regularizing the menstruation in woman *(Deshpande et al., 2015).*

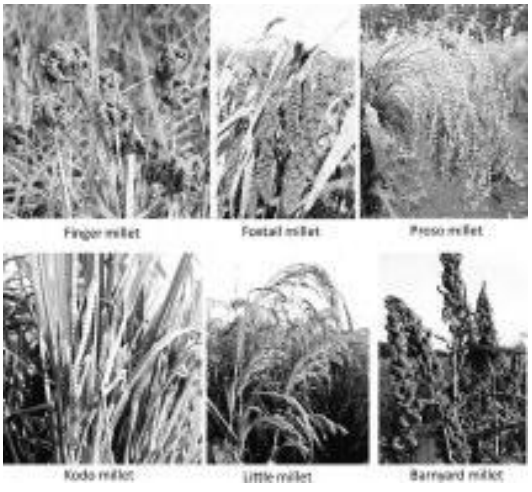

Figure 2 – Different types of Millets

Source: International Crops Research Institute for Semi Arid Tropics

Diabetes Vs. Millets

Millets have a layer of bran and germ, just like whole grains. Because their layer hasn't been stripped to create refined flour, it is a whole grain that takes longer to digest and thus releases sugar into the blood slowly *(Murtaugh MA and Jacobs DR, 2007).* Millets aid in regulating blood sugar levels and avert post-meal increases. According to a recent study, type 2 diabetics who consume foxtail millet have extraordinary health advantages. Foxtail millets reduced cholesterol, triglyceride, blood sugar, and insulin levels. Diabetes can be controlled by nutritionally balancing meals to help keep blood sugar levels stable, without sacrificing your favourite foods. Millets provide a lot of protein, which improves insulin sensitivity. Millets are now diabetes-friendly as a result. Regularly eating meals made with millet has long-term benefits as well. Complex carbohydrates found in millets provide satiety, and the steady release of sugar keeps you satisfied for a longer period of time, aiding in weight loss as well *(O.S.K.Reddy, 2017).*

Throughout the world, millions of individuals suffer from diabetes. Millets are crucial in reducing the risk of diabetes type-2 because they contain a lot of magnesium, which boosts the effectiveness of glucose and insulin receptors by causing the production of several enzymes that break down carbohydrates. According to research, millets lower levels of á-glycosidase and pancreatic amylase, which reduces the breakdown of different carbohydrates by the enzymatic processes and lowers postprandial glucose levels.

According to reports, consistent ingestion of millets and wheat flour in the proportions of 30:70 lowered a diabetic person's blood sugar level.

Millets may have anti-diabetic properties and a low glycemic index that can help lower postprandial blood glucose levels and glycosylated hemoglobin. The presence of phenolic compounds in millet is known for inhibiting pancreatic amylase and glucosidase, two enzymes that are known to lower glucose levels by reducing the rate of carbohydrate hydrolysis by various enzymes. Aldose reductase, an enzyme, assists in reducing the buildup of sorbitol, which further lowers the incidence of cataracts brought on by diabetes.

People who ate millet reportedly had a decrease in diabetes. By limiting the enzymatic digestion of carbs, phenolic chemicals found in millets often deactivate pancreatic amylase, alpha-glucosidase, and decrease hyperglycemia. Whenever given finger millets as the diet for a duration of forty days, diabetic animals are reportedly able to manage their glucose levels and enhance their antioxidant status. If included in the diet regularly, millets have several health advantages and aid in the management of diseases including hyper lipidemia, diabetes mellitus, and obesity *(Rajasekaran NS, et al., 2004).*

Why Millet Is A Good Option For Diabetes

Millets have a layer of bran and germ, just like whole grains. Because their layer hasn't been stripped to create refined flour, it is a whole grain that takes longer to digest and thus releases sugar into the blood slowly. Millets aid in regulating blood sugar levels and avert post-meal increases. According to a recent study, type 2 diabetics who consume foxtail millet have extraordinary health advantages. Foxtail millets reduced cholesterol, triglyceride, blood sugar, and insulin levels. Diabetes can be controlled by nutritionally balancing meals to help keep blood sugar levels stable, without sacrificing your favourite foods. Millets provide a lot of protein, which improves insulin sensitivity. Millets are now diabetes-friendly as a result. Regularly eating meals made with millet has long-term benefits as well. Complex carbohydrates found in millets provide satiety, and the steady release of sugar keeps you satisfied for a longer period of time, aiding in weight loss as well.

There are Best five millets for diabetes *Foxtail millet* according to a recent study, persons with type 2 diabetes who followed a special diet that included foxtail millet had lower triglyceride and blood sugar levels. Blood sugar levels are raised gradually by *finger millet*. It has a low GI and is high in fibre. Its ability to block alpha-amylases aids in lowering the body's ability to digest and absorb starch. Meals made from *barnyard millet* have a positive impact on serum cholesterol and blood glucose levels. *Pearl Millet* (Ragi), a high-fiber grain that digests slowly and lowers blood sugar levels more gradually than rice and other grains, is known to boost insulin sensitivity, decrease triglycerides, and help control diabetes.

Easy millet dish suitable for diabetic persons -

Ingredients:

1. Foxtail millet, 1 cup
2. Half cup split moong dal
3. 1 to 2 green chilies
4. 1 finely chopped bell pepper
5. 1 finely sliced bell onion
6. 1 finely chopped carrot
7. Beans 1/2 cup
8. Semi boiled green peas 1 cup
9. 1 tsp. of cumin and pepper seeds

10. A curry leaves
11. Coconut oil, 1 teaspoon
12. Salt to taste
13. Flakes of coconut as a garnish

Procedure for Preparation

1. Pressure cook millet and dal after 15 minutes of soaking.
2. Heat some oil in a frying pan, add the cumin seeds, then add the vegetables and cook while stirring. Keep the veggies crunchy and avoid overcooking them to give the upma more texture.
3. Add dal and foxtail mixture after the vegetables have been cooked. Salt, pepper, and the green chilli are added.
4. Mix thoroughly, then top with some pomegranate seeds and coconut flakes.

Try this recipe; it's low in sugar, high in fibre, packed with vitamins, minerals, and antioxidants, keeps you full for longer, and is diabetes-friendly. The best grain for people with diabetes is millet and includes it frequently in meals each day will help keep diabetes under control. Formerly known as "Poor man's grain," millets are now referred to as "Nutri-Cereals."

Conclusion

In underdeveloped nations, the majority of millets are historically used as food. Previous research has demonstrated the health benefits and nutritional value of millet, as well as the link between frequent consumption and a lower risk of chronic diseases like diabetes. Despite the fact that millets are used to cook food, their consumption is still very low in developed nations.

With lifestyle disorders diseases, like diabetes, PCOS, insulin resistance, thyroid, and Hashimoto the major thing to keep in mind are diet and physical activity, along with mental and cognitive aspects. Having a holistic approach towards a healthy lifestyle is a must. Millets help manage these diseases well. For example, the most common lifestyle disorder these days is diabetes. Studies show that millets are the right choice for diabetic people, as they have a low glycemic index (GI), so they release blood sugar slowly. It's high in fiber and helps in weight loss and lowers cholesterol too. Diabetic patients are encouraged to include millets in their diet.

The body needs a variety of nutritious nutrients, which millets are a good source of. It has vitamin B, which aids in the breakdown of fats and carbohydrates. Millets'

high fibre content aids in both weight management and reducing overeating .People are experiencing numerous health issues as a result of fiber-free foods. Millets can be used for breakfast, lunch, and dinner to treat a variety of ailments that are brought on by a particular lifestyle. As a result of inadequate food intake, the world is experiencing a significant number of health issues, so people need to be made aware of appropriate dietary intake. Millets needed to be promoted in relation to their use because they may be used to prepare nutritious dishes. Millets should be a regular part of our diet if we want to improve both the health of developing and developed nations' citizens.

References:

1. Bouis HE, (2000). Enrichment of food staples through plant breeding: A new strategy for fighting micronutrient malnutrition, Nutrition, 16, 701- 4.
2. Chandra D, Chandra S, Sharma AK, (2016). Review of finger millet: A powerhouse of health benefiting nutrients, Food Science & Human Wellness, 5,149-155.
3. Longvah T, Ananthan R, Bhaskarachary K, Venkaiah K, (2017). Indian Food Composition Table, National institute of Nutrition, 39-574.
4. Murtaugh MA, Jacobs DR, (2007). Epidemiological support for the protection of whole grains against diabetes, Proc Nutr Soc, 62, 143-149.
5. Rajasekaran NS, Nithya M, Rose C, Chandra TS, (2004). The effect of finger millet feeding on the early responses during the process of wound healing in diabetic rats, Biochimica et Biophysica Acta, 1689, 190-201
6. Ravindran G, (1992). Seed proteins of millets: amino acid composition, proteinase inhibitors and in vitro digestibility, Food Chemistry, 44 (1), 13-17.
7. Reddy OSK, (2017). Smart millet and human health, Green Universe Environmental Services Society.
8. Singh P, Raghuvanshi RS, 2012. Finger millet for food and nutrition security, African Journal of Food Science, 6, 77-84.
9. Shweta Malik, (2015) PEARL Millet-Nutritional Value And Medicinal Uses (Food & Nutrition) Dept. of Home Science, B.P.SWomen's University KhanpurKalan (Hry) www.ijariie.com, Vol-1 Issue-3
10. S.S. Deshpande, D. Mohapatra, M.K. Tripathi and R.H. Sadvatha (2015) Kodo Millet-Nutritional Value and Utilization in Indian Foods, ICAR-Central Institute of Agricultural Engineering, Journal of Grain Processing and Storage , Vol 2: 16-23.
11. Upadhyaya HD, Gowda CLL, Reddy VG (2007), Morphological diversity in finger millet germplasm introduced from Southern and Eastern Africa, The Journal of Semi-Arid Tropical Agricultural Research. 3: 1-3.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 253-258

Influence of Diet on Depression and Well-being

Prachi Joglekar*

Abstract: The aim of this study was to assess the influence of a healthy diet on depression and well-being. With the help of purposive sampling, the data of individuals (n=62) was collected. These individuals belonged to the age group of 16 to 24 years. The tools used in this research were Beck's Depression Inventory, Ryff's Psychological Well-being Scales and a personalized Diet Checklist which included a few basic questions related to the individual's diet and eating patterns. It was observed that those having a healthy diet scored high on overall well-being and low on depression.

Keywords: Healthy diet, depression, well-being.

Introduction

Present study was an attempt to assess the relationship between a healthy diet and depression and well-being. The study takes into consideration the diet and eating patterns of individuals and correlates it with depression and overall well-being.

A healthy diet is one in which macronutrients (i.e., carbohydrates, proteins and fats) are consumed in appropriate proportions to support energetic and physiologic needs without excess intake while also providing sufficient micronutrients (i.e., vitamins and minerals) and hydration to meet the physiologic needs of the body.[3] A 'healthy' diet was broadly defined as positive eating behaviors and consumption of fruits and vegetables, health-promoting behaviors and avoiding 'unhealthy' food.[8] The WHO guidelines for a healthy diet for adults suggests that one must consume fruits, vegetables, legumes, nuts and whole grains every day, and eat at least five portions of fruit and vegetables a day. They must limit total energy intake from free sugars and from fats, and to limit salt consumption.[14] Previous research states that "Multivariate adjusted regression analysis demonstrated that the risk of depression was significantly positively associated with the consumption of instant and processed foods and negatively associated with the intake of green vegetables and 1 to 3 servings/day of fruits, after adjusting for

*Department of Psychology, Modern College of Arts, Science and Commerce, Pune, Maharashtra

energy intake and menstrual regularity. Additionally, depression was negatively associated with intake of fiber, â-carotene, vitamin B6, vitamin E, vitamin C, potassium, zinc, folate, iron, and copper after adjusting for confounding variables".[9]

Depressive disorders are characterized by depressive mood (e.g., sad, irritable, empty) or loss of pleasure accompanied by other cognitive, behavioral, or neurovegetative symptoms that significantly affect the individual's ability to function.[13] Depression, also known as major depressive disorder or clinical depression, is a common and serious mood disorder. Those who suffer from depression experience persistent feelings of sadness and hopelessness and lose interest in activities they once enjoyed. Aside from the emotional problems, individuals can also present with a physical symptom such as digestive issues.[12] The DSM-V states that major depressive disorder may be characterized by decrease or increase in appetite.[1] It is, therefore, evident that depression affects one's diet. It only leads us to think whether the same is true the way round, i.e., whether diet affects depression. Studies from the UK and Spain have linked depression to poor dietary patterns in older populations. A study comparing the effect of consuming a diet with a high intake of whole foods v. processed foods found that individuals consuming a diet high in processed foods had greater odds of depression at the end of the study.[10]

The term 'psychological well-being' encompasses one's mental health and overall functioning. It is the combination of feeling good and functioning effectively.[7] It does not simply signify the presence of positive emotions, but also the absence of negative emotions. Several papers have been published on the important topic of what determines people's subjective well-being and psychological health. Little is known, however, about the potential inûuence of the different kinds of foods that people eat.[2]

The present study tries to explore the relationship between the aforementioned terms and aims at studying the influence of diet on depression and well-being.

Method

A sample of 62 participants between the ages of 16 to 24 years was obtained for this research by the method of purposive sampling. Three scales were used during this research, one for each of the considered variables.

1. A 24-item, self-made checklist was used to measure the independent variable.
2. Beck's Depression Inventory by Aaron Beck.
3. Ryff's Psychological Well-being Scales by Carol Ryff which consisted of 6 dimensions (autonomy, environmental mastery, personal growth, positive relations, purpose in life, self-acceptance). For the purposes of this research, a total score

for psychological well-being was considered instead of individual scores for each dimension.

Results

Table 1: Mean and standard deviation for Diet, Depression and Well-being for the total sample (n=62).

Variable	Mean	Std. Deviation	N
Diet	87.74	7.596	62
Depression	9.44	7.641	62
Psychological Wellbeing	183.77	30.608	62

Table 2: Correlation between variables.

Variables	Type of Correlations	Wellbeing	Depression	Diet
Wellbeing	Pearson Correlation	1	-.716**	.385**
Depression	Pearson Correlation	-.716**	1	-.315*
Diet	Pearson Correlation	.385**	-.315*	1
	N	62	62	62

** Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).

* Correlation is significant at the 0.05 level (2-tailed).

The first hypothesis stating, "There will be a positive correlation between individuals with healthy diet in relation to psychological well-being" was supported. Positive correlation was found between healthy diet and psychological well-being at 0.01 level of significance.

The second hypothesis stating, "There will be a negative correlation between individuals with a healthy diet in relation to depression" was supported. Negative correlation was found between healthy diet and depression at 0.05 level of significance.

Additionally, it was observed that negative correlation was found between depression and psychological well-being at 0.01 level of significance.

Discussion

The aim of this study was to assess the influence of a healthy diet on depression and well-being. The results obtained were as hypothesized.

According to the results obtained, it was observed that there was negative correlation at 0.05 level of significance between diet and depression. As previous studies suggested, "the frequency of junk food consumption was significantly associated with

psychiatric distress".[15] Research also states that "consuming a poor diet in adolescence can contribute towards poor mental wellbeing".[4]

According to the results obtained, it was also observed that there was positive correlation at 0.01 level of significance between diet and psychological well-being. This result is consistent with previous studies that suggested that "the linear association with positive perceived health and happiness were stronger in fruit and vegetable consumption".[6] "It is possible that due to the consumption of fruits and vegetables, being rich in antioxidants, folic acid and anti-inflammatory components, human optimism or happiness is enhanced and the development of negative mood or depression symptoms decreased".[6]

The associations between consuming 'unhealthy' foods and higher depressive symptoms and perceived stress among male and female students as well as the associations between consuming 'healthy' foods and lower depressive symptoms and perceived stress among male and female students in three UK countries suggest that interventions to reduce depressive symptoms and stress among students could also result in the consumption of healthier foods and/or vice versa.[5]

Psychological well-being is a core feature of mental health, and may be defined as including hedonic (enjoyment, pleasure) and eudemonic (meaning, fulfillment) happiness, as well as resilience (coping, emotion regulation, healthy problem solving).[11] On the other hand, the common feature of all depressive disorders is the presence of sad, empty, or irritable mood, accompanied by somatic and cognitive changes that significantly affect the individual's capacity to function.[4] Psychological well-being and depression define entirely opposite states of mind which was also verified in this research as negative correlation at 0.01 level significance was observed between the two variables.

Conclusion

In conclusion, a healthy diet negatively affects depression and positively affects well-being, hence proving the hypothesis true.

Implications of the study

The results of the present study have implications in health psychology, clinical psychology and positive psychology. The study can help to plan depression prevention strategies. Additionally, it can also aid nutritionists and pediatricians to provide diet plans that help improve psychological well-being.

Limitations of the present study:

- The study was conducted on a small geographical area, with a small sample (n=62), using purposive sampling method. Hence, the results cannot be generalized.
- The diet checklist which was used in the research was tailor made and therefore cannot be considered as reliable and/or valid. It also did not have pe-defined norms.
- As the method of data collection was through an online survey, the problem of identity of test-takers and honesty of responses arises.

Suggestions for future research study

- A study may be conducted with a larger sample covering a much wider geographical area, which may prove helpful for generalizing the results.
- Multiple dimensions of psychological well-being may be explored for a more detailed study.
- A questionnaire with tested reliability, validity and norms may be used for more accurate results.
- More diet-related concepts (types of diets, nutrition, eating habits, etc.) may be explored for inclusivity purposes.

References

1. American Psychiatric Association. (2013). Depressive Disorders. In *Diagnostic and statistical manual of mental disorders* (5th ed.). https://doi.org/10.1176/appi.books.9781585624836.jb04
2. Blanchflower, D. G., Oswald, A. J., & Stewart-Brown, S. (2013). Is psychological well-being linked to the consumption of fruit and vegetables?. *Social Indicators Research*, *114*, 785-801.
3. Cena, H., & Calder, P. C. (2020). Defining a healthy diet: evidence for the role of contemporary dietary patterns in health and disease. *Nutrients*, *12*(2), 334.
4. Davison, J., Stewart-Knox, B., Connolly, P., Lloyd, K., Dunne, L., & Bunting, B. (2021). Exploring the association between mental wellbeing, health-related quality of life, family affluence and food choice in adolescents. *Appetite*, *158*, 105020.
5. El Ansari, W., Adetunji, H., & Oskrochi, R. (2014). Food and mental health: relationship between food and perceived stress and depressive symptoms among university students in the United Kingdom. *Central European journal of public health*, *22*(2), 90-97.
6. Hong, S. A., & Peltzer, K. (2017). Dietary behaviour, psychological well-being and mental distress among adolescents in Korea. *Child and Adolescent Psychiatry and Mental Health*, *11*(1), 1-12.
7. Huppert, F. A. (2009). Psychological well being: Evidence regarding its causes and consequences. *Applied psychology: health and well being*, *1*(2), 137-164.
8. Khalid, S., Williams, C. M., & Reynolds, S. A. (2016). Is there an association between diet and depression in children and adolescents? A systematic review. *British journal of nutrition*, *116*(12), 2097-2108.
9. Kim, T. H., Choi, J. Y., Lee, H. H., & Park, Y. (2015). Associations between dietary pattern and depression in Korean adolescent girls. *Journal of pediatric and adolescent gynecology*, *28*(6), 533-537.

10. McMartin, S. E., Kuhle, S., Colman, I., Kirk, S. F., & Veugelers, P. J. (2012). Diet quality and mental health in subsequent years among Canadian youth. *Public health nutrition*, *15*(12), 2253-2258.

11. Tang, Y. Y., Tang, R., & Gross, J. J. (2019). Promoting psychological well-being through an evidence-based mindfulness training program. *Frontiers in human neuroscience*, *13*, 237.

12. Truschel, J. (2020). Depression definition and DSM-5 diagnostic criteria. *URL: https://www. psycom. net/depression-definition-dsm-5-diagnostic-criteria/[accessed 2021-12-08]*.

13. World Health Organization. (2018). *The ICD-10 classification of mental and behavioural disorders: Diagnostic criteria for research.*

14. World Health Organization. (2020, April 29). Healthy diet.

15. Zahedi, H., Kelishadi, R., Heshmat, R., Motlagh, M. E., Ranjbar, S. H., Ardalan, G., ... & Qorbani, M. (2014). Association between junk food consumption and mental health in a national sample of Iranian children and adolescents: the CASPIAN-IV study. *Nutrition*, *30*(11-12), 1391-1397.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 259-263

Zen and its influence on Japanese Culture

Dr. Ravi Medhankar*

Abstract: This research paper delves into the profound and enduring influence of Zen Buddhism on various facents of Japanese culture. Zen, a unique form of Buddhism emphasizing meditation, mindfullness and direct experiential understanding arrived in Japan. Role of satori in Zen, the role of TEA in Japanese culture and Japanese calligraphy have been discussed in present paper. In this regard, Zen Calligraphy as desciplined meditation was described systematically. This paper also express Zen philosophy and Zen aesthetics hold a unique position in history of world culture.

Keywords: Calligraphy, Mindfulness, Meditation, Satori

As a student of Zen meditation this is difficult to define "Zen". This solely depends on its own practices. One most famous story is related to the Zen that a disciple ask to the Zen Master that how deep is the river. The disciple gets a push and the teacher says please find it yourself. The similar stories are in Zen sayings in the collections named as Koan.

This is now a widely accepted fact by the scholars of Buddhism that the Zen is one of the practices of meditation which was taught by Bodhi Dhamma a Buddhist monk from South India. He offered the technique to his Chinese followers popularly known in Dhyana in the Indian language. This Dhyana word got its Chinese translated form as Chang and when this Chang came to Japan and the followers give this practice a name, well known as Zen. Zen has been painted as a unique school of spiritual development which covers a number of fields namely philosophy, psychology, ethics and its own technology to get enlightenment, all of sudden. Calligraphy is one of the popular practice in Japan. Whenever, you step in in a Japanese house you will find the wall with scroll paintings. In these paintings, Bodhidharma, the great teacher is the one of the main subjects of paintings or drawings. Almost Zen masters of the all ages took this as their topic of paintings and drawings (p64).

*International President, World Buddhist Mission, Japan

An English teacher and the follower of the Zen teachings, Prof. D.T. Suzuki, who left this mortal world in Tokyo in 1996 at the age of 95, have contributed around 100 works on Zen.

On the basis of his biographical account we come to know that he was trained as a Buddhist disciple in the great Zen monastery located in Kamakura. As a translator and an editor he enjoyed his work in the United States of America from 1897 to 1908.Later on he was able to serve at Tokyo Imperial University as a faculty member.

Beatrice Erskinelane comes as a wife in his life in 1911 and helps him to establish and create at Kyoto, a center for the publication of The Eastern Buddhist, the journal in English language. As we know, in 1950, at the age of 80 he returns to united states and spent most of his time in teaching, lecturing, writing at the renowned centers like Colombia, Harvard, the University of Mexico.

Zen continued to have its impact not only in Japanese society but this can be seen in the 20th century American literature, too. The founders of Beat writings took a pilgrimage to the birth place of Buddhism, India, in order to explore and get deep knowledge of the Buddhism, in its country of origin.

Samurai and Zen. Samurai a warrior class well known in Japanese society for its nature of fighting and has been compared with the warrior class of Indian society, known as khastiryas of Indian caste based society, where we have Brahamins, Chatriyas, Vaishyas and Sudras. This military class of Japan have also Zen connection.

According to Japanese records, E Isai was a well known Japanese priest (1141-1214) (p62) has been given the credit to introduce Zen in Japan. His seat was at Kyoto, older school of Buddhism. The activities of Zen was restricted to Kyoto, since Kyoto was the Head quarters of older school of Buddhism.

According to Japanese sayings: the Buddhism was divided in to different sects and subsects in Japan and believed that the Tendai sect was followed by the Royal families, Shingon sect by Nobility, Zen for the warrior classes and Jodo sect for masses (p63). Each sect of Buddhism has played its own role in the Japanese life and culture. In the beginning Zen has to face the natural and strong opposition of Tendai and Shingon. This was the time, Kamakura was ruled by a family known as Hojo family, so there was no difficult situation for Zen to be accepted,in this region. Since Zen was a new concept. This is quite a natural phenomena, when a new concepts not get its followers easily and accepted by a wide range of people. Similarly, is the case of the brides as they are not accepted easily as a family member, in almost cases of Japanese and traditional Indian families, by their mother in laws, when she enters as a new member of the family. The historical record shows that the Hojo regime was militaristic, as it succeeded the

Minamoto family, who rose against the Tiara family and the court nobles. The latter lost their grips due to their over culture. The directing heads of such a strong governing machine embraced Zen as the spiritual guide, neglecting traditional religions. So far the ritualistic is concerned Tendai and Shingon, are rich in performance, as their ceremonies are performed in most elaborated and pompous style. While, the Jodo performances are simple and natural.

Dr. Suzuki in his work "Essays in Zen Buddhism" covers the Koan, a secret message of Bodhi dhamma, and passivity in Buddhist life. In the second series of this of this book which is forwarded by Christmas Humphreus, published by Otani University, Kyoto and Rider and Company, London (2007) Studies in Zen living/living by Zen.

Spirit of Zen by Allen Watts; Murray, Zen Buddhism by Christmas Humphrey (Heinemann)

In editors forward (p11), "Essays in Zen Buddhism" pictures the Dr. Suzuki in the following words: "Dr. Suzuki writes with Authority, not only has he studied original works in Sanskrit ,Pali, Chinese and Japanese but he has an update knowledge of western thought in German and French as well as in English , which he speaks and writes so fluently. He is more over , more than a scholar; he is Buddhist. He is honored in every temple in Japan, for his knowledge of spiritual things, as all who have sat at his feet bear witness, is direct and profound (p.11)

There are a number of divisions in Zen too. Rizai sect, Soto sect, Obaku sect are the sects found in Japan, and soto and Rinzai are dominating among them.

Roshi Dogen has been credited as the founder of soto zen, which is known for its flexibility and openness. And focuses on meditation.

Rinzai gives importance to Koan studies and kensho.(prajna)

Practice of Shodo in Japanese culture.

Akiba Roshi

Former Superintendent General,

Soto sect of Zen North America International missionary. Shodo is a proof of the Zen in practice. According to Akiba Roshi he lived in the Kamakura while he was in his young age. Since 1185 to 1333 is well known historical Kamakura period. During this period; a number of Zen temples were established and Kamakura is well known as the home of a number of temples manly temples of Rinzai sect of Zen. Roshi lived in the vanicity of Kenchoji, Engokuji, and many other famous Zen temples.

Zen and Koan. D.T. Suzuki in his work the Essays in the Zen Buddhism,*2nd

edition, forwarded by Christians Humphreys; Rider and Company ,London points out that the Japanese word Koan is a transliterated form of the Chinese Kung-an. The Kung-an is a kind of the public documents. The Japanese society has accepted that there are 1700 Koans to be solved by the Zen students before they are qualified as a master(p.18)

Role of satori in Zen.

The word enlightenment is near to the Japanese word Satori.The whole of the Zen is Satori. The beginning of the Zen is Satory and the end is also Satory. In other words, Zen is Satory and Satory is Zen. Satory is not a state of the quietude. The teaching of non duality is the the chief characteristics of Satori. According to Japanese accounts, Daiye* (Tai-Hui) was the great advocate of Satori who recommended "Zen has no word, when you have Satori, you have everything. This is not tranquilization, it is an inner experience, which has noetic quality. This is stated that there must be a certain field of awakening from the relative field of consciousness; a certain turning away from the ordinary form of experience, which characterizes our everyday life. D.T. Suzuki continues with the work Studies in Lankavatara sutra (page184). He also refers Satory as the awakening as mentioned in prjnaparmita. However, some masters considers this as artificially set up thing (p25) E.Z.B. and Ed. According to them the Zen has nothing to do with with such an excrescent growth as would injure, its natural wholesomeness.

ZEN and the role of TEA in Japanese culture

Tea is widely taken as a herbal product to reduce intoxication which has medicinal value and it is common practice in India, Japan, China, Vietnam and other countries to offer a guest at least a cup of tea in their honor. We will now observe, how the tea is most intimately related to Zen. One thing is common in Zen practices and tea ceremony that is constant attempt at simplification. The ceremony of tea is the feeling where one can minutely observe the elements of harmony, reverence, purity, and tranquility.

This refers to mindfulness action in preparing the tea for a traditional Japanese tea ceremony. The idea behind this to lead to the awakening of spirit by performing such simple and mannered actions such as preparing, serving, drinking, in a ritualistic way with the respect for server and acceptor. Philosophy of Zen such as mindfulness, transience, acceptance etc. is clearly visible in its harmony among the person who is serving the tea after preparation and who is accepting the tea. Not only this one has to follow how to return the tea bowl after finishing the tea, how to receive back the bowl by the serving person. This shows the elements of harmony, respect and tranquility. There are certain steps to be taken so one must not think of other steps, What is in

present just have to consider. This gives you inner peace. Even the use of green tea known matcha in Japanese is good to keep one far from sleeping. Almost Zen temples have tea ceremony rooms. The temple Shogenji Okayama city also have a tea ceremony rooms where tea are served with some times Japanese sweet dishes or cookies too. This covers the Zen principles such as transience, presence of mind and body, selfishness, take the life as it is.

Zen and Calligraphy:

Japanese calligraphy is known as Shodo. The art of calligraphy needs a brush and a charcoal in in order to write or paint what is in your mind at that very time. The thought of mind can be expressed on a piece of paper or wooden piece or fabrics of different materials. This is no other than a way to concentrate mind (mindfulness). Gautam the Buddha, in the 6th century B.C. explains that mind is forerunner and its difficult to control the mind. As we see in the very first stanza of the Buddhist text Dhammapada "Mano pubbangama dhamma…" So creating a painting with such a spirit shows the staus of the mind of the painter. Here also there are steps similar to tea ceremony, how to hold the brush, how to write and how to take back the brush after finishing the word or subject matter. In Zen calligraphy we see the disciplined meditation. In Zen chanting we express Mu, mugen,…this represent nothingness or emptiness. Gesshu Soko (1618-1696) has been credited for the development of calligraphic character for emptiness or nothingness. Mu is also considered to a mind that is occupied by a number of emotions and thoughts. In other words calligraphy helps in cultivating mind to prepare for Enlightenment.

Bokki the spirit of the Brush.in the forward of Shodo, the Quiet art of Japanese Zen calligraphy (learn the wisdom of Zen through traditional brush painting (Tuttle. Co.jp Sojo Sato, forwarded by Gengo Akiba Roshi Assistant to the Author,, alice Agura Sato calligrapher Shinya Fujiwara, writes:

Zen philosophy and Zen aesthetics hold a unique position in the history of world culture. Today, across the United States, Zen Buddhism has been widely adopted (p8)

References

- Zen and Japanese culture, 1st Tuttle ed.Daisetz t. Suzuki. CharlesE Tuttle Company; 1988
- Zen and American transcendentalism Hokuseido Press;1970.
- Essays in Zen Buddhism; D.T. Suzuki with twenty five reproduction of old Masters; Rider 1980
- Studies in Lankavatara sutras ist Indian Edition by D.T. Suzuki, Motilal Banarsidas; 1999.
- The Zen Forest Sayings of the Masters; translated, with an introduction by Soiku Shigemats.forwarded by Gary Snyder,Weatherhill New York, 1981
- Bukkyo Daijiten, 3 vols. Ed. Hajime Nakamura Tokyo, Shoseki, 1975.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 264-268

Impact of Deprivation on Academic Achievement of Tribal school students in Dumka District of Jharkhand

Dr. Vinod Kumar Sharma*

Abstract: In the changing scenario the matter of adjustment and deprivation have been a big concerned for all of us. Researchers have rightly pointed out that the problem of adjustment is a vital problem of the modern world. So, it is need of time to ensure a better strategy to live a normal and harmonious life in the society. Caste, class, gender, religion etc. has a significant impact on our behavior we expose time to time in the given situation. The Present study aims to study the impact of deprivation and academic achievement. By applying deprivation and achievement scale on 100 tribal male and female students. The findings suggest that there is no significant difference between the male and female school tribal students neither achievement motivation nor deprivation.

Keywords: Academic achievement, Deprivation, College students.

Introduction :

The concept of achievement motivation is most closely associated with the names of John Atkinson, David McClelland, and their colleagues (1953). Atkinson and McClelland adopted the concept of the need or motive to achieve from the personality theorist, Henry Murray. This need, whose intensity or strength was postulated to vary from one individual to the next, was described by Murray as "the desire or tendency to do things as rapidly and/or as well as possible to accomplish something difficult. To overcome obstacles and attain a high standard to rival and surpass other." (1938, pg. 164). This conception basically postulates a single achievement motive that is both intrinsic in nature and trans situational in its effects, i.e., the desire to achieve performance excellence for its own sake, without reference to particular types of tasks. Murray, in the psychoanalytic tradition conceived of needs as unconscious, and devised the Thematic Apperception Test (TAT) as a projective technique to measure these needs, among them

*Assistant Professor, Department of Psychology, Sido Kanhu Murmu University, Dumka
Email- vinodshamrmacs257@gmail.com

the need to achieve. Atkinson, McClelland and their colleagues borrowed this measurement technique, as well as Murray's theoretical conception of the motive to achieve.

In contemporary as well as in past research, the emphasis has almost exclusively been on vocational and academic achievements. There are, of course, good pragmatic reasons for this preference. However, it should be noted that the achievement motive, as originally conceptualized by Murray and accepted by those working in the Atkinson-McClelland tradition, is a general construct which does not specify the type of activity in which the motive is expressed.

A related issue has been raised by Maehr (1974), who suggested that the motive to achieve may be expressed in different ways in different cultures. As he put it, "achievement and achievement motivation must be understood in terms of the sociocultural context in which they are found, as well as in terms of generalized descriptions of achieving norms or abstract constructions of psychological processes. (1974, p. 894).

Achievement Motivation:

The non-academic goals (to know more about pupils) of education changed the perspective of educators and social scientists to look into the non-intellectual factors as deterring agent of achievement motivation. Studies have increasingly revealed that is some relationship between the social class and n-Ach. It is the way of the subtle and invisible processes of socialization that the children develop in varying degrees, the n-Ach from their parents. This differs from society to society. For example, the Japanese mothers strongly motivate their children for the accomplishment of goals than what the Brazilian mothers do for their children. The different social classes by and large, differ with respect to this motivation. The middle-class children are often pressed by their parents for strong n-Ach by enforcing reward for their success show additional interest in their academic motivation, get high grades and position in schools. On the contrary, the lower-class children are not shown motivated by their parents for n-Ach, studies and performance. They feel in perusing difficulties academic goals, feel boring in school, and thus become problem' for their teachers.

The comprehensive meaning of n-Ach and its measures are given by David McClelland (1953), McClelland, Atkinson, Clark and Lowell (1953) through the clinical approach, that the human motives are freely expressed through fantasy and imagination. According to Atkinson (1957), achievement motive is a disposition to strive for success or the capacity to experience pleasure contingent upon success. Stagner (1965) defined, 'At a common-sense level, need achievement refers to behavior which shows effort to

accomplish something, to do one's best, to excel over others in performance. It is to be differentiated from exhibition (showing off without doing anything useful) and from dominance (desire to boss others around), although it is something difficult to decide in a specific act which level to apply. It involves a concern for competition with some standard of excellence, an interest in maintaining high quality of performance and desire to work with additional energy and persistence towards a goal. The standard of excellence, which is the central theme of achievement motive, may be task related e.g., degree of perfection as a comparison with one's own earlier achievements, or other related e.g., comparison with the achievement of other as a happens in competition.

Deprivation:

Deprivation is the consequence of a lack of income and other resources, which cumulatively can be seen as living in poverty. The relative deprivation approach to poverty examines the indicators of deprivation, which are then related back to income levels and resources. Direct measures of poverty that look at deprivation and living standards have a very long history, particularly in Britain. From Charles Booth (1902) and before, through to Seaholm Rowntree (1922) and Peter Townsend (1979) in the twentieth century, the living conditions of the poor have been investigated to establish those who live in poverty. Townsend (1979) explained deprivation as "individuals, families and groups in the population can be said to be in poverty when they lack the resources to obtain the types of diet, participate in the activities, and have the living conditions and amenities which are customary, or at least widely encouraged or approved, in the societies to which they belong. Their resources are so seriously below those commanded by the average individual or family that they are, in effect, excluded from ordinary patterns, customs and activities. As deprivation is common phenomenon which is being experienced by all the human beings irrespective of the caste, race, religion, or other categories made by the society to which they belong. The degree of deprivation varies in accordance with the person's internal resistance to the unfavorable circumstances, his intelligence and rationalizing tendency.

Socio-economic status is also claimed to be the most important factor in enhancing deprivation among human beings and most of the researches in India are based on the bad economic condition and its effects on the individual's mode of thinking, his cognition and above all his academic performance and achievement. So, adjustment is more or less determined by the level and degree of deprivation. Viewing this fact, the researcher tried to show the significant relationship of deprivation and adjustment upon the behavior exposed by the tribal and non-tribal college students in Santhal Pargana, Jharkhand.

Objective:

- To study the impact of deprivation on academic achievement of school going tribal students

Hypotheses:

- Tribal school students will significantly differ on achievement motivation.
- Tribal school students will differ significantly on deprivation level.

Methodology

Methods:

- **Sample:** Total sample taken for study comprises 100 school students. Half of the sample of tribal male students (50) and equally number of non-tribal girl's school students were taken randomly from the different Hindi Medium school of Dumka, district of Jharkhand. They were selected on random basis. The students include both classes of IX and X.

Tool:

- **Personal data sheet (PDS):** To gather personal information about the respondents' age, sex, education, caste, etc.
- **Deprivation Scale:** (Pal, Mishra et. al 2002): Deprivation includes 5 major areas namely – economic, education, emotional, parental & social.
- **Achievement scale:** To assess the academic achievement of the students, self structured academic achievement scale was used for the present study.

Result and Discussion

Table 1: Showing the Achievement Motivation of tribal boys' and girls' student of different Hindi Medium school of Dumka district.

Group	M	SD	t	P
Boys	11.96	7.47	0.19	NS
Girls	12.02	1.41		

NS= Not significant

Table-1 shows that there is no significant difference between the tribal male and female school students. The obtained t value is .19 which is not significant. The mean value of tribal school girl students is found to be high (i.e.,12.02) in compared to tribal boys' students. It suggests that the tribal female students are having more achievement

motivation than the male tribal school students.

Table 2: Showing the Deprivation Status of tribal boys' and girls' student of different Hindi medium school of Dumka, district.

Group	M	SD	t	P
Boys	78.1	6.26	0.85	NS
Girls	75.4	8.15		

NS= Not significant

Table-2 shows that there is no significant difference between the tribal male and female school students. The obtained t value is .85 which is not significant. The mean value of tribal school male students is found to be high (i.e.,78.1) in compared to tribal female students. It suggests that the tribal male students are more deprived than the female tribal school students.

Conclusion

As per findings there is no significant difference between the male and female school students neither achievement motivation nor deprivation. The present study does not prove the formulated hypotheses. However, on the basis of result findings and discussion it can be said that:

- Tribal female school students are having more achievement motivation than the male students.
- Tribal male students are more deprived than the female school students of Dumka district.

References:

- Atkinson, J.W. (ED.) (1958). Motives in fautasy action and society, princeton, n.j.; van nostrand.
- Atkinson, J.W. and Reitman,W.R. (1956): Performance as a Function of Motive strength and expectancy of goal attainment. J. of Abnor. and Soc. Psychol, 53, 361-366
- Charles, Booth, (1902). Life and Labour of the people in London, MacMillan.
- Maehr, M.L. (1974). Culture and Achievement motivation. American Psychologist, 29, 887-895.
- McClleiand, D.C. (1953): Measuring motivation in Fantasy. In D.C. McClleland (ed.) Studies in motivation N.Y. : Appletion.
- McClleiand, D.C., Atkinson, J., Clark, R. & Lowell, E., (1953). The Achievement Motive, New York. NY : Appleton Century Crafts.
- Murray, H.A. (1938). Explorations in Personality. Oxford University Press, New York.
- Pal, S.K., Misra, K.S. & Pandey, K. (2002). Deprivation Scale. Chandra Scientific Industries, New Delhi.
- Rowntree, B.S., (1922). Poverty : A study of town life, Langmanas.
- Townsend, P., (1979). Poverty in the United Kingdom, Allen Lane and Penguin Books.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 269-275

Songkran - The Rite of Spring Festival in Thailand

Dr. Subodh Kumar Mishra*

Abstract: Songkran is a vibrant and culturally significant Thai festival celebrating the New Year. Rooted in Thervada Buddhism, it symbolizes purification and renewal through playful water-splashing rituals. Beyond water festivities, Songkran envolves family reunions, temple visits and act of merit.

This paper explores the festival of history, cultural significance and modern manifestation, highlighting its role in preserving Thai Tradition.

Keywords: Brahmanic reckoning, Mah Songkran, Tradition, Songkran festival.

One of the greatest events of the year iin Thailand is the Songkran. This in an ancient northern custom. It is celebrated in the month of middle April every year and widely observed not only in Thailand but also in Burma, Cambodia and Laos. It is also the merriest one for the people and particularly for the country folk who still retain much of their traditional customs, dances, games and other pastimes.

Songkran is a Sanskrit word in Thai form which means the entry of the Sun into any sign of the Zodiac. But the Songkran in this particular instance falls when the Sun enters the sign of Aries or Ram. Its full name is Maha Songkran or Major Songkran to distinguish it from the other ones. But people call it simply Songkran for it is the only one they know and in which they take interest. It is their traditional New Year when they can enjoy their holidays to the full with no economic hindrance. This auspicious day is fixed by astrologers according to the position of the Sun in relation to the 12 segments of the heaven. Hence Songkran is a fixable feast on the solar calendar.[1] It begins on the 13th April and ends on the 15th April, but occasionally in certain years on the 16th April. It usually falls on April 13 when, according to Brahmanic reckoning the Sun leaves the sign of Pisces and enters that of Aries. It is considered the beginning of the New Year and thus, comes the name Songkran, which means movement or "the

*Assistant Professor, Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusar, Gorakhpur

passing of." The Songkran is in fact the celebration of the vernal equinox similar to the celebrations of Indian Holi festival, the Chinese Ching Ming and the Christian festival of Easter.

Songkran marked a change in the season of utmost importance to the cultivator — the end of the long day monsoon and the approximate beginning of the new rains. Not only man but nature was expectant, the deciduous trees on the dry slopes put out new leaves and scarlet blossoms in anticipation of the showers to come. At this time of the year, the farmers are in their off-season, waiting for the west ploughing season. There is time for joyous celebrations to greet the coming of the new year. So the Songkran festival is in a certain sense like April Fool's Day, when the maids of the village play pranks on any gallant who happens to pass by their way. He will be caught and bound by the united strength of maids and they will daub him with blacking.

The well known story as to the origin of the Songkran Festival is nested in this way.

Once upon a time there lived a rich man who had no son. His house was next door to that of a who had drunkard who had two sons. One day the drunkard went to his neighbour's house and insulted him for having no son and so his property would be wasted when he was dead. He said he was better off than the rich man since he had two sons.

Ashamed of that, the rich man prayed to the Sun and the Moon for an heir. Three years passed by and still no heir was granted. Hence one day when the Sun passed into the Zodiacal sign Aries, thee rich man led his entourage to a banyan tree where many birds noosted. He cooked some food which he offered to the tree. Taking pity on the man, the spirit of the banyan tree went to ask the god Indra to grant him an heir. A son was therefore given to the man and was named Thambarn. The rich man ordered a seven storeyed castle to be built for his child under the banyan tree. When the child grew up, he understood the language of the birds and his education was completed at the early age of seven and was since regarded as a child prodigy.[2]

One of the Gods of a higher heavenly realm— Kabil Maha Phrom was jealous of it and came down to ask Thambarn questions with a challenge that if Thambarn failed to give the right answers within seven days, he would lose his head but if he succeeded, the God promised him his head as offering. After six days had elapsed, Thambarn still could not find any answers. He stopped at the foot of a tall palmyra tree at the top of which a couple of eagles had built their next. By chance he heard the mother eagle conforting her eaglets who cried for more food, that they would be gratified soon by feasting on the body of the young man who would fail to solve the questions. She then

related the story of the wager between the God and Thambran, and in answer to her children's question the mother eagle satisfied them with the right answers to those three questions. Thambarn, who was lying under the tree availed himself of this inforation and on the appointed day he gave the three right answers. Consequently, the God lost the bet and cut off his own head. His head was a terrible one, for if it touched the earth, there would be a universal conflagration and if it fell into the sea, the sea would dry up with the intense heat; the God's head, therefore, was deposited in a certain cave in the heavens. Every new year, that is, on Songkan day, one of the God's seven daughters in turn will carry her father's head in procession with millions of other Gods and Goddesses circumbulating like the Sun round Meru, the Buddhist Olympian mount. After that there were feasts among the celestial beings who enjoyed themselves with drink made from the juice of the chamunad creeper. The God's head was taken back to the cave after the feast, to be taken out again on Songkran day the next year and each year another daughter took her turn in carrying the God's head tound mount Sumeru and the Songkran season.

The seven daughters of the Kabil Maha Phrom, the God who lost his head as a wager, have their own names, but they are called as a class Nang Songkran or the Songkran ladies. When any one of them appears on a Songkran day, she rides on a certain animal in four different postures according to the time she comes. She strands on the animal's back if she comes in the morning, rides on its back if she comes in the afternoon, reclines with her eyes open if she comes in the evening, and reclines with her eyes closed if she comes past midnight. So in the Songkran parade, the most important place is reserved for Nang Songkran. Tradition has it that the position in which Nang Songkran appears on her mount, indicates the time of the day that the new year actuallyb begins.

Every year before the advent of Songkran the royal astrologer presented his calculations to the king giving all traditional information as predicted by the cxalculations of the coming year. The artist attached to the court also painted a picture based on the above information, showing the Songkran lady and the celestial procession of the God's head. This painting with such information was hung in a convenient and conspicious place in the Royal Palace precinets for the people's information. This traditional practice was given up some time ago, but still survives in old-styled printed calender sheets which find a ready demand among the folk. The four postures of the Songkran lady on the back of her animal according to the time when she first appeared as a herald of the New Year, was in the old days, a wise one. The people, who are mostly illiterate are able to see at a glance when the New Year or Songkran day begins when they see the Songkran lady reclining with her eyes closed on the back of a buffalo as some years ago, they

know at once that Songkran day will start past midnight. In such a case there will be a celebrationfor four days instead of three as in other pictures. A picture is easily retained in memory in comparison to number of figures.[3]

The Burmese version of the foregoing tale agrees substantially with the Thai one but if the two versions are critically examined, we begin to see something of this Songkran tale. The name of the God who lost his wager was Kabil Mahaa Phrom in the Thai version and Asi Brahma in the Burmese one. Kalil is Kapila Sanskrit and means reddish and Asi means a sword. The head of this God, Kalil Maha Phrom is intensely hot. If it comes into contact with the earth, there will be a universal conflagration and if it falls into the sea, the water will dry up at once. Instead of depositing it in a cave as in the Thai version, the Burmese say that it was carried all the time by one of the God's seven daughters and she was relieved of her duty only on New Year day when one of her sisters whose appointed turn it was, came to carry her father's head for the year. To what place does she carry it all through the year? No doubt it must be above the sky in the heavenly realm.

This story is based on a solar myth. Kalil Maha Phrom's head is no often than the Sun and his seven daughters are the seven days of the week. The God's head is deposited in a heavenly cave and appears in procession of the Gods and Goddesses round the Meru on Songkran day. According to the Thai version, this is like the Sun which appears in certain parts of the world in its resplandence only at spring time. Obviously the Songkran festival was not originally an indigenous festiva; of this part of the Indo-Chinese Peninsula for the name plainly betrays as of Indian origin. We have here no spring season, but the time suits well for the people whose main occupation is agriculture the month of April is in the middle ofg the hot summer when fields and small streams are usually dried up. The peasants have nothing to do but to spend their time in leisure until the rainy season when they can again begin their arduous work of ploughing and planting. At this time of the year, the faarmers are in their off-season, waiting for the nest ploughing season.

The Thai traditional calender months are lunar ones, and they name them in cardinal numbers as fisrt month, second month and so on until the twelfth month. Their first month is sometimes in December, but they begin their new year not on the first month but on the first lunar waxing day of the fifth month which correspond to the later parts of March, and they celebrate their New Year not on the 1st day of the 5th month but on the 13th April, Songkran day, and change their traditional era either on the 15th or on the 16th April, if the Songkran celebration is a four day period when the Sun enters the sign of Aries past midnight on the 13th April. Originally they begin a new day from past midnight while the popular day still that day which officially is another day

i.e. the 14th April.

Now a brief description of the celebration of the Songkran festival is given here. One thing that must be borne in mind is that the peasants who form the larger part of the population are simple in their mode of life unlike those of the people in big cities. Hence Songkran festival means gala days for them once in the course of the twelve months. On the eve of Songkran day, i.e. on the 12th April, the people clean their house and burn all the refuse.[4] This is a spring cleaning day done as a duty in the belief that anything had belonging to the old year will be unlucky to the owner if left and carried on to the coming New Year. It is something like a public health cleaning day but backed by traditional belief has proved more effective to emotional people.

The Songkran festival, therefore, is associated with water, watre throwing, the ceremonial bathing of images and of venerated abbots and respected grandfathers and it includes rites and processions to sugest or include rain.

Early on the first day of Songkran, the 13th April, the people both young and old in their new clothings rep[aired to the wator mkonestery belonging to their village or disstrict to offer food to the monks there. The festival takes on religious sanction from rites conducteds at the temple. People make merry there by a ceremonial sprinkling or bathing of Buddhist iamges, by venerating the abbott in similar manner; and by bringing sand to make clean the temple grounds. The thought of making a clean start before the new year enters in, finds expression in removing the dust of the old year.

The day begins bright and early when alms are given to thee passing priests. Thus as the first rays of the Sun touch the land, the pious Buddhists can be seen sharing whatever they may have with the Saffron robed monks. A long table is erected in the compound of the wat where monk's alms-bowls stand in a row on either side of the table. Into the alms-bowls the gathering people pit boiled rice and into the coversof the alms-bowls food, fruits and sweetments. Such a performance can be seen at wats outside Bangkoj on Songkran days. While the monks partake of this feast, music is played to celebrate the occasion.

In the afternoon of the same day there is bathing ceremony of the Butthe images and also of the abbot of the wat. After that begins the well known 'water throwing feast'. The bathing of images is done, as a matter of fact, ceremonially only, but the bathing ceremony is no other than a New year's purification. Later in the day, visits to older relatives and friends made by younger generation. There is a simple ceremony of pouring lustral or scented water into the palms of the old people and present them with a towel and other bathing requisites which signify the purification of the soul thus making a fresh start for the new year. In the older houses, it was an actual bathing where the

young helped the old people to take a bath in scented water and to change their old clothing put on the near clother which the young people presented them as an act of respect to the aged the occasion of the new year.[5]

Another duty to be done during the Songkran festival is a religious service called Bangsukun performed in sacred memory to the dead. When a person died and was cremated, the ashes and cherred bones of common people were burried at the root of a sacred fig tree in a wat. Such trees are to be found in the grounds of almost every wat. It is a symbol of the Lord Buddha's enlightenment, for at such a tree did Buddha sit in meditation and receive his enlightenment. If a person is able to cut a Pra cedi or pagoda in the wat the ashes and bones are then deposited in it. In later times, a portion of the bones was sometimes kept in the house in a receptacle. On Songkran day, a religious service in sacred memory of the dead may be officiated at by a monk or monks at the place where the ashes and bones have been deposited, or as in some localities the people bring their dead bones to a village wat in company with others where a joint memorial service is performed. In some parts of the country the guardian spirits of the village and town receive also their annual offerings on Songkran days. Obviously there are reminiscences or traces of ancestors and animistic worship in by-gone days.

On Songkran days some people make special merriment by releasing live birds and fish. A very beautiful is ceremony is still performed in Paklat whose ancestors are of the Mon race where there is a procession of young girls in gala dress carrying bowls of fish to the river side to release them there. Boat races are held and the whole dayis given over to festivities. Many people in Bangkok go to Paklat to see this procession. Of course they want to see the people especially girls more than the fish.[6]

The custorn of releasing live fish as merry making on Songkran days is a happy one. As April falls in the middle of the hot season, the ponds and canals dry out, leaving the fish stranded in small pools of water disconnected with the river and creeks. Many of the fish especially the fry or young ones are unable to get into the river and canals in time and sooner all die for want of water in the hot month of April. The peasants go and gather the stranded young fish keeping. them in jars until Songkran day in order that they may gain abundant merit by releasing them into the rivers and canals by doing such meritorious acts. This practice results in two causes, one to gain merit by setting free a life and second, as a sort of natural fish conservation plan- which are their own staple food apart from rice.

After the priests have been attended to, the fish released and the lustral waters have been poured among the people - pleasure in the form of water fights now take place. Today it has religious and merry aspects as before. The water throwing in a free-

for-all and every one takes it in good part. The farang is not exempt. He may be the favourite target and monks are not exempted too. Every one is prepared to meet such treatment. It is all right to indulge in water throwing at one another during the hottest days of the year, provided that the water is clean and the water throwers confine themselves within their own village bounds. All this is usually taken in good humour because the thrower is usually greeted with a bucketful himself. There is always a chance to reciprocate as long as one locate a bucketful of water. Somewhere far back this practice of water throwing probably originated with the belief that a few drips of water poured back into the soil would ensure plentiful rainfall for the next crop.[7]

The last remaining item as to Songkran custom is concerned with songs, dance, games and other partimes as played by the lads and lasses of the village. Some of these things are peculiar to each locality and if translated from their surroundings lose all the colour and charm. The young people continue to sing, dance and play games after the last day of Songkran comes to an end, if the rain has yet not begun. For they have nothing to do until it rains when they can start their overous occupation of plouging. During the days of Songkran, the woman's domestic work, such as the pounding of rice, the drawing of water and cutting of firewood, stops altogether begins again after Songkran ends.

References

1. All about Thailand. Public Relation Deptt. Publication, Bangkok, 1977, pp. 15
2. Frank and Ann Darling, Thailand - The Modern Kingdom, Singapore, 1971, pp. 26
3. Insor, D., Thailand: A political, social and economic analysis, New York, 1963, pp. 44,
4. Glasker, B., People of South East Asia, New York, 1944, pp. 77
5. Bowring, Sir John, The Kingdom and people of Siam, Londen, 1968, pp. 212
6. Anuman, Rajadhom Phya, Introducing Cultural Thailand, Newq Sries, No. 1, Bangkok, 1976, pp. 33
7. Wales, H.G.Q., Siamese State Ceremonies, Londen, 1931, pp. 52

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal **ISSN 0976-0849**
Vol. 17 ● No. 17 ● September, 2023 ● Pages 276-287

National Policy on Education

Mahant Digvijay Nath

On July 14, 1964, Mr. Mohammad Ali Currim Chagla appointed, as the Education Minister of India, an Education Commissio n consisting of 17 Members which was comprised of 6 foreigners, 2 Muslims and the rest opponents of Hindi.

The Objective of this Education Commission was given out as being "to advise Government on the national pattern of education and on the general principles and policies for the development of education at all stages and in all aspects". This Education Commission submitted its Report to the Government of India on June 29, 1966.

On April 5, 1967, the Government of India constituted a Committee of Members of Parliament whose terms of reference were:

1. To consider the Report of the Education Commission.
2. To prepare a draft statement on the National Policy on Education.
3. To draw up a plan of work for immediate implementation.

This Committee of Members of Parliament appointed a Sub-Committee, to draw up a statement on the National Policy on Education, and it was this statement alone that was discussed by the Committee of Members of Parliament. This Committee did not go into the Report of the Education Commission in detail at all.

Among the members of Parliament which were members of this Committee, the sole representative of the Hindu Mahasabha in Parliament, Mahant Digvijay Nath, was also one. He raised a number of objections at the meetings of this Committee of Members of Parliament, but these were not given due consideration. He was, therefore, left with no alternative but to append a detailed Minute of Dissent to the statement on National Policy on Education prepared by the Committee, which has been published along with the statement on National Policy on Education.

I have gone through the report of the Education Commission at some length. I have also attended the meetings of the State Education Minister held on April 28, 29 & 30, 1967. And, I have also attended almost all meetings of the Committee of Members

of Parliament formed to study the Education Commission's report. The statement on National Policy on Education, in its final form dated June 29, 1967, has also been received by me, and the signing of this report now remains to be done. I sign it with the following Minute of Dissent.

2. I feel that the objective of education mentioned to para I of the proposed "National Policy on Education" is not properly worded. I feel that it should be worded as follows:

   Education is a powerful instrument of national development-cultural, social and economic. The highest priority should therefore be accorded to the development of a national system of education which will:-develop among the people of India a national personality based on its ancient civilization and culture;
   while the rest of the para remains as in the draft.

3. I regret to say that I found much of unreality about the entire problem of education as it has to be re-organised after twenty years of our independence, as the basic problem about the character of education to be imparted to our children has not been examined by the Education Commission, as it was expected to do. I am sorry that the Report of the Education Commission was not considered in detail by the Committee, thereby defeating the very purpose for which it had been appointed.

4. The real malaise with the present system of education in India is that it has been based on the infamous Minute of Macaulay dated February 2, 1835, the real aim of which was clearly defined by him in the following words: We must at present do our best to form a class which may be interpreters between us and the millions whom we govern-a class of person Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect". This clearly shows that the basic aim of Macaulay was only to produce clerks, and this aim has been carried through by the Government of India ever since March 7, 1835, when Lord William Bentinck got the Government resolution adopted which said that "the great object of the British Government ought to be the promotion of European literature and science among the natives of India; and that all the funds appropriated for the purpose of education would be best employed on English education along."

5. The objective which both Macaulay and Bentinck had before them was to convert the whole of India to Christianity, as is clear from the letter Macaulay wrote to his parents from Calcutta on October 12, 1835. In this, he wrote : "Our English Schools are flourishing wonderfully, the effect of this education on the Hindus is prodigious. No Hindu, who has received an English education, ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, but many profess

themselves pure deists, and some embrace Christianity. It is my firm belief that if our plans of education are followed up, there will not be a single isolator among the respectable classes in Bengal thirty year hence. And, this will be effected without any efforts to proselytize, without the smallest interference with religious liberty merely by the natural operation of knowledge and reflection. I heartily rejoice in the prospect".

6. Commenting on this letter of Macaulay, Mahatma Gandhi wrote in "Young India" dated March 29, 1928 thus: "I do not know whether Macaulay's dream that English-educated India would abandon its religious beliefs has been realized, but we know too that he had another dream, namely, to supply English-educated India clerks and the like for the English rulers. That dream has certainly been realized beyond all expectation".

7. Another objective Macaulay had in this mind when introducing this English education in India, was to denigrate everything India. He wrote in para 9 of the same infamous Minute that "I have ever found one among them (the Orientalists) who could deny a single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia". This view of his has been impressed on the Indian mind during the last seven generations continuously so much so that every Indian today considers everything Indian as inferior and everything English or Western as superior.

8. Under these circumstances, the basic aim of educational reconstruction in India must be to reverse this process, and very effort must be made through education to eliminate this inferiority complex from the minds of the new generations in India and also to produce youngmen with a fully developed national personality, based on the ancient the civilization and culture of our great country.

9. I am really very happy to note that our present Education Minister, as well as the Prime Minister and the Deputy Prime Minister, are fully conscious of this great need of educational reform. In the course of his address at the inaugural session of the Tenth Conference of the State Education Ministers, held in New Delhi on April 28, 1967 the Education Minister had stated: "Equally significant is the programme to promote national consciousness and to strengthen national integration and unity. Unfortunately patriotism has become the first casualty after independence. We must not make the schools assume responsibility for promoting national consciousness and for strengthening national integration and unity". The Prime Minister, while inaugurating this Conference clearly stated that "partly because of the system itself and partly because of unavoidable transitional factors, it has resulted in a certain degree of alienation and rootlessness. Many young

people have been cut adrift from traditional values, without being provided the anchorage of an alternative set of constructive modern values". The Deputy Prime Minister, in the course of his address at the same Conference, went a step further, when he said: "We have a very ancient, perhaps the most ancient civilization and culture. In the realm of thought, which raises human personality to the highest fulfillment, I do not think any other country can beat this country. Today also, we are having all those thoughts and ideals but they are more in name than in action. Our ideals are the highest but our actions are probably the lowest. I must agree to this indictment, but if that indictment is rightly taken by us to heart, not as a criticism but as a statement of the present state of affairs from which we are suffering, we shall soon find a way to remove this contradiction between thought and action. We have not go to lower our ideals but we have got to raise the level of our action, so that it conforms with the ideals that we profess of believe, in. I believe education is the only instrument through which we can achieve this. There is nothing else which can make a nation integrated, strong and consisting of a real human society, because it is the purpose of education to unable us to see that what is right and what is wrong and also to acquire a capacity to stick to what is right and to give up what is wrong. Judged from that standard, I am afraid, our education has been a miserable failure, barring a few exceptions here and there. That is because our education took a different turn during our days of slavery. I am happy that those days are gone, but the effects of those days are not yet gone. Whereas we have become physically independent and free, I wonder if we are mentally yet free and independent. We are still being governed, and very strongly governed, by some of the ideas which were responsible for putting us into slavery and keeping us there". These sentiments, expressed by the highest in authority in the country in regard to education, give a clear indication, as to how our educational system should be re-organized for the future.

10. It is from this standpoint that I have stated in the very beginning of this Minute of Dissent that the report of the Education Commission and all the proceedings held in connection with it, have appeared to me to altogether unreal. I had expected the Education commission to have pointed out re-organized educational system would reverse this process of de-nationalizing the people, so that a national personality might develop among the future generations. I feel that the very constitution of the Education Commission was faculty from the very start. It was most unfortunate that no less than 6 of the 17 members of the Education Commission were foreigners: two Englishmen, one Japanese, one American, one Russian and one Frenchman. Out of the remaining eleven, two represented the Muslim minority in the country. Out of the remaining nine, apart from the

Chairman, who is one of the topmost scientists and educationists of the country, and present Education Minister, a great engineer and educationist, most of the others were of a calibre which left much to be desired as members of an Education Commission, the basic objective of which was to reconstruct in India, so as to raise it to the highest standards. It is most unfortunate that the Ministry of Education could not find a single North-Indian educationist from any of the many universities in the so-called Hindi region fit enough to become a member of this Education Commission. It is a result of this faculty constitution of the Education Commission that this lopsided Report has come before us, which seems to have been written with the deliberate objective of destroying the *very* national fabric of this country. All through this Report, an excessive emphasis has been laid on diversity among our people. For example, para 1.07 says : "Our people profess a number of different religion ; and the picutre becomes even more complicated because of caste, and undemocratic institution, which is still powerful and which, strangely enough, seems to have extended its sphere of influence under the very democratic processes of the Constitution itself. The situation, complex as it was, has been made critical by recent developments which threaten both national unity and social progress. As education is not rooted in the traditions of the people, the educated persons tend to be alienated from their own culture. The growth of local, regional, linguistic and State loyalties tend to make the people forget India. The old values' which held society together, have been disappearing, and as there is not effective programme to replace them by a new sense of social responsibility, innumerable signs of social dis-organization are evident everywhere and are continually on the increase". This by itself is a misstatement of the Indian society. There is hardly any big country in the world which does not have a small minority, but this minority does not change the basic character of the Nation. As such, to repeat *ad nauseum,* as has become the fashion today, to call India amultireligious polygeot country, is basically wrong. In this connection also, the Education Commission has put too much stress on the word "Secular" This much-abused word is regarded as something sacrosanct, when the fact is that this word has a very low connotation as it gives an idea of something mudance. It was for this very reason that this word does not find any place in the Constitution of India.

According to the "New English Dictionary" the word "Secular" stands for the "the absence of connection with religion". And according to the "Encyclopedia Britanica", the word "Secular" means "anything non-spiritual, having no concern with religion or spiritual matters-anything that is distinctly opposed to, not connected with religious or ecclesiastical, things temporal as apposed to spiritual or ecclesiastical". These definitions make it perfectly clear that there is nothing in the Constitution of

India to justify the application of the title "Secular" to the political system embodied therein. As against this, Article 25 of the Constitution provides for the right to freedom of religion, clearly declaring that "subject to public order, morality and the other provisions of this part, all persons are equally entitled to freedom of conscience and the right freely to profess, practice and propagate religion". Article 26 of the Constitution further clarifies how these religious rights are to be exercised by the people. These Articles in the Constitution gives religion a place in the political life of the country as hardly any other modern Constitution does. From all this it follows that India is not a "Secular State".

11. It is not a mere omission that the word "Secular" does not find a place in the Preamble to our Constitution, whereas social, economic and political justice, liberty of thought, expression, belief, faith and worship and equality of status and of opportunity all find a place there. The fact is that the learned constitution-makers of India were fully aware of the real meaning of the word "Secular" and they deliberately refused to countenance the addition of the word "Secular" in the Constitution, in spite of concerned efforts made by some. members to introduce this work in the Constitution itself. While discussing the Chapter on Fundamental Rights, it was Prof. K.T. Shah, the great economist, who moved an amendment by which he wanted an additional Article, to be numbered 18-A serially to be inserted in the draft Constitution, and this amendments to the Draft Constitution of India, Volume One", and it ran thus : "that the following new Article be inserted under the heading 'Rights relating to Religion', occurring after Article 18.

But, our Constitution-makers refused to accept this amendment and it was duly rejected. The matter, however, did not end there. The same Prof. K.T. Shah also moved an amendment to the Preamble in the Draft Constitution, by which he wanted to add the word "Secular" between the words "Sovereign" and "Democratic Republic", but this too was rejected by the Constituent Assembly. This amendment was the very first in the list of amendments printed in book form. Then again, by amendment No. 96, printed in the list of amendments, Prof. K.T. Shah and Mr. Mohan Lal Gautam wanted Article One of the Draft Constitution running "India shall be Union of States", to be changed in to "India shall be a Secular, federal, socialist Union of States", but this amendment also met the same fate and this too was rejected. These facts clearly go to show that the learned Constitution- makers of India did not want India to be a "Secular State" in any shape of form. Under such conditions, it was most improper for the Education Commission to have gone out of its way to lay undue emphasis on secularism, as it has done in para 1.79, wherein the Education Commission has taken undue pains to make a distinction between "Religious education" and "education about religions". It goes on

to say that' "it would not be practicable for a Secular State with many religions to provide education in anyone religion". As I have shown already, India cannot be called a Secular State with many religions. As ninety per cent of the population of the country follows the Hindu religion in one form or another, the remaining ten per cent of the minorities remain minorities and they cannot be permitted to act as if they had a right of veto on the rights of the ninety per cent nationals of this country. As to who is a Hindu has been made perfectly clear in the Constitution in Explanation II to Article 25(2)(b), which clearly says that "the reference to Hindus shall be construed as including a reference to persons professing the sikh, Jain or Buddhist religion, and the reference to Hindu religious institutions shall be construed accordingly'. This explanation makes it perfectly clear that ninety per cent of the people of India profess a single religion in different forms, and as such there should be absolutely no ban placed on religious instruction in the schools. It is a tragedy of India that while all Christian institutions in the country have the liberty to teach Christianity to its students and all Muslim institutions train their children in their religion, it is only the Hindu students who are debarred from getting any linking into their own religious beliefs. This attitude of the British Government in India all through the last 100 years before independence and of our own National Government during the last twenty years after the country's independence, has left a complete vacuum in the lives of the people of this country, and the Present indiscipline among the students can largely be traced to this non-teaching of the tenants of the Hindu religion, because Hindu religion has always been a great check on sin and crime. I therefore strongly demand that this attitude must now change. The ninety per cent nationals of this country have every right to have their children trained in the religious traditions of the country. I therefore demand that from the very elementary stages of education, all students must be imparted religious instruction in the sacred books of the Hindus, including the Vedas, the Upanishads, the Ramayana, the Mahabharata, the Gita and other scriptures, so that when the children grow up as citizens, they may have a through knowledge of the background about the great past of this ancient land. It is here that Macaullay's work of denationalizing the people has to be undone and undone with a strong hand. Until this is done, no system of education, however scientific in the Western sense, imparted in our schools and colleges, can make them first-rate citizens.

12. It is in this same connection that I consider it necessary to emphasize that the attempt made by the Education Commission to dissociate holidays in educational institutions from religious festivals is most reprehensible. In para 2.36, it has been stated that "the idea of vacation terms should be made secular and dissociated from religious festivals like Diwali, Christmas or Puja". And in para 2.37(1) the opinion has been expressed that "there is no need to close an educational institution

on a religious holiday. Nor it is necessary, for instance, to close it on birthdays or death anniversaries of great Indians". I take the strongest objection to these statements in the Report of the Education Commission. In all Christian countries in the world, Christmas and Easter holidays are celebrated on a grand scale. In the same ways, in all Muslim countries, Id-ul-Fiter and Id-ul-Zuha and Moharram are celebrated by the people on a mass scale, and the students are main participants in all these celebrations. Is it any crime for Hindus in India to be Hindus, that they must be debarred for celebrating their great days? it is often said that there are too many festivals among the Hindus. The reason for this is not far to seek. In words of Mr. Morarji Desai, our Ex-Deputy Prime Minister, (already quoted) "we have a very ancient, perhaps the most ancient civilization, and culture". And, it is but natural that the older a civilization, the more great men and great deeds is must have to celebrate, so that the future generations might follow in the footsteps of these great men. It is therefore not at all improper if the Hindus have a much larger number of festivals to celebrate, and the students must have every facility to participate in these festivals. This year important national holidays like Holi and Shivaratri were not declared closed holidays by the Government of India. This was a great encroachment on the rights of the people of this country, and it seems this action was taken on the basis of this Report of Education Commission. The Education Commission seems to have been very particular about reducing the number of holidays that might be granted to students. The simplest procedure that should have been adopted by the Education Commission was that it should have suggested that only those festivals should be declared as closed holidays which concern a majority of the people, that is in which more than 50 per cent of the people participate, and all festivals which concern people numbering less than 50 per cent should have them as restricted holidays, with full pay, available only to members of the communities with which those festivals are concerned. This would save many unnecessary holidays, without doing injustice to the vast majority of the people.

13. In this same connection, I wish to draw the attention of the people to the attempt made by the Zakir Hussain Committee on Basic Education, which through a seven-year course on general science, had made on attempt to teach "Islamic Culture in India and the World" to students all over India in class V, when it had scrupulously avoided mentioning the Vedas and the Upanishads, the Ramayana and the Mahabharata, Sanskrit and Hindi and the Aryan Hindu cultures from the entire syllabus. This was deliberately done by this committee to continue the process of de-nationalizing the people of this country, a process started by Macaulay in 1835. The present Report of the Education Commission seems to be

a mere continuation of the same de-nationalizing process, and I take strong exception to it.

14. It is from the same standpoint that I take strong exception to paras 4.48 and 8.49. wherein every has been made to discourage the study of Sanskrit. It was the late Prime Minister Shri Lal Bahadur Shastri, who has once said that every State in India should have a Sanskrit University. It seems to me that the assertion of the Education Commission that it cannot support the idea of Sanskrit Universities, was incorporate in this Report to counteract this absolutely essential suggestion of Shri Shastri. As we all know, Sanskrit is the treasure-house of vast knowledge in every field of knowledge, including the sciences. The people of this country cannot become first-rate scientists until and unless they have a proper grounding in ancient Indian sciences in Sanskrit, whether it be in the field of mathematics, or in astronomy and astrology, in medicine or surgery, whether in philosophy or logic, or any other science. I take strong exception to Sanskrit being included along with other classical languages, which do not deal with sciences as such, and which have always been foreign to India. I feel that Sanskrit being the mother of all Indian languages, and of all science, its study should be made compulsory for all students from the very beginning, so that when the students grow up they might be masters of this language and it might be easy for them to grasp the modern scientific discoveries and inventions, as they are merely the continuation of the knowledge about our sciences contained in Sanskrit. In this respect also, Macaulay's mischief must be undone.

15. In regard to the language policy, I feel, a very wrong approach has been made. The fact is that a child's mind is fit to grasp several languages, while as he grows up his capacity to learn new languages grows less and less. But as regards other subjects, the child increases his capacity to learn them as he advances in age. It is therefore very wrong to say that the child not be burdened with three or four language does not need mental development of a high calibre, and learning of the other subjects does need more of mental development, the excessive emphasis laid on the teaching of science and discouraging the study of several languages to children in the initial stages, is basically wrong. In the primary classes, I feel languages in the form of short stories and the elementary principles of arithmetic and general knowledge alone should be prescribed. And, as he advances in age, less and less of languages and more and more of scientific subjects should be taught. It is an this light that I consider the teaching of Sanskrit alongwith Hindi as the national language, the regional language and a third Indian language as necessary for all students in the beginning, and Sanskrit, Hindi and the regional

language must continue all through the educational career. In this age of democracy, in which a bare majority of 51 per cent can foist its view and decisions on everybody, including the substantial minority of 49 per cent, the undue importance attached to English must not be permitted to hold up the progress of the country, which can be made only through the national language and the regional languages, simply because of a small minority of 7.4 per cent people from Tamilnadu. The assertion that English is a window to learning in the West is also not quite true. In the whole of Europe, English today is as foreign to the people there, as is Hindi. Except for England, Canada, Australia, South Africa, the U.S.A. and the countries which are under British domination till recently, English is not understood anywhere in the rest of the world. The four languages of Europe today are from West to East, Spanish, French, German and Russian. If a real window to the knowledge of the West is needed by our students, they must learn any of these Continental languages rather than English. To say that we cannot make any scientific advance without a knowledge of English is also wrong. The Russians who today are at the top in science, learnt all their sciences through Russian, although 40 years back they were the most backward and science in modern terms was not even known to them. China also learnt all its sciences through the Chinese, through the Japanese language. Even small countries in Europe, like Bulgaria, learn all their sciences through their own Bulgarian language. Why then is it necessary for the people of this country to learn a foreign language to become masters in various arts and sciences? The problem is merely one of translating scientific books in the national languages. If Maharaja Ranbir Singh of Jammu and Kashmir could get hundreds of books in Sanskrit translated in Hindi with the help of a hundred Pandits employed in the Dharmarth Trust, and if Osman Ali Khan, the late Nizam of Hyderabad, could get all textbooks from primary classes up to the post-graduate classes translated in Urdu for his Osmania University there is no reason why, our Government of India, with all resources at its command, cannot get all important scientific books in the different languages of the world translated in India spends thousands of crores of rupees on different activities, there is no reason why it should not devote a few crores on the work of translation alone, so that the nation might make maximum scientific advance in the shortest possible time through our own languages. I therefore strongly oppose the continuance of English as an associate official language along with Hindi because so long as English remains as the medium of instruction in India, in any shape orform, Macaulay's mischief of keeping Indians mental slaves of the English cannot be undone. I take strong exception to the Education Commission having gone out of its way to make changes in the three language formula, which was so

successfully being worked out all over the country. Bringing in the mother tongue as an alternative to the regional language, and proposing English as an alternative to Hindi as the link language, is the worst mischief that this Education Commission has proposed in the course of this Report, and I condemn it with all the strength at my command. I want the old three language formula to continue in practice, in which Hindi and the regional language must remain the medium of instruction throughout. The proposal to teach, up to the university stage, only in the regional language, as envisaged in the two language formula, would lead to the disintegration of the country into so many separate water-tight compartments, thereby Balkanising it completely as the compatriots of Macaulay and other enemies of our country would like to see. I therefore entirely disagree with it and strongly oppose its adoption.

16. I feel it necessary to draw attention to another matter of importance and that is in regard to the education of girls in India. All over Europe today, there is a general tendency to reduce co-education in the higher classes, as it demoralizes the students. As against this, in India, efforts are going on in the reverse direction. It is really ludicrous that while we find primary schools separate for boys and girls, more and more secondary and higher secondary educational institutions are being converted into co-educations, while in the universities co-education is being made universal, at an age which is most dangerous in one's life. The position should be that while co-education should be confined to children up to the age of 10 or so, all education above this age must be kept separate for boys and girls. I am really very sorry that the Education Commission has not paid proper attention to this aspect of education, and I want this to be incorporated in any Statement on National Policy on Education that might be prepared for the country. We must not forget that the very basis of our society in India is *Brahmacharya,* and it is on this account that our country has so far maintained its high position in the world of knowledge and social behaviour. Co-education is destroying the very foundation of our society, and I consider it our duty to restore our social behaviour to the greatness that has sustained us all through the ages. In this connection it is also very necessary that the aim of education in India should be to train our people for the future lives they have to live. As such, the courses of secondary, higher secondary and university studies for women should be confined to subjects they have to deal with all through their lives, like doctors, teachers, fine arts and household work of various kinds only. At the same time, boys should be discouraged from taking up fine arts as their subjects of study. They should confine themselves mostly to many pursuits.

17. I regret that the Education Commission has not touched on the cinema and television is the most suitable media for education. In almost all countries of the world, these media are fully utilized for this purpose. lnstead of these, our young men and women are being corrupted through most demoralizing films. I demand that a total ban be imposed on "For Adults Only" films, and also to see that much of sex is not allowed to be included in the Indian films, with most obnoxious songs, as is happening today.

18. I also take strong exception to wrong name of culture being given to the lowest arts, like dancing and singing, in the Education Commission's Report. These might be part of culture for the people of the West, who have not as yet reached the higher conception of philosophical living, but for the people of India, only the highest forms of philosophical discourses, etc. have been recognized as culture. By encouraging these so called arts, a concerted effort is being made to degenerate the people as a whole. I would like to see *Yoga* and *Asanas* being encouraged on a mass scale, so that the people of the country might become healthy and strong, as a healthy body is necessary for healthy mind. I am really very sorry that the education commission has not seen fit to go into this question at all, except what concerns drill and the N.C.C. In this connection also, I cannot appreciate our girls being given any training in N.C.C. or the like. There is no shortage of man-power in India, like most countries of Europe. As such, it is not only wrong but definitely harmful to cry to prepare our girls in form of military training, except nursing, first-aid and tending the sick and wounded. I hope the day will never come in India when our women would have to go to fight in the battlefield, due to lack of men to defend the country's honour. As such, all this training in N.C.C. imparted to girls is a complete national waste. This money can very well be utilized in training all our youngmen militarily.

19. In some places in the Statement on National Policy in Education, there is a reference to the teaching of History of Freedom Movement in India. This history should cover the entire period of the last 1000 years of our struggle for freedom and not only the last 200 years.

20. I have every hope that while considering the Report of the Education Commission, the above comments of mine will also be taken into consideration, and proper decisions taken thereon.

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका **ISSN 0976-0849**
वर्ष 17 ● अंक 17 ● सितम्बर, 2023 ● पृष्ठ 288-305

महायोगी गोरखनाथ के संस्कृत ग्रन्थ

महन्त अवेद्यनाथ

महायोगी गोरखनाथ साक्षात् योगेश्वर भगवान् शिव के स्वरुप शिवगोरक्ष हैं। वे अमरकाय स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन द्वैताद्वैतविवर्जित परमात्म तत्त्व में प्रतिष्ठित चारों युगों में विद्यमानता की उपाधि से समलंकृत हैं, उनका शिवोपदिष्ट नाथयोगज्ञानामृत त्रिकालोपयोगी होते हुए भी त्रिकालातीत, समय की सीमा में आबद्ध नहीं हैं। यद्यपि भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में उनके उपदेश प्रमुखता से 'गोरखबानी' के रुप में संकलित हैं तथापि संस्कृत भाषा में उनके द्वारा रचित ग्रन्थ उनके चिरकालिक योगोपदेशामृत के युगों-युगों से सुरक्षित वाङ्मय हैं- क्योंकि संस्कृत अमरवाणी है- देववाणी है, किंवा भागवतवाणी है। इस दृष्टि से उनके यथोपलब्ध अद्यतन सुरक्षित ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में 'योगवाणी' के विशेषांक के रूप में 'गोरक्षग्रन्थावली' का प्रकाशन अपने आप में एक महान् यज्ञ है, जिसकी संकल्पपूर्ति में नाथयोगदर्शन सर्वथा सुरक्षित रूप में व्यावहारिक है, जनजीवन के उत्तरोत्तर दिव्यीकरण का सशक्त माध्यम है।

योगबीज-यथोपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों के क्रम में यद्यपि 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' के लेखक ब्रिग्स महोदय ने उनकी रचना 'गोरक्षशतक' को विशेष महत्त्व दिया है, तथापित नाथयोग की साधना की दृष्टि से महायोगी गोरखनाथ द्वारा करुणापूर्वक रचित 'योगबीज' की उपयोगिता विचारणीय है। यह शिव-पार्वती के संवाद रूप में योगज्ञानसागर के मन्थन का उपदेशामृतबीज है, उद्गम का सम्भवतः आदि स्रोत है। 'योगबीज' भगवान् गोरक्षनाथ की अनुभूति का योगवाङ्मय है जिसमें भगवती पार्वती को महाज्ञान से सन्तृप्त करने का भगवान् शिव ने पुण्यव्रत निबाहा है। गोरखनाथजी ने अपनी नाथयोगानुभूति का 190 श्लोकों में वर्णन किया है। इसमें नाथसिद्धमत की योगसाधना, हठयोगाभ्यास (योगाग्नि द्वारा पक्व देह-प्राप्ति, पवन-विजय और कुण्डलिनीयोग आदि) का विवेचन किया गया है। इसमें जीवन्मुक्ति, अमरकायत्व तथा कैवल्यपद में प्रतिष्ठित होने का वर्णन किया गया है। 'योगबीज' का स्पष्ट अभिमत है कि न तो योग से श्रेष्ठ कोई पुण्य है, न कोई सुख है, न कोई सूक्ष्म ज्ञान है, न साधना का कोई श्रेष्ठ मार्ग है-

योगात्परतरं पुण्यं योगात्परतरं सुखम्।
योगात्परतरं सूक्ष्मं योगामार्गात्परं न हि॥ (योगबीज-87)

सिद्धमत प्रतिपादित योगमार्ग सर्वसिद्धिकर और माया जाल का निकृन्तन करने वाला है। बद्ध जीवात्मा इस योगज्ञान से कैवल्य में प्रतिष्ठित होते हैं। अनिर्वाच्य स्वसंवेद्य परमपद-स्वात्मप्रकाशरूप है, यह निश्छल, निर्मल, निरामय, सर्वव्यापक, सर्वातीत है। ज्ञानस्वरूप, सर्वभावपदातीत निरञ्जन ही परमात्मा है-

'सर्वभावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम्।' (योगबीज-13)

'योगबीज' में गोरखनाथजी का कथन है कि योगाग्नि में पका कर योगी अपने शरीर को मृत्यु का ग्रास बनने से बचा लेता है, योग से रहित शरीरधारी का शरीर मृत्यु के वश में हो जाता है। वह सिद्ध देह प्राप्त कर जीते जी मुक्त हो जाता है। योग से श्रेष्ठ मोक्ष प्रदान करने वाला दूसरा मार्ग नहीं है-

'तस्माद् योगात् परतरो नास्ति मार्गस्तु मोक्षदः' (योगबीज-72)

इस ग्रन्थ में कुण्डलिनीसाधना, त्रयबन्ध, जालन्धार, उड्डियान और मूल के अभ्यास का विशद महत्त्वांकन उपलब्ध होता है। प्राणायाम से चित्त के पवन में लीन हो जाने पर बिन्दु (वीर्य) पतित नहीं होता। नाद-श्रवण होता है, सहस्रार से चन्द्रामृत प्रवाहित होता है और योगी इस तरह सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो जाता है-

स्वरूपे सच्चिदानन्दे स्थितिमाप्नोति केवलाम्। (योगबीज-142)

वास्तव में योगसिद्ध का आशय यही है कि योगी जीते जी इसी शरीर के दिव्यीकरण से अमरकायत्व द्वारा जीवन्मुक्त होकर सच्चिदानन्दपद में स्थित हो जाता है। जीवात्मा का परमात्मा में यही साक्षात्कार अथवा कैवल्यप्राप्ति है। योग मोक्ष का शास्त्र है, योग सार्वभौम और सर्वमान्य है, सर्वग्राह्य जीवन विज्ञान है, यही 'योगबीज' रचना का प्रतिपाद्य है हमारी यह सुनिश्चित धारणा है कि 'योगबीज' के अध्ययन और उसमें निर्दिष्ट योगाभ्यास के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वरूप सन्तुलन प्राप्त हो सकता है। योगसिद्धि का सहज उपाय-अभ्यास ही 'योगबीज' का फल है।

गोरक्षशतक- मानवजीन में योग साधना की परमोपयोगिता सहज सिद्ध है। योग ही एक ऐसा निरपेक्ष साधन-मार्ग है, जिसके आश्रय में सर्व सामान्य को जीवन की व्यावहारिकता और अपने सच्चिदानन्दस्वरूप का ज्ञान सुलभ होता है। महायोगी गोरखनाथ ने कैवल्यपद-निरञ्जन के स्वरूप की प्राप्ति अथवा अनुभूति पर विशेष बल दिया तथा पतञ्जलि-प्रवर्तित अथवा अनुशासित अष्टांगयोग में सैद्धान्तिक प्रकाश में की गयी साधना को अपने षडंगयोग के महाज्ञानामृत से सिंचित कर उसे प्रक्रियात्मक रूप प्रदान कर आत्मसाक्षात्कार अथवा स्वरूपसिद्धि की ओर मोड़ दिया। यही शिवगोरक्ष गोरक्षनाथजी के द्वारा प्रतिपादित महायोगज्ञान उनके 'गोरक्षशतक' ग्रन्थ में उपलब्ध होता है। 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' के लेखक ब्रिग्स ने 'गोरक्षशतक' को महायोगी गोरखनाथ की

 ISSN 0976-0849

मौलिक कृति कही है और उसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध और निरापद बतायी है। अपनी उपर्युक्त पुस्तक के एक अध्याय में उन्होंने रोमन लिपि में सम्पूर्ण 'गोरक्षशतक' टिप्पणी और अंग्रेजी रूपान्तरण सहित प्रकाशित कर उसकी महनीयता अभिव्यक्त की है। इतना ही नहीं, ब्रिग्स ने 'गोरक्षशतक' की रचना के तात्पर्य पर यथाशक्ति विचार किया है। 'गोरक्षशतक' के ही नामान्तर 'ज्ञानशक' और 'ज्ञानप्रकशशतक' है। ऐसा उल्लेख उपर्युक्त सन्दर्भग्रन्थ में उपलब्ध होता है। 'गोरक्षशतक' पर दो टीकाएँ उपलब्ध हैं; एक टीका शंकर की है तो दूसरी मथुरानाथ शुक्ल की है। इस दूसरी टीका का नाम टिप्पण भी है। इसे गोरक्षशास्त्र भी गया गया है। 'गोरक्षशतक' की लक्ष्मीनारायणकृत टीका 'बालप्रबोधिनी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह निर्विवाद-सा है कि 'गोरक्षशतक' योगसाधना की दृष्टि से नाथसम्प्रदाय का मौलिक प्रमाण ग्रन्थ है।

गोरखनाथ जी ने 'गोरक्षशतक' के दो श्लोकों में मंगलाचरण में अपने गुरु स्वानन्दविग्रह (मत्स्येन्द्रनाथ) मीननाथ की वन्दना की है। उन्होंने 'गोरक्षशतक' का प्रवचन योगियों के हित को ध्यान में रखकर किया है। 'गोरक्षशतक' के अध्ययन और तात्त्विक चिन्तन से साधक का मन विषय-भोगों के रसास्वाद से निवृत्त होकर परमात्मा के स्मरण, ध्यान और चिन्तन में तदाकार हो जाता है। इस ग्रन्थ में अजपागायत्री, प्राणायाम, कुण्डलिनीजागरणपूर्वक सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत पान, महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, बन्धत्रय-जालन्धर आदि पर प्रकाश डाला गया है। गोरक्षशतक हमारे नाथसम्प्रदाय-सिद्धामृत मार्ग का अत्यन्त प्रामाणिक योगशास्त्र है। यह श्रुति प्रतिपादित है। गोरक्षनाथजी ने इसमें श्रुति कल्पतरुफल के रूप में योग के अभ्यास का उपदेश दिया है। उनका वचन है-

'शमनं भवतापस्य योगं भजत सत्तमाः।' (गोरक्षशतक-6)

गोरक्षशतक में गोरखनाथजी ने आन्तरिक शरी-विज्ञान को जानने पर विशेष बल दिया है। उनका कहना है कि यदि साधक में स्थित त्रयलक्ष्य, पंच आकाश, षोडशाधार, मन और दसों इन्द्रियों का सम्यक् ज्ञान नहीं प्राप्त करता है तो उसके लिए प्राणायाम, मुद्राबन्ध, कुण्डलिनीजागरण, नादोपासना और मन के उन्मनीकरण में सफलता प्राप्त करना स्वप्नमात्र है। 'गोरक्षशतक' में कहा गया है कि चाहे साधक वाह्य शौच आदि की निर्मलता से युक्त हो या न युक्त हो, उसे प्रणव का सदा जप करते रहना चाहिए। इससे वह पाप कर्म से उसी तरह लिप्त नहीं होता, जिस तरह कमलपत्र पानी में रहकर भी जल से लिप्त नहीं होता। ॐकार के विधिपूर्वक जप से मन, चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है और चित्त तदाकार होने पर साधक स्वरूप में स्थित हो जाता है।

'सिद्धसिद्धान्तपद्धति'- परम करुणामय शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ ने देववाणी संस्कृत में 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' की रचनाकार अलख निरञ्जन के साक्षात्कार का राजपथ प्रस्तुत किया है। इस मौलिक योगवाङ्मय में नाथयोग-शैवयोग के प्रतिपादन के साथ-ही-साथ निगमागमपुराणस्मृतिसम्मत योगाचार, वैराग्य और मोक्ष के सैद्धान्तिक और साधनात्मक पक्षों का समीचीन समन्वय भी

बोधगम्य शैली में निरुपित है, जिसका रसास्वादन वे ही कर सकते हैं जो योगविज्ञान-हठयोग विद्या के द्वारा परामात्म साक्षात्कार की सिद्धि में अनुभवी और निष्णात हैं। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' को हमारे नाथसम्प्रदाय-सिद्धामृत मार्ग में अपूर्व मान्यता प्राप्त है। योगी सम्प्रदाय में ही नहीं, दार्शनिक विद्वानों में भी इस योगग्रन्थ के प्रति यथेष्ट आदर-भाव और श्रद्धा का दर्शन होता है। लगभग दो सौ साल पहले काशी के महान् योगदार्शनिक महामति बलभद्र ने 'सिद्धसिद्धान्तसंग्रह' के रुप में 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के सारांश का स्वरचित संस्कृत श्लोकों में संग्रह किया था। उनका कथन है-

यत्कारुण्यविलोकनादपि भवेच्चित्तविश्रमः पारदः।
तस्मिन् श्रीकरुणासुधाारसनिधौ चेतोऽस्तु मग्नं गुरौ॥ (सिद्धसिद्धान्तसंग्रह 5/36)

जिनके कृपामय दृष्टिपात से चित्त शान्त और विषयों में अनासक्त हो जाता है, उन करुणासुधार सनिधि गुरु (गोरखनाथ) में मेरा मन निमग्न हो जाय। गोरखनाथजी महान् योगाचार्य थे। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में उनके वचन उपदेश के रूप में उपलब्ध होते हैं, उन्होंने इस योगग्रन्थ के छः उपदेशों में महायोगाज्ञानामृत का वर्णन किया है। इसमें कहा गया है कि अण्डपिण्ड के रूप का ज्ञान हो जाने पर उसकी आधारशिला पारमार्थिक सत्ता का जीवात्मा साधक को बोध हो जाना सरल होता है। यह निर्विवाद है कि इस विश्व-प्रपञ्च की गत्यात्मकता के मूल कारण के रूप में कोई स्वयंसत्य, स्वयंप्रकाशित सत्ता है, जो हमारी इन्द्रिय, मन, बुद्धि से परे अतीन्द्रिय, अतिमानसिक और अतिबौद्धिक स्तर पर अभिव्यक्त है। गोरखनाथजी ने इस शाश्वत चेतना को परासंवित् कहा है, यही परम सत्ता है, उन्होंने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के छः उपदेशों में यथाक्रम पिण्डोत्पत्ति, पिण्डविचार, पिण्ड संवित्ति, पिण्डाधार, पिण्डपदसमरसभाव और नित्यावधूतलक्षण आदि का निरूपण कर नित्यनिर्विकार परम सत्ता को ही जीवात्मा-योगसाधक के लिए प्रतिपाद्य स्वीकार कर उसके स्वरुप बोध अथवा अन्तर्गय की पद्धति सुनिश्चित की है। गोरखनाथजी की दृष्टि में परबह्म शिव (अलख निरञ्जन, पमात्म तत्त्व) अपरम्पर, परम पद, शून्य, निरञ्जन है। यही परमात्मा है-

'अपरम्परं परमपदं शून्यं निरञ्जनं परमात्मेति'। (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 1/17)

गोरखनाथ जी ने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में हठयोग की साधन-प्रक्रिया का मर्म स्पष्ट किया है। हठयोग की साधना वास्तव में प्राणसाधना है। प्राणायाम की सिद्धि से ही यह फलवती होती है। सूर्य-चन्द्र, प्राण-अपान का योग ही हठयोग है।

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोयोगाद् हठयोगो निगद्यते॥ (सिद्धसिद्धान्तपद्धति। 1 । 69)

'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में हठयोगतत्त्व का अक्षय भण्डार है। इस ग्रन्थ में यौगिक दृष्टि से पिण्डविचार अन्तर्दर्शन और ध्यान पर आधारित है। हमारा शरीर शिवशक्ति की अभिव्यक्ति का पवित्र

 ISSN 0976-0849

माध्यम है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में गोरखनाथ जी ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा अति मार्मिक रूप से अष्टांगयोग का भी वर्णन किया है। योगसिद्ध का स्वरूप अष्टांगयोग की साधना के स्तर पर परमात्म साक्षात्कार बताया गया है। गोरखनाथजी ने कहा है कि हमारा शरीर भौतिक शरीर मात्र नहीं है, हमारा व्यष्टि शरीर एक आध्यात्मिक तत्त्व में अभिव्यक्त है। इस व्यष्टि शरीर में योगी सकल चराचर जगत् को व्याप्त जान कर पिण्डसंविति होता है। पाँच भौतिक व्यष्टि शरीर में ही व्यावहारिक रूप से अनन्त शाश्वत ब्रह्माण्ड-व्यवस्था के दर्शन किये जा सकते हैं। गोरखनाथजी ने कहा है कुण्डलिनी जागरण के फलस्वरूप योगी आत्मदर्शन करता है, कुण्डलिनी समस्त कार्यों के ऊपर विद्यमान विमर्शरूप विद्या है-

'सा विमर्शरूपिणी योगिनः स्वस्वरूपभवगच्छन्तीति सुप्रसिद्धाः।' (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 4।15)

यह कुण्डलिनी अधः, मध्य और ऊर्ध्व कही गयी है। इसके यथाक्रम निकुञ्जन, प्रबोध और निपात के परम पद प्राप्त होता है।

गोरखनाथजी ने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में कहा है कि स्वसंवेद्य परमपद की प्राप्ति गुरु की कृपा से होती है-

कथनाच्छक्तिपाताद्वा यद्वा पादावलोकनात्।
प्रसादात्स्वगुरोः सम्यक् प्राप्यते परमं पदम्॥ (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 5/65)

गोरखनाथजी ने अन्तिम छठें उपदेश में अवधूत योगी के लक्षण का विशद निरूपण कर सन्यास की वास्तविक गरिमा प्रकाशित की है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में इसी उपदेश में 'आदेश' शब्द की व्यावहारिकता के परिप्रेक्ष्य में कहा गया है कि आत्मा, परमात्मा और जीवात्मा की अभेदता ही सत्य है, इस सत्य का अनुभव या दर्शन सिद्धामृतमार्ग में 'आदेश' कहलाता है। इसके उच्चारण मात्र से ही त्रयताप-समस्त दुःखों का नाश हो जाता है। शिवगोरक्ष गोरखनाथजी ने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के रूप में अद्भुत नाथयोगशास्त्र प्रकाशित किया है। इसका रहस्य उनके चरणाश्रय से ही समझ में आ सकता है।

विवेकमार्तण्ड- 'विवेकमार्तण्ड' की रचना कर महायोगी गोरखनाथ ने षडंगयोग अथवा हठयोग की साधन-प्रक्रिया प्रस्तुत कर परब्रह्म अलख निरञ्जन के साक्षात्कार को सहज सुलभ कर दिया। 'गोरक्षशतक' के विषय-प्रतिपादन में जो कमी रह गयी, उसकी पूर्ति 'विवेकमार्तण्ड' में परिलक्षित है। 'विवेकमार्तण्ड' के अनेक अप्रकाशित-प्रकाशित संस्करण उपलब्ध हैं, पर जोधापुराधीश महाराज मानसिंह ने इस रचना की सुरक्षा और उसकी 'योगतोषिणी' टीका की प्रस्तुति में जो अभिरुचि प्रकट की, वह ग्रन्थ की उपादेयता प्रकट करती है। 'योगतोषिणी' टीका भीष्मभट्ट की महान् देन है।

'विवेकमार्तण्ड' की टीका का समापन करते हुए भीष्मभट्ट ने महाराज मानसिंह की सिद्धसिद्धान्त तत्त्वज्ञ और श्रीनाथपदाम्भोजमधुप कहा है और उद्गार प्रकट किया है कि उन्होंने उनकी अनुज्ञा और कृपा से 'योगतोषिणी' टीका लिखी है। योगतत्त्वज्ञों को इसका संशोधन कर लेना चाहिए। भीष्मभट्ट ने 1876 वि. में इस टीका का समापन किया था। इस टीका के प्रकाश में 'विवेकमार्तण्ड' में महायोगी गोरखनाथ द्वारा वर्णित (नाथ) योगसिद्धान्त और तद्गत साधन प्रक्रिया के समझने में बड़ी सुगमता होत है। ग्रन्थ के आरम्भ में महायोगी ने गुरु की कृपामयी शक्ति से जीवात्मा के सच्चिदानन्दायित होने का वर्णन किया है। इसमें षडंगयोग के अभ्यासपूर्वक हठयोगसाधना को प्रधानता दी गयी है। 'विवेकमार्तण्ड' में सात चक्रों का निरूपण किया गया है। पहला आधार चक्र, दूसरा स्वाधिष्ठान, तीसरा मणिपुर, चौथा अनाहत, पाँचवाँ विशुद्ध, छठाँ आज्ञाचक्र और सातवाँ महाचक्र है। वह ब्रह्मरन्ध्ररूप महापथ में स्थित है। शरी में स्थित चक्रों का भेदन बिना गुरु के मार्गदर्शन के नहीं करना चाहिए। जिसकी दृष्टि बिना रूप विषय में स्थित हो जाती है, जिसका प्राण सहज स्थित हो जाता है, बिना किसी आलम्बन के जिसका मन स्थिर होता है, वही योगी है, गुरु है-

'स एच योगी स गुरु स सेव्यः। (विवेकमार्तण्ड-24)

जीवात्मा तक तक संसार-बन्धन में रहता है जब तक वह अनाहत चक्र में ध्यानस्थ होकर परमात्म साक्षात्कार नहीं कर लेता है। गोखनाथजी ने विवेकमार्तण्ड में कहा है कि अजपा गायत्री मोक्ष देती है, इसके संकल्प मात्र से प्राणी पाप से मुक्त हो जाता है-

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
अस्याः संकल्पमात्रेण नरः पापैर्विमुच्यते।। (विवेकमार्तण्ड-47)

इसी तरह जालन्धर आदि बन्धों और खेचरी आदि मुद्रा के अभ्यास पर भी युक्तियुक्त प्रकाश डाला गया है। प्रणवजप को भी यथेष्ट महत्त्व दिया गया है। समस्त षडंगयोग की गोरखनाथजी ने संक्षेप में वर्णन कर कहा है कि आसन से रोग, प्राणायाम से पातक, प्रत्याहार से मानसिक विकार का नाश होता है। धारणा से मनौधैर्य, ध्यान से चैतन्य, और समाधि से मोक्ष मिलता है। परब्रह्म शिव-ब्रह्मात्मक तेज का ध्यान कर तत्त्वबोध प्राप्त कर योगी परमकैवल्य में स्थित हो जाता है।-

एतद् ब्रह्मात्मकं तेजः शिवं ज्योतिरनुत्तमम्।
धयात्वा ज्ञात्वा विमुक्तः स्यादिति गोरक्षभाषितम्।। (विवेकमार्तण्ड-183)

समाधि में लीन योगी आदि-अन्त से रहित, आलम्बनशून्य, प्रपञ्चातीत, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, निराकार, अचल, मन-बुद्धि से अगोचर हो जाता है-

तन्मयत्वं ब्रजेन्नित्यं योगी लीनः परेपदे। (विवेकमार्तण्ड-183)

महायोगी गोरखनाथ ने अपना प्रकाण्ड योगानुभव व्यक्त करते हुए कहा है कि यह

 ISSN 0976-0849

विवेकमार्तण्ड ग्रन्थ परमार्थस्वरूप है, इसके अध्ययन से योगी को भवभयरूपी दावाग्नि से छुटकारा मिलता है। यह ग्रन्थ स्वर्ग का सोपान है। इस ग्रन्थ का अध्ययन करने वाला इस संसार में मोक्षलक्ष्मी, मुक्तिसिद्धि की प्राप्ति करता है।

अमारौघप्रबोध- शिव गोरक्ष महायोगी गोरखनाथकृत संस्कृत योग-ग्रन्थों में 'अमारौघप्रबोध' नाथयोगसाधना की सिद्धि की तात्त्विक और प्रक्रियात्मक पृष्ठभूमि पर नाथयोगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में एक असामान्य कृति है जिसमें अलख निरञ्जन स्वसंवेद्य परमात्मा के साक्षात्कार का युक्तियुक्त विवेचन प्रतिपादित है। यद्यपि गोरखनाथजी ने अपने योगमहाज्ञानामृत की पृष्ठभूमि पर इसे 'राजयोग अभिधानक' कह कर लय, मन्त्र, हठ, राजयोग को औपनिषद चतुर्विध यौगिक परम्परा का संकेत किया है तथापित सामान्य रीति से प्रचलित पातञ्जल आदि योगदर्शन में प्रतिपादित कैवल्यप्रधान राजयोग से यह अमारौघप्रबोधपरक राजयोग कहीं विलक्षण और रहस्यात्मक है, क्योंकि यह शिवशक्ति के सामरस्य के अमृतत्व में योगसाधक, नाथयोगसाधना में सम्पूर्ण निष्णात सिद्धपुरुष की स्वरूपावस्थिति-स्वरूपात्मक सम्प्रतिष्ठा का अक्षर-अमृत योगवाङ्मय है। गोरक्षनाथजी का 'अमारौघप्रबोध' में योगशासन-उपदेशामृत है-

एक एवामरौधो हि राजयोगोऽभिधानकः।
लयादिधिः समायुक्तश्चतुर्थो दीयते कथम्॥ (अमारौघप्रबोध-17)

'अमारौघप्रबोध' 74 श्लोकों का योगग्रन्थ है। इसका संग्रह और सम्पादन कर डॉ. कल्याणी मलिक ने नाथयोगसम्प्रदाय की ज्ञानवृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया है। यह पूना ओरियण्टल बुक हाउस, पूना से प्रकाशित उनकी महनीयकृति सिद्धसिद्धान्तपद्धति (सिद्धसिद्धान्तपद्धति एण्ड अदर वर्क्स दि नाथयोगीज) में संगृहीत है।

इस प्रस्तुति में वर्णित लय, मन्त्र, हठयोगादिपरक राजयोग की सिद्धि में इन तीनों योगपद्धतियों का विवेचन करते हुए हठयोग की साधनापूर्वक राजयोग की महनीयता पर यद्यपि यथेष्ट प्रकाश डाला गया है तथापि यह कहना सर्वथा उचित है कि हठयोग बाह्य और अन्तर साधना की दृष्टि से दो रूपों में हमारे नाथ सम्प्रदाय में गृहीत है। बाह्य साधना प्राण अपाल के ऐक्यपूर्वक योगोग्नि प्रज्वलित कर मूलाधार में प्राप्त कुण्डलिनी को समग्ररूप से षटचक्रादि भेदन द्वारा सहस्रार में शिव से समरसित करना है और दूसरा रूप एकमात्र स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन परमात्मा में निरुत्थान-सहज स्वरूपावस्थितिपूर्वक तल्लीनता-स्वात्मप्रतिष्ठा ही हठयोग की महत्तम सिद्धि के रूप में नाथयोगप्रतिपादित राजयोगपरक सहज स्वरूपबोध में पर्यवसित है। यद्यपि अमृतपान, नादसन्धान शिवशक्ति सामरस्य आदि हठयोग के व्यवहृत प्रक्रियात्मक रूप हैं तथापि स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन परमेश्वर में सम्पूर्ण आत्मलय ही हठयोग की परम-चरम सिद्धि है जो पार्वती के प्रति क्षीरसागर-परिसर में शिव द्वारा

सम्बोधित महायोगज्ञानामृत की सहज योगसिद्धि के रूप में चरम परिणति है। वास्तव में प्राण अपान के ऐक्य द्वारा हठयोग की साधना में कुण्डलिनीजागरण आदि की सिद्धि तथा तद्गत शिव से सामरस्य भी हठयोग की सिद्धि नहीं है, यह तो बिन्दुरूप शिव, रजरूप शक्ति, योगभाषा में चन्द्ररूप बिन्दु और सूर्यरूप रज का सामरस्य ही नाथयोगप्रतिपादित राजयोग में हठयोग की भूमिका है जिसमें विहार कर आत्मयोगी परमात्मयोगी, अलख निरञ्जन हो जाता है। यही अमरौघप्रबोध का प्रतिपाद्य विषय है। महायोगी शिवगोरक्ष गोरखनाथ ने स्पष्ट किया है–

बिन्दुः शिवो रजः शक्तिश्चन्द्रो बिन्दु रजो रविः।
अनयोः संगमादेव प्राप्यते परमं पदम्॥ (गोरक्षपद्धति 1/72)

हमारे नाथयोग में परमपद की प्राप्ति–गुरुकृपैकसाध्य अलख निरञ्जन तत्त्वसाक्षात्कार ही योगसाम्राज्य की सम्पूर्ण समृद्धि है, अप्रतिमसिद्धि है, जिसका शास्त्रीय और व्यावहारिक, सैद्धान्तिक और सहज सवाधनाथमक योगानुशासन अमरौघप्रबोध की रचना का परम लक्ष्य है।

अमनस्कयोग– शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथजी ने अपने सिद्धमत में साधना की सिद्धि की पृष्ठभूमि में मन की अमनस्कता–उन्मनीकरण पर अत्यधिक बल दिया है। इस उन्मनी अवस्था की कैवल्यस्वरुपिणी ज्योति अथवा अलख निरञ्जन के साक्षात्कार के रहस्य की अनुभूति पिण्ड में सामरस्य सिद्धान्त के स्तर पर की है। उनकी विज्ञप्ति है कि शून्य, निरञ्जन, परमपद ही परम शिव–अलख निरञ्जन परमात्मा है। इस परमपद की प्रतिष्ठा मन की उन्मनी स्थिति में ही है। यही अमनस्क योगसाधना का परम निगूढ़ रहस्य है। प्राणिमात्र पर अहैतुकी कृपा करने के लिए उन्हें कायिक, वाचिक और मानसिक अन्धकार से बाहर निकालने, परमात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित कर भवसागर से पार उतारने के लिए गुरु गोरखनाथजी ने शाश्वत सनातन, प्राणसंजीवनी के रूप में महाज्ञान स्वरूप योगामृत का प्रकाशन किया। इस परमात्म ज्ञान में मन की विलीनता ही अमनस्क योग की सिद्धि का स्तर है। उन्होंने इस अमनस्क योगविद्या को ही अमृतत्व की प्रतिपादिका, सनातन अक्षय और मायातीत कहा है। उनकी विज्ञप्ति है–

अमृतोद्दीपनी विद्या निरपाया निरञ्जना।
अमनस्का कलाकापि जयत्यानन्ददायिनी॥ (अमनस्कयोग 2 । 29)

अपनी 'अमनस्कयोग' रचना में गोरखनाथजी ने वामदेव और शिव के योगपरक संवाद के रूप में अमनस्कतत्त्व पर प्रकाश डाला है। शिव ने वामदेव की जिज्ञासा के समाधान रूप में तारकयोग के रहस्य, योगी गुरु के लक्षण और महत्त्व अथवा गुरुत्व, योगसाधन के स्थान, योगासन, क्रियायोग आदि का प्रतिपादन करते हुए मन के निरञ्जन परमात्म तत्त्व में विलीनीकरण अथवा लयसाधन का मर्म अत्यन्त सरल, सुबोध भाषा में समझाया है। 'अमनस्कयोग' के दो खण्ड हैं। पहले खण्ड में

 ISSN 0976-0849

साधना के स्तर पर बाह्याडम्बर और व्यर्थ की बाह्य साधना के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टि को अपनाया गया है। आसन, बन्ध, मुद्रा आदि में श्रम को समय का अपव्यय कहा गया है, अज्ञान कहा गया है। षट्चक्रों के वेधनस्वरूप उनमें ध्यान-क्रिया को चित्त का विभ्रमभाव कहा गया है। योगसाधना से प्राप्त अष्टसिद्धियों को परमात्मतत्त्व के साक्षात्कार के मार्ग में श्रेयस्कर बताया गया है। प्राण में मन के और मन में प्राण के लय के द्वारा अजरत्व और अमरत्व को योगाभ्यास का श्रेय कहा गया है। दूसरे खण्ड में तारकयोग और अमनस्कयोग में भेद का निरूपण उपलब्ध होता है। इस अमनस्क खण्ड में शाम्भवी मुद्रा के रहस्य और शम्भवयोग तथा मन के सम्पूर्ण भय अथवा अमनस्क विद्या के स्वरूप का विवेचन किया गया है। अमनस्कविद्या वास्तव में योग की महाविद्या है।

यह अच्छी तरह समझ लेने की बात है कि हठयोग में प्राण-अपान के संगम पर मनोबल विहित कहा गया है पर 'अमनस्कयोग' के धरातल पर मन का सम्पूर्ण सहज उन्मनीकरण ही राजयोगसिद्धि की परम अथवा अन्तिम अवस्था है। यह अमनस्क सिद्धान्त ही द्वैताद्वैतविलक्षण योगदर्शन का, निरुपाधि ब्रह्म साधन का अथवा अवाच्य निरञ्जन परमात्मा के साक्षात्कार का प्रकाशस्तम्भ है। इस अमनस्कविज्ञान से परमतत्त्व का निर्वचन सम्भव है।

महायोगी गोरखनाथ ने 'अमनस्कयोग' के अमनस्क खण्ड में इस बात की पुष्टि की है कि योगी को किसी भी विषयवस्तु का चिन्तन न करते हुए सहज स्वरूप में, निरञ्जन परम शून्य तत्त्व में समाहित रहना चाहिए। उसे वाणी, मन और शरीर में लेशमात्र भी संक्षोभ का अनुभव नहीं करना चाहिए। जब तक संक्षोभ है, चिन्तन और संकल्प की कल्पना है, तब तक अमनस्क स्थिति की प्राप्ति नहीं हो सकती और न ही तत्त्वसाक्षात्कार, स्वरूपावस्थान ही सम्भव है-

वाङ्मन् कार्यसंक्षोभं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
शिलाचिामिवात्मानं सुस्थिरं धारयेत् तदा।
यावत्प्रयत्नलेशोऽस्ति यावत् संकल्पकामना।
अहं त्वमिति सम्प्राप्तिस्तावत्तत्त्वस्य का कथा।। (अमनस्कयोग 2 । 57-58)

तारकयोग में तो मन साधना में सहायक है पर उत्तरयोग अथवा अमनस्क साधन में मन की स्थिति उन्मनी हो जाती है। मन तत्त्वाकार होकर सदा के लिए महालयस्थ हो जाता है।

महायोगी गोरखनाथ ने अमनस्कयोग की सिद्धि के स्वरूप का प्रकाशन किया है कि जिस तरह नमक पानी में घुल-मिल कर जल हो जाता है, उसी तरह मन ब्रह्म के सम्पर्क से ब्रह्ममय हो जाता है, ब्रह्माकार हो जाता है। ब्रह्ममय होकर निर्वाणपद में प्रतिष्ठित हो जाता है-

लवणं तोयसंस्पर्शाद् यथा तोयसमं भवेत्।
मनोऽपि ब्रह्मसंस्पर्शात्तथा ब्रह्ममयं भवेत।। (अमनस्कयोग 1/43)

तारकयोग और अमनस्कयोग, दोनों की ही सिद्धि में गुरुकृपा की सापेक्षता अनिवार्य है। क्यों तारकयोग के उपरान्त सम्पूर्ण उन्मनीकरण में साधक पर गुरु की करुणादृष्टि का पात जो जाए तो वह साधक परमपद में निःसंशय प्रतिष्ठित हो जाता है। ब्रह्म में मन का उन्मनीकरण अथवा महालय ही योग की यथार्थ सिद्धि है। परमात्मपद में मन की तल्लीनता गुरु के सदुपदेश तथा कृपामय दृष्टिपात से ही सम्भव होती है।

तारकयोग की विशद और अनुभूतिपूर्ण व्याख्या गोरखनाथजी ने अमनस्कयोग की रचना में आरम्भ के ही श्लोकों में कर दी है। मत व्यक्त किया है कि साधक मन्त्रयोग की साधना में लगे रहते हैं, कई ध्यानसिद्धि के मोह में पड़े रहते हैं, कई जाप करते हैं, तो आगम-निगम में कई उलझे रहते हैं, तारकयोग जानते ही नहीं है, यह तारकयोग सर्वमंगलकारी है, जब तक सुयोग्य शिष्य न प्राप्त हो जाए तक तक गुरु इस योग का उपदेश दें ही नहीं। यह तारकोग सब योगों में परमोत्तम है, इसका पूर्व भाग तारकयोग कहा जाता है और अपर भाग अमनस्कयोग कहा जाता है। मन से युक्त योगस्वरूप तो तारक है और मन से अतीत जो योगस्वरूप है वह अमनस्क है। तारों (आँख की पुतलियाँ) की ज्योति में लगार कर भौंहों को कुछ ऊँची करें, बढ़ा लें। यह पूर्ण (तारक) योग का मार्ग क्षण भर में उन्मनी भाव पैदा कर देता है-

पूर्वंयोगस्य मार्गोऽयमुन्मनीकारकः क्षणात्। (अमनस्कयोग 1। 8)

अमनस्कयोग की साधना के लिए योगसाधक को सभी तरह की चिन्ताओं से रहित होकर एकान्त स्थान में सम आसन पर कुछ पीछे की ओर झुक कर स्थिर दृष्टिपूर्वक बैठना चाहिए। इससे मन स्थिर होता है, वायु, वाणी, देह और दृष्टि में स्थितरता आती है। शरीर में कोमलता आती है। साधक का मन परम तत्व का चिन्तन करते-करते तत्त्वाकार हो जाता है। अमनस्कयोग गुरुकृपैकसाध्य है। गोरखनाथ जी का कथन है कि 'अमनस्कयोग' रचना में जो योगी समस्त चिन्ताओं को विवर्जित कर देता है और मन से कुछ नहीं सोचता है, उसे तत्त्व का साक्षात्कार होता है, तत्त्व के सम्मुख होने पर अमनस्कता का उदय होता है। इसमें चित्तदि का विलय हो जाता है, चित्त के विलय से पवन का लय स्थापित होता है, मन-पवन के लय से इन्द्रियार्थ का त्याग हो जाता है। सर्व सम की अवस्था आती है। सर्वसमत्व का उदय होने पर योग का कार्य व्यापार समाप्त हो जाता है। इसके बाद परब्रह्म में स्वरूपभूतयोगी लय को प्राप्त होता है, ऐसे होने पर सुख-दुःख, शीत-ऊष्ण आदि द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। जिस तरह वायु शून्य में दीप निश्छल हो जाता है, उसी प्रकार जगत् व्यापार से मुक्त योगी लय को प्राप्त होता है-

निर्वातस्थापितो दीपो भासते निश्छलो यथा।
जगद् व्यापारनिर्मुक्तस्तथा योगी लयं गतः॥ (अमनस्कयोग 1/40)

 ISSN 0976-0849

इस लयावस्था में योगी मन से अतीत हो जाता है। यह परम शून्यावस्था है, इसमें तत्व स्वतः प्रकाशित हो उठता है-

न किञ्चिच्चिन्तनादेव स्वं तत्वं प्रकाशते। (अमनस्कयोग 2 । 55)

यह चराचर जगत् मन का दृश्य है, मन का उन्मनी भाव होने पर अद्वैत अभिव्यक्त हो जाता है। चित्त के अचल होने पर ही मोक्ष प्राप्त होता है।

चित्ते चलति संसारौऽचले मोक्षः प्रजायते। (अमनस्कयोग 2 । 93)

अमनस्कयोग की साधना के लिए योगी को मन पर स्वामित्व स्थापित करना बड़ा ही आवश्यक है। इसका अभाव होने पर मन बहुत विघ्नकारी सिद्ध हो सकता है। 'अमनस्कयोग' के रचयिता महायोगी गोरखनाथजी ने एक बड़े महत्त्व की बात कही है कि जिस तर फूल से फल होने पर फूल का स्वतः लोप हो जाता है, उसी तरह देह में जब तत्त्व प्रकाशित होता है, ब्रह्मस्वरूप की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा हो उठती है, तब देहातीतता की स्थिति प्रगट होती है-

पुष्पात् प्रकाशते यद्वत् फलं पुष्पविघातकम।
देहात्प्रकाशते तत्त्वं तत्त्वं देहविनाशकम्॥
फलं प्रकाशकं पुष्पं फलं पुष्पादिघातकम्॥
देहात्प्रकाशते तत्त्वं तत्त्वं देहविनाशकम्॥ (अमनस्कयोग 2 । 17-18)

अमनस्क साधना की यह सिद्धि है कि एकमात्र तत्त्व-परम तत्त्व ही शेष रह जाय। यह 'अमनस्कयोग' सद्यः प्रत्ययकारक-तत्त्वज्ञान प्रदान करने वाला है।

गोरक्षपद्धति- 'गोरक्षपद्धति' भगवान् शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ के योगमहाज्ञानरूप उपदेशामृत का पर्याय है। 'गोरक्षपद्धति' की रचना गोरखनाथजी ने योगसाधकों के हित को ध्यान में रखकर की थी। इसमें वर्णितयोग ज्ञान के बोधमात्र से जीवनयुक्ति अथवा कैवल्य की प्राप्ति होती है। यह सहज सिद्ध है कि 'गोरक्षपद्धति' में कैवल्यप्राप्ति अथवा नाथयोग की भाषा में स्वसंवेद्य परमतत्व के साक्षात्कार का उपाय वर्णित है। 'गोरक्षपद्धति' के अध्ययन और योगाभ्यास से साधक का मन परम तत्त्व में तन्मय हो जाता है। यही नाथयोग साधना का महत्तम फल स्वरूपावस्थान है।

एतद् विमुक्तिसोपानमेतत्कालस्य वञ्चनम्।
यद् व्यावृत्तमनो भोगादासवतं परमात्मनि॥ (गोरक्षपद्धति 1 । 5)

उन्होंने कहा आधिदैविक, आधिभौतिक, आदिदैहिक त्रयताप का शासन चित्तविश्रान्ति से होता है। चित्तविश्रान्ति ही निरुत्थानदशा की प्राप्तिपूर्वक योग की महती सिद्धि है।

'गोरक्षपद्धति' में यम-नियम-व्यतिरिक्त आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-षडंगयोग का प्रतिपादन किया गया है। हठयोग साधना की पूर्णता में षडंगयोगाभ्यास एक महत्तम विशिष्ट क्रम है। इन अंगों पर 'गोरक्षपद्धति' में विशद विचार किया गया है। उसके बाद षट्चक्रनिरुपण, षोडशाधार, अन्तर्बाह्य द्विलक्ष्य, पंच व्योम, मन तथा शरीर के नवद्वारों के सम्बन्ध में सांगोपांग वर्णन मिलता है। वे योगी योगसाधना में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकते हैं जो अपने देह में स्थित इन अंगों से परिचित नहीं हैं, इनकी जानकारी के अभाव में मुद्रा, बन्ध, अमृतपान, कुण्डलिनीजागरण, तात्त्विक शिवसामरस्य आदि की चेष्टा तथा साधना अनुपयोगी कही जाएगी।

गोरखनाथजी ने 'गोरक्षपद्धति' में चक्रभेदन का निरूपण करते हुए कहा है कि मूलाधार चक्र की कर्णिका में तप्त स्वर्णवर्ण और विद्युल्लेखा के समान अग्निमय त्रिकोणाकार योनिस्थान में इस अनन्त विश्वतोमुख परम ज्योति का दर्शन कर योगी समाधि में स्थित रहकर आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

यत्समाधौ परं ज्योतिरनन्तं विश्तोमुखम्।
तस्मिन् दृष्टे महायोगे यातायातन्नविद्यते।। (गोरक्षपद्धति 1 । 21)

इसी प्रकार स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा चक्रों की भेदनपद्धति पर यथेष्ट प्रकाश डालते हुए कुण्डलिनी के सहस्रार में प्रवेश कर शिव में समर होने का वर्णन उपलब्ध होता है। गोरक्षपद्धति में यह कुण्डलिनी ज्ञानियों के लिए (योगियों के लिए) मोक्षदायिनी और अज्ञानियों के लिए बन्धनकारिणी कही गयी है-

कन्दोर्ध्वकुण्डलीशक्ति शुभमोक्षप्रदायिनी।
बन्धानाय च मूढ़ानां यस्तां वेद स वेदवित्।। (गोरक्षपद्धति 1 । 56)

'गोरक्षपद्धति' में प्राणायाम-प्राणनिरोध पर विशेष बल दिया गया है। प्राण के संयमित होने से ही योगी की साधना में सिद्धि मिलती है। प्राणसंयम ही अमृतपान, कुण्डलिनी जागरण तथा जीवन्मुक्तिप्राप्ति का अत्यन्त वरद अमोघ उपाय है-

चलेवाते चलो विग्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततोवायुं निरोधयेत्।। (गोरक्षपद्धति 1 । 90)

प्राण और बिन्दु के निश्छल होने पर योगी योगसाधन में स्थिरता प्राप्त करता है, इसलिए प्राणायाम का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

'गोरक्षपद्धति' दो सौ श्लोकों में प्रथम शतक और द्वितीय शतक के रूप में पूर्ण है। दूसरे शतक में प्राणायामादि यौगिक क्रियाओं की अभ्यासविधि और सार्थकता का निरूपण किया गया है। इसमें षट्कर्म की उपादेयता पर भी बल दिया गया है। धौति, नेति, वस्ति, कपालभाति, शंखप्रक्षालन

 ISSN 0976-0849

आदि के द्वारा शुद्धि और प्राणवाहिनी नाड़ियों की निर्मलता-निर्दोषिता प्रतिपादित है। गोरक्षपद्धति में महायोगी गोरखनाथजी ने दूसरे शतक के दो श्लोकों में षडंगयोग की साधना का सिंहावलोकन किया है कि आसनों के अभ्यास से रोग, प्राणायाम से पातक, प्रत्याहार से मानसिक विकार नष्ट होते हैं। धारणा के अभ्यास से प्रति धैर्य-सुदृढ़ता और विश्वास तथा ध्यान से चैतन्यस्वरूप और समाधि से मोक्ष की प्राप्ति सहज-सुलभ हो जाती है-

आसनेनरुजोहन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुंचति॥
धारणाभिमतं धैर्यंध्यानाच्चैतन्यमद्भुतम्।
समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम्॥ (गोरक्षपद्धति 2 । 11-12)

'गोरक्षपद्धति' में ध्यान के अभ्यास को योगसिद्धि में बड़ा सहायक माना गया है। कहा गया है कि एकान्त स्थान में बैठ कर सुखपूर्वक पद्मासन या स्वस्तिकासन लगाकर शरीर को एक सीध में स्थित कर कुण्डलिनी सहित ध्येय के स्मरण और चिन्तन में लगकर ध्यान करने से योगसाधक समस्त पापों के फल से छुटकारा पाकर परमानन्दस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। हृदयकमल में परमात्मज्योति का ध्यान कर योगी ब्रह्ममय हो जाता है।

नासाग्रदृष्टिसत्मानं ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत्॥ (गोरक्षपद्धति ।।2।। 68)

महायोगी गोरखनाथजी का कथन है कि आज्ञा चक्र और सहस्रार में परम शिव ज्योति का ध्यान करने पर योगसाधक परमपद प्राप्त कर संसार के बन्धन से छुटकारा पा जाता है-

एषु ब्रह्मात्मकं तेजः शिवज्योतिरनुत्तमम्।
ध्यात्वा ज्ञात्वाविमुक्तः स्वादिति गोरक्षमाषितम्॥ (गोरक्षपद्धति 2 । 77)

'गोरक्षपद्धति' में गोरखनाथजी का निर्देश है कि योगशास्त्र का नित्य अध्ययन कर योगसाधना में निष्णात होकर योगी परब्रह्मस्वरूप प्राप्त कर लेता है। अतः ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए साधन तत्पर होना चाहिए।

अमरौधशासन- 'अमरौधशासन' नाथसिद्धशिरोमणि शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ की संस्कृत रचनाओं में नाथयोग-प्रतिपादित स्वसंवेद्य द्वैताद्वैत विलक्षण तत्त्व-साक्षात्कार के धरातल पर एक दुर्लभ कृति है, जिसमें कण्ठ चक्र तथा उससे ऊर्ध्वस्थ अनेक तालु चक्र, आज्ञा चक्र तथा सहस्रार चक्र और आकाश चक्र में कुण्डलिनीजागृतिपूर्वक अमृतपान के द्वारा राजयोग की सिद्धि का मार्ग शासित अथवा निर्दिष्ट किया गया है। 'अमरौधशासन' में प्रारम्भ में वर्णित इस प्रक्रिया को सारणा, कर्मान्तर सारणा, शंखिनी सारणा, प्रतिसारणा और महासारणा आदि मुद्राओं के षड्ध्वगा-छः प्रकार की प्रक्रियाओं अथवा साधनविधियों में निरूपित किया गया है और विस्तारपूर्वक हठयोग और

राजयोग के समन्वय के माध्यम से गोरखनाथजी ने निरुत्थानपूर्वक स्वरूपावस्थान-परम पद में सुप्रतिष्ठित होने का राजपथ प्रशस्त किया है। अमरौधशासन अमृतपानपूर्वक कुण्डलिनी की जागृति के फलस्वरूप जीवात्म साधक के परमात्मा शिव में सहज सामरस्य का प्रतिपादक है।

जब अनेकविध प्राणसंयम से योगी चन्द्रनाड़ी (इड़ा) और सूर्यनाड़ी (पिंगला) के मार्ग से प्रवाहित प्राणापान को एक कर उसे एक प्राण के रूप में सुषुम्ना में प्रविष्ट करता है तो प्राण के ऊर्ध्वमुख होने पर कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है और सहस्रार के चन्द्रमण्डल से द्रवित अमृत तालुचक्र में प्रवाहित होने पर उस (अमृत) का पान कर योगी शिवस्वरूप में प्रतिष्ठित होकर अलख निरञ्जन का साक्षात्कार करता है, स्वारूपावस्थान में परम विश्रान्ति का अनुभव करता है। यही विषय अथवा योगसाधन-क्रम ही 'अमरौधशासन' का प्रमुख अथवा अन्यतम प्रतिपाद्य है। 'अमरौधशासन' दो भाग में विवेचित है। पहले अनुक्रम में अमृतपान के द्वारा मुख के अन्तर्गत स्थित कण्ठचक्र, तालुचक्र को सशक्त कर कुण्डलिनी को ऊर्ध्वमुख करने का वर्णन है और दूसरे भाग में सिद्धसिद्धान्त स्वसंवेद्य तत्त्व-साक्षात्कार, स्वरूपावस्थान और नाथयोगप्रतिपादित कैवल्यरूप मोक्ष के स्वरूप का प्रकाशन किया गया है।

प्रारम्भ में ही गोरखनाथजी ने कहा है कि ऊर्ध्वशक्ति के निपात से और अधःशक्ति के संकीर्णन तथा मध्यशक्ति के प्रबोधा से योगसाधक परम सुख के उदय से सफलकाम हो जाता है।

ऊर्ध्वशक्तिनिपाताच्च तथाधः शक्तिकुञ्चनात्।
मध्यशक्तिप्रबोधेन जायते परमं सुखम्॥ (अमरौधशासन)

इसके द्वारा कुण्डलिनीजागृति और अमृतपान के फल के वर्णन में 'अमरौधशासन' में कहा गया है कि यदि मनुष्य (साधक) दीर्घीकृत जिह्वा मन्थन करते हुए अमृत का पान करता है तो दिव्य स्वादयुक्त शीतल, भूख-प्यास को हरने वाले, पापभय का नाश करने वाले, शरीर को स्थिरता प्रदान करने वाले, महामृत्यु रोग का नाश करने वाले अमृतपान से उसका जरामरणचक्र समाप्त हो जाता है, वह जीवन्मुक्ति प्राप्त कर स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

'अमरौधशासन' के दूसरे भाग में नाथयोग-प्रतिपादित मोक्ष के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए गोरखनाथजी ने कहा कि-

'अथ मोक्षपदं कथ्यते-यत्र सहजसमाधिःक्रमेण मनसा मनः समालोक्यते स एव मोक्षः।' 'अमरौधशासन'

अर्थात् 'मोक्षपद का वर्णन किया जाता है- जब सहज समाधि के द्वारा मन-से-मन को ही (प्रज्ञात्मा रूप में) देखा जाता है, उसका साक्षात्कार किया जाता है, तब जो अवस्था होती है, वही मोक्ष है।'

 ISSN 0976-0849

मोक्ष की दशा में जीव (साधक) विषयप्रपंच से पूर्णतया अतीत होकर जीवन्मुक्तिपद की प्राप्ति से योगसिद्ध हो जाता है। इस तरह की सिद्धि ही मोक्ष पद में प्रतिष्ठा का रसास्वादन है, यही स्वसंवेद्य तन्त्र-साक्षात्कार है, जो नाथयोग सम्मत राजयोग के धरातल पर राजयोग की सिद्धि का परम-चरम फल है।

इस अमरौधशासन का प्रकाशन संस्कृत पुस्तक माला रिसर्च डिपार्टमेंट, श्रीनगर, कश्मीर द्वारा हुआ है, यह मुकुन्दरामशास्त्री द्वारा सम्पादित है तथा निर्णयसागर प्रेस मुम्बई से मुद्रित है। इसका एक संस्करण शैवागम संग्रह खण्ड 3 के अन्तर्गत श्रीकृष्णानन्दसागर के सम्पादन में डी-28/135, वाराणसी तथा माधवानन्द आश्रम, धर्मज (खेड़), गुजरात से प्रकाशित है। यद्यपि इसे शैवागम के अन्तर्गत एक महनीय कृति कहा गया है तथापि यह नाथयोग की गोरखनाथजी द्वारा अप्रतिम देन है, जिसमें नाथयोग-दर्शन प्रतिपादित है।

महार्थमञ्जरी- महार्थतत्त्व महायोगामृत का परम्परा-प्राप्त सनातन सिद्धान्तोपदेश है, जिसके साधन और चिन्तन से स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन का साक्षात्कारर अथवा सहज बोध प्राप्त होता है। इस तत्व का उपदेश महाभारत के विशाल युद्ध प्रांगण में पाण्डव सेनानायक अर्जुन के शोकसंविग्न और आत्मा-अनात्मा के स्वरूप-निश्चय में व्यामोहित होने पर योगेश्वर भगवान कृष्ण ने सद्विवेकप्राप्ति और आत्मस्वरूप के लिए प्रदान कर उसे स्वकर्म के प्रति प्रबुद्ध किया था और उस योगपात्र अर्जुन ने भगवान के प्रति वचनवद्धता का ज्ञापन किया था-

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥ (गीता 18 । 73)

'महार्थमञ्जरी' के अनेक प्रकाशित संस्करण मिलते हैं। उनमें त्रिवेन्द्रम संस्कृत ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम और कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली श्रीनगर कश्मीर तथा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित तथा व्रजवल्लभ द्विवेदी द्वारा सम्पादित संस्करण बड़े महत्वपूर्ण हैं।

परम श्रद्धेय महायोगी गोरखनाथजी ने इस महार्थतत्व का स्वात्मबोध और लोकव्यवहार के संयमन के लिए अपने महिमामयी (योगशास्त्र) 'महार्थमञ्जरी' रचना में निरूपण कर स्वविश्रान्ति अथवा सहज स्वरूपावस्थान परम पद का राजपथ प्रशस्त किया। महार्थमञ्जरी में कृष्ण गुरुपद और अर्जुन शिष्यभाव अथवा प्रपत्ति का ही प्रकाशन किया गया है। इसमें स्पष्ट रूप से यह परिलक्षित है कि गुरु के अनुग्रह अथवा कृपा से ही शिष्य का समुद्धार होता है और उसे दुख की आत्यन्ति निवृत्ति होकर स्वसंवेद्य पद की प्राप्ति होती है। यही नाथयोग का सिद्धान्त है, जिसके द्वारा सनातन काल से ही महायोग ज्ञान सुरक्षित और प्रतिष्ठित है।

'महार्थमञ्जरी' में गोरखनाथजी ने गुह्य से गुह्य योगशास्त्र का प्रतिपादन किया है, जो मुक्ति

का सोपान है। यह योग भगवतत्व है, क्योंकि साक्षात् कृष्ण के मुख से उनके अमोघ वचनामृत के रूप में निर्गत है। गोरखनाथजी ने कहा है कि 'मैं अत्यन्त गूढ़ रहस्य का प्रकाशन करता हूँ। लोकमाया-अन्धकार गूढ़ रहस्य का प्रकाश करता हूँ। लोकमाया-अन्धकारस्वरूप विश्वप्रपंच में ग्रसित लोगों! बार-बार जन्म-मरण के चक्ररूप गर्भवास में भ्रमित न हो अन्तर्वर्ती हृदय के उद्योगरूप मोक्ष का चिन्तन करो। स्वसंवेद्य परम तत्व का साक्षात्कार ही साध्य है।'

हन्त रहस्यं भणामो मूढ़ा! माभ्रमत गर्मगोलेषु।
अत्यासन्नं हृदयं पर्यालोचयत तस्योद्योगम्॥ (महार्थमञ्जरी गाथा 69)

'महार्थमञ्जरी' में गोरक्षनाथजी ने स्पष्ट कहा है कि परमात्म-स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन का ही चिन्तन श्रेयस्कर है, इसके अतिरिक्त फल की कामना से अनात्मवस्तु का अनुष्ठान उचित नहीं है। आत्मतत्त्व-परमात्म तत्त्व के चिन्तन में ही रुचिविधि है, जहाँ इसका अभाव है, वहीं निषेध है। परमात्मचिन्तन हमारे हृदय में स्थित स्पन्दित पारमेश्वर विमर्श स्वरूप-भाव का विवेक है, परमज्ञान है, जिस परमतत्त्व में मन पूर्ण विश्रान्ति का अनुभव करता है, वही हमारे कल्याण का श्रेयस्कर साधन है, जो सर्वथा आचरणीय है यही योगज्ञानामृत के रसास्वादन की सम्पूर्ण वैधता है-

यत्र रुचिस्तत्र विधिर्यत्रेयं नास्ति तत्र च निषेधः।
इत्यस्माकं विवेको हृदयपरिस्पन्दमात्रशास्त्राणाम्॥ (महार्थमञ्जरी गाथा-7)

लोकव्यवहार में जिस वस्तु में रूचि होती है, उसका निषेध किया जाता है और जिसमें निषेध का भाव होता है, उसमें रुचि रखने का पक्ष किया जाता है। 'महार्थमञ्जरी' की उपर्युक्त गाथा के अनुसार योग के धरातल पर आत्मचिन्तन में रुचि और अनात्मचिन्तन में निषेध प्रतिपादित है।

'महार्थमञ्जरी' की रचना का आधार शिवोपदिष्ट (नाथ) योगामृत महाज्ञान है, जो परम्परागत योग का सारातत्व है और जिसका महार्थतत्व के रूप में महाभारत के युद्धक्षेत्र में श्रीकृष्ण ने निर्वचन किया था। यह कश्मीर शैवयोग प्रतिपादित क्रमदर्शन का प्रतिपादन नहीं है। गोरखनाथजी ने कहा है कि विश्वात्मक परमेश्वर देवता अनादि, अनन्त, नित्य और निरावरण अलख निरञ्जन है। वह सनातन सार्वकालिक, सर्वव्यापक है। उसे कालकलंक का स्पर्श कभी क्रमशः नहीं होता, जीते जी जीवन्मुक्तिस्वरूप में उसके लिए मोक्षरूप विघ्न का प्रश्न ही नहीं है। वह विश्ववैचित्र्य विकल्प से परे है, कालकल्मषस्पर्श से परे है।

'महार्थमञ्जरी' के उपक्र में मूल रूप से नाथयोगतत्त्व के विस्तारपूर्वक अभिव्यञ्जन का ही वास्तव में बीजारोपण उपलब्ध होता है, यह परमयोग रहस्य है, जिसका उन्मीलन मांगलिक और अन्तर्ज्योति के प्रकाशन का माध्यम है। गोरखनाथजी का कथन है-

 ISSN 0976-0849

इतिमहतिरहस्योन्मीलने मंगलाय।
प्रभवति मम संविद् योगिनीनां प्रसादः॥

स्वप्न में प्रकट होकर योगिनी ने उन्हें महार्थमञ्जरी के शब्दांकन की प्रेरणा प्रदान की। यह उसका अनुग्रह अथवा प्रसाद है। 'महार्थमञ्जरी' के रचता महेश्वरानन्द ही गोरखनाथ हैं। गोरखनाथजी शिवगोरक्ष हैं, उनकी महेश्वरानन्द कहने में आपत्ति नहीं है। 'महार्थमञ्जरी' की परिमल टीका उन्हीं की स्वोपज्ञटीका है। महायोगी गोरखनाथजी ने सत्तर गाथाओं में स्वप्न में प्रकट योगिनी की कृपा से 'महार्थमञ्जरी' की रचना की। अपनी स्वोपज्ञ परिमल व्याख्या के मंगलाचरण के बारहवें श्लोक में उनकी उक्ति है-

स्वप्नसमयोपलब्धा सा सुमुक्षी सिद्धयोगिनी देवी।
गाथाभिः सप्तत्या स्वापितभाषाभिरस्तु सम्प्रीता॥

गोरखनाथजी ने जाग्रत अवस्था-निर्विशेष स्वप्न में अभिव्यक्त अथवा प्रकट होने वाली, स्वहस्त मुद्रा से अपने हृदय की करुणा का प्रकाशन करने वाली, अलौकिक योगैश्वर्य अथवा योगसिद्ध से सम्पन्न, कन्या, शूल, कपाल मात्र धारण करने वाली योगिनी से 'महार्थमञ्जरी' की सत्तर गाथाओं की रचना का उल्लास प्राप्त किया था। उन्होंने उसकी वन्दना की है-

कन्थाशूलकपालमात्र विभवांवन्दे तां योगिनीम्। (महार्थमञ्जरी गाथा-71)

गोरखनाथ ने अपनी रचना 'महार्थमञ्जरी' तथा 'स्वोपज्ञ परिमल टीका' को भगवान् शम्भु (शिव) के लिए पुष्पाञ्जली कहा है-

पुष्पाञ्जलिर्भवतु वाङ्मय एष शम्भोः। (महार्थमञ्जरी मंगलाचरण-9)

गोरखनाथजी ने 'महार्थमञ्जरी' के उपसंहारात्मक अन्तिम श्लोक में कहा है-

अधिवासयतु सदा मुखमन्यकथालेपलब्धदौर्गन्ध्यम्।
कर्पूरशकलइव में शिव शिव इति शीतलः शब्दः॥

'शिव-शिव शब्द मेरे मुख को सुरक्षित करे।'

शिवयोगसार- शिवगोरक्ष महायोगी गोरक्षनाथ द्वारा रचित 'शिवयोगसार' योगशास्त्र की महाराष्ट्रीय नाथयोगपरम्परा में गणना की जाती है। प्रायः सौ श्लोकों की आकृति में रचित यह ग्रन्थ नाथयोग साधना-पद्धति पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। इसमें नाथज्योति के ध्यान का महत्त्व प्रकाशित करते हुए गोरखनाथजी ने 'शिवयोगसार' के प्रारम्भ मे ही अत्यन्त मांगलिक वाणी में कहा है-

ज्योतिर्ध्यानात् सदा योगी योगसिद्धिमवाप्नुयात्।
सर्वभूतहृदिस्थोऽसौ ज्वलत्पावकसन्निभः॥

अन्तरात्मकसंज्ञोऽयं जगच्चक्षुर्न संशयः॥ (शिवयोगसार 1-2)

ज्योति का ध्यान कर योगी को सिद्धि प्राप्त कर लेनी चाहिए। यह समस्त प्राणियों के हृदय में प्रदीप्त अग्नि के समान प्रकाशित है। यह ज्योति अन्तरात्मा के नाम से प्रसिद्ध है और निस्सन्देह यह जगत् का नेत्र है। यह अन्तरात्मक ज्योति ही अपरम्पर सदाशिव है, परमपद है। परमेश्वर शिव, पराशक्ति का अधिष्ठाता रुद्र है। और निरञ्जन-ज्ञानशक्ति विशिष्ट सूक्ष्माशक्ति का अधिष्ठाता परमात्मा है-

अपरम्परं पदं शून्यं निरञ्जनं परमात्मेति। (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 1।17)

Vimarsh

An Interdisciplinary Journal

Subscription Form

Editor,
Vimarsh
Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusar, Gorakhpur-273014

Dear Editor,

I/we would like to subscribe to the ***Vimarsh***, an interdisplinary journal, published by you. Subscription amount Rs./US$.....…is being enclosed herewith by cheque*/demand draft no. ..... drawn on ..... Kindly enrol my/our - Annual/ Five Year/Life subscription** and arrange to send the issues of the journal on the following address :

Name of Individual/Institution : .....

Address : .....

.....

City : ..... Pin/Zip .....

State : ..... Country :.....

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 100	US $ 5	Rs. 200	US $ 10
Five Years	Rs. 400	US $ 20	Rs. 800	US $ 40
Life (15 Years)	Rs 1300	US $ 60	Rs. 2500	US $ 100

* All cheques/demand drafts should be drawn in favour of ***Pracharya, Maharana Pratap Snatkottar Mahavidyalaya, Jungle Dhusan*** payable at Gorakhpur. In case of outstation cheques please add Rs. 30/US$ 2 for clearing expenses.

** Please tick the desired subscription period.

Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusan, Gorakhpur-273014
Mob. : 9794299451, 9452971570 • E-mail : vimarshmppg@gmail.com

GUIDELINES FOR CONTRIBUTORS

1. Contribution should be submitted in duplicate, the first two impressions of the typescript. It should be typed in font Walkman-Chanakya (Hindi) and in Times New Roman (English) on a quarter or foolscap sized paper, in double-space and with at least one and a half inch margin on the right. Two copies of a computer printout along with a CD are preferred. They should subscribe strictly to the Journal format and style requirements.

2. The cover page of the typescript should contain: (i) title of the article, (ii) name (s) of author(s), (iii) professional affiliation, (iv) an abstract of the paper in less than 150 words, and (v) acknowledgements, if any. The first page of the article must also provide the title, but not the rest of the item of cover page.

3. Though there is no standard length for articles, a limit of 5000 words including tables, appendices, graphs, etc., would be appreciated.

4. Tables should preferably be of such size that they can be composed within one page area of the Journal containing about 45 lines, each of about 85 characters (letter/digits). The source(s) should be given below each table containing data from secondary source(s) or results from previous studies.

5. Figures and charts, if any, should be professionally drawn using such materials (like black ink on transparent papers) which allow reproduction by photographic process. Considering the prohibitive costs of such process, figures and charts should be used only when they are most essential.

6. Indication of notes should be serially numbered in the text of the articles with a raised numeral and the corresponding notes should be given at the end of the paper.

7. A reference list should appear after the list of notes. It should contain all the articles, books, reports, etc., referred in the text and they should be arranged alphabetically by the names of authors or institutions associated with those works.

   (a) Reference to books should present the following details in the same order: author's surname and name (or initials), year of publication (within brackets), title of the book (underlined/italic), place of publication. For example:

   Chakrabarti, D.K. (1997), *Colonial Indology: Socio-politics of the Ancient Indian Past,* pp. 224-25, New Delhi

   (b) Reference to institutional publications where no specific author(s) is (are) mentioned should present the following details in the same order. institution's name, year of publication (within brackets), title of the publication (underlined/italic), place of publication. For example:

   Ministry of Human Affairs (2001), *Primary Census Abstract,* New Delhi, pp. xxxviii.

   (c) Reference to articles in periodicals should present the following details in the same on: the author's surname and name (or initials), year of publication (in brackets), title of the article (in double quotation marks), title of periodical (underlined/italic), number of the volume and issue (both using Arabic numerals); and page numbers. For example:

   Siddiqui, F.A. and Naseer, Y. (2004), "Educational Development and Structure of Works participation in western Uttar Pradesh", *Population Geography,* Vol. 26, Nos. 1 & 2, pp. 25-26.

   (d) Reference in the text or in the notes should simply give the name of the author or institution and the year of publication, the latter within brackets; e.g. Roy (1982). Page numbers too may be given wherever necessary, e.g. (Roy 1982: pp. 8-15).

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

"

हिन्दू जीवन पद्धति दुनिया की श्रेष्ठतम जीवन पद्धति है। हमारे ऋषियों महर्षियों ने अनेक पीढ़ियों की तपस्या से मानवता को सुख और शान्ति प्रदान करने वाली संस्कृति का विकास किया। मनुष्य की कौन कहे इस सृष्टि के चर-अचर सभी में ईश्वर का दर्शन किया और इसका उपदेश दिया। ऐसी श्रेष्ठतम् संस्कृति में छूत-अछूत, ऊँच-नीच, पुरुष-महिला विभेद की बात हास्यास्पद लगती है। यह हिन्दू समाज की विकृति है जिसे दूर किए बगैर हिन्दू संस्कृति के तेजोमय प्रकाश का दर्शन नहीं किया जा सकता।

- राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

"

ISSN 0976-0849

Published by Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)
E-mail : vimarshmppg@gmail.com
Published at Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur